संस्कृति संज्ञान

मानस के मोती

कृत्रिम बुद्धिमत्ता

दर्शनशास्त्र

राजनय

नीतिशास्त्र

अर्थशास्त्र

सामाजिक समरसता

स्वास्थ्य लाभ

प्रबंधन

प्रेरणा

दांपत्य प्रेम

संस्कारित समाज, विकसित राष्ट्र

समाजसेवी, राष्ट्रप्रेमी एवं सांस्कृतिक बुद्धिजीवियों से चर्चा

संस्कृति संज्ञान संस्था के सदस्यों ने श्री राजनाथ सिंह जी रक्षा मंत्री, भारत सरकार से मुलाकात की। संस्था द्वारा किए गए कार्यों के बारे में उन्हें अवगत कराया।

संस्था के सदस्यों ने केंद्रीय गृह मंत्री, भारत सरकार श्री अमित शाह जी से मुलाकात की।

संस्कृति संज्ञान के पदाधिकारियों ने केंद्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री श्री पीयूष गोयल जी के साथ चर्चा की।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाह श्री अरुण जी से संस्था के सदस्यों ने संस्कृति संज्ञान द्वारा किए गए कार्यों के बारे में चर्चा की।

संस्कृति संज्ञान के सदस्यों ने केंद्रीय राज्य मंत्री श्री अश्वनी चौबे जी से मुलाकात कर भारत की संस्कृति, संस्कार, परंपरा और मूल्यों पर चर्चा की।

ग्रामीण विकास और पंचायती राज मंत्रालय के कैबिनेट मंत्री श्री गिरिराज सिंह से संस्कृति संज्ञान के पदाधिकारियों ने मुलाकात की।

संस्कृति संज्ञान के पदाधिकारियों ने स्वामी चिदानंद सरस्वती जी, संस्थापक, परमार्थ आश्रम, ऋषिकेश से मुलाकात की।

संस्कृति संज्ञान संस्था के सदस्यों ने कर्नाटक के राज्यपाल महामहिम श्री थावर चंद गहलोत जी से मुलाकात की।

संस्कृति संज्ञान के पदाधिकारियों ने भारत सरकार के केंद्रीय भारी उद्योग मंत्री डॉ महेंद्रनाथ पांडेय जी से मुलाकात की।

संस्कृति संज्ञान के सदस्यों ने भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय मंत्री श्री सुनील देवधर जी से मुलाकात की।

भारत सरकार के पूर्व केंद्रीय कानून मंत्री श्री रविशंकर प्रसाद जी से संस्कृति संज्ञान के सदस्यों ने मुलाकात की।

भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय महासचिव श्री तरुण चुघ जी से भाजपा राष्ट्रीय मुख्यालय दिल्ली में संस्कृति संज्ञान के सदस्यों ने मुलाकात की।

संस्कृति संज्ञान के सदस्यों ने स्वदेशी जागरण के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री कश्मीरी लाल जी से मुलाकात की।

संस्कृति संज्ञान के सदस्यों ने भारत सरकार के केंद्रीय इस्पात एवं ग्रामीण मंत्री श्री फगन सिंह कुलस्ते जी से मुलाकात की।

संपादक
डॉ प्रदीप कुमार सिंघल

सह-संपादक
संजय राय

संपादक मंडल
डॉ अरुण प्रकाश, सत्य प्रकाश पांडे,
उदय कौशिक, ज्ञानेंद्र भरथरिया,
राजीव रंजन, सत्य प्रकाश त्रिपाठी, राहुल रंजन

सज्जा
चंद्रजीत कुमार

चित्र सज्जा
एम. एल. गर्ग
ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, चाँदनी चौक, दिल्ली
राजीव रंजन

शोध एवं संपादन सहायक
संजय कुमार पांडेय
दीपक बिष्ट

कार्यालय
ए ब्लॉक, 25/19, प्रथम तल, सुजान सिंह बिल्डिंग,
मिडिल सर्किल, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001
फोन :- 9811300176, 7982810869
sanskritisangyan@gmal.com

प्रकाशन
संस्कृति संज्ञान
पंजी. नंबर-2221/4/4503

मुद्रक:
ग्राफिक प्रिंट, प्लॉट नंबर -383,
पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली 110092

स्मारिका में छपे समस्त विचार लेखकों के अपने विचार हैं। संपादक मंडल एवं संस्था का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। न्यायक्षेत्र दिल्ली।

मानवता के लिए श्रीरामचरितमानस

संपादकीय

पिछले कुछ दशकों का अध्ययन करने के पश्चात यह ध्यान में आता है कि भारतीय समाज में सनातन संस्कृति और धर्म में आस्था दिन प्रतिदिन कम हो रही है। संस्कृति संज्ञान संस्था से जुड़े बुद्धिजीवियों ने जब इस पर शोध किया तो समझ में आया कि इसका प्रमुख कारण यह है कि हमारे परिवारों में सनातन संस्कृति के धर्मग्रंथों के नित्य पाठ करने का चलन बहुत ही कम हो गया है। इसीलिए संस्कृति संज्ञान संस्था ने यह संकल्प लिया कि 2030 तक भारत का हर परिवार सनातन संस्कृति के धार्मिक, व्यवहारिक और वैज्ञानिक ग्रंथ श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ कुछ समय के लिए अवश्य करें।

घर-घर में हो श्रीरामचरितमानस का पाठ परिवार और समाज हो संस्कारित एवं स्वस्थ तभी भारत बनेगा एक विकसित राष्ट्र और विश्व गुरु।

संस्था के प्रयत्नों द्वारा श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ हजारों परिवारों द्वारा किया जा रहा है। यह देखने में आया है कि इन परिवारों में आपसी प्रेम, अनुशासन, शारीरिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य सुधार एवं जीवन में लक्ष्य प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प इत्यादि में काफी सुधार हुआ है।

आज के भौतिकवादी समय में किसी व्यक्ति/परिवार को श्रीरामचरितमानस पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति केवल उस कार्य को मन लगाकर कर रहा है, जहाँ पर उसकी रुचि व्यक्तिगत, पारिवारिक लाभ या स्वार्थ निहित हैं।

संस्कृति संज्ञान संस्था से जुड़े बुद्धिजीवियों के अथक प्रयासों से यह सामने आया कि श्रीरामचरितमानस एक व्यवहारिक वैज्ञानिक ग्रंथ है, जिसके अनगिनत आयाम हैं, जैसे नीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, स्वास्थ्य लाभ, प्रबंधन इत्यादि। इनमें से कुछ आयामों पर संस्कृति संज्ञान की संस्था ने भारतवर्ष के श्रीरामचरितमानस का उच्चस्तरीय ज्ञान रखने वाले प्रोफेसर, प्राध्यापक एवं अन्य बुद्धिजीवियों द्वारा अनमोल लेख लिखवाए हैं। इन आयामों में दिए गए दोहे, चौपाइयों, सोरठा एवं छंदों इत्यादि के माध्यम से परिवार एवं समाज का आर्थिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक विकास संभव है, जिससे प्रोत्साहित होकर परिवार स्वयं भी श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ करेंगे और अपने संपर्क में आने वाले परिवारों को भी इसकी प्रेरणा देंगे।

उदाहरण के तौर पर कुछ आयामों के बारे में संक्षिप्त चर्चा करते हैं।

नीति शास्त्र

बरसत हरसत सब लखें, करसत लखे न कोय।
तुलसी प्रजा सुभाग से, भूप भानु सो होय।।
दोहावली 508।।

राजा को प्रजा से कर ऐसे लेना चाहिए, जैसे सूर्य लेता है। सूर्य समुद्र, नदी, तालाब सभी जगहों से पानी लेता

इन्वेंटिव सॉफ्टवेयर सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड, नोएडा के आईटी/ मैनेजमेंट प्रोफेशनल्स को '**श्री रामचरितमानस से बनें मैनेजमेंट गुरु**' विषय पर उद्बोधन

है लेकिन किसी को पता नहीं चलता, जब वह बादलों के रूप में जरूरत की जगहों पर पानी बरसाता है तो सबको पता चलता है, सभी खुश हो जाते हैं। शासक को कर अर्थात टैक्स इस तरह से लेना चाहिए कि किसी को पता न चले, लेकिन जब उसी कर का इस्तेमाल जनता के हित में खर्च हो, जैसे हाइवे बनें, पुल बनें, स्कूल-कालेज अस्पताल बनें तो सबको पता चले।

मुखिया मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक। पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।।
अयो.कां/ 315।।

तुलसीदास जी कहते हैं (श्रीरामजी ने कहा) मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक (अकेला) है, परंतु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।

स्वास्थ्य लाभ

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
उ.कां./20/1,2।।

राम राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा।।
बा.का./51/7।।

भगवान श्रीराम ने पहले से ही रच रखा है, वही होगा। हमारे कुछ करने से वह बदल नहीं सकता। मानसिक शांति के लिए अत्यंत सहायक चौपाई है।

प्रबंधन के सूत्र

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन।।
नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही।।
लं.का./116घ/5,6।।

सखा विभीषण! सुनो, विमान पर चढ़कर, आकाश में जाकर वस्त्रों और गहनों को बरसा दो। तब (आज्ञा सुनते) ही विभीषणजी ने आकाश में जाकर सब मणियों और वस्त्रों को बरसा दिया।

इसे आधुनिक भाषा में लाभांश (डिविडेंड) कहते हैं, जो सहयोगियों में संस्था के लिए निष्ठा और समर्पित भाव पैदा करने में सहायक होता है।

इन आयामों के माध्यम से लोग नित्य अपने कार्यों का प्रबंध, समाज में वार्तालाप और व्यवहार का तरीका, मानसिक, शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को सुचारू रूप से रखने एवं जीवन में नित्य आने वाली अनेकानेक समस्याओं का समाधान समझ सकेंगे।

इन आयामों द्वारा श्रीरामचरितमानस को धार्मिक ग्रंथ के साथ एक व्यावहारिक, वैज्ञानिक एवं उपयोगी ग्रंथ, जो उनके जीवन में सुख-शांति और समृद्धि का सृजन करेगा, की मान्यता प्राप्त होगी।

मानस के नित्य पाठ से समाज इसे अपनी दिनचर्या का एक अभिन्न भाग बनाएगा, जिसके फलस्वरुप भारतवर्ष के नागरिक अनुशासित, संस्कारित एवं निष्ठावान होंगे और भारत को एक विकसित राष्ट्र और विश्वगुरु बनाने में अमूल्य भूमिका निभाएंगे। यही हमारी संस्था का संकल्प है।

डॉ प्रदीप कुमार सिंघल
(संपादक)

सब मिलि करहु छांड़ि छल छोहू

तुलसीदास का नाम आते ही हमारे मनोमस्तिष्क में जो पहला विचार आता है वह है 'श्रीरामचरितमानस'। श्रीरामचरितमानस को लेकर कुछ लोग समय-समय विवाद उठाते रहे हैं। इन विवादों को खड़ा करने वाले न तो इस ग्रंथ को पूरी तरह पढ़े हैं और न ही समझ पाए हैं। पूरा विश्वास है कि अगर वे शुद्ध हृदय से इसका नियमित पाठ करें तो उनके जीवन में चतुर्दिक विकास अवश्य होगा ही होगा। इन आलोचनाओं ने इस स्मारिका के प्रकाशन में प्रथम प्रेरक की भूमिका निभाने का काम किया है।

श्रीरामचरितमानस को सनातन समाज ने धर्मग्रंथ के रूप में मान्यता दी है। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग इसे लाल कपड़े में बांधकर घर में मंदिर के पास रख देते हैं और सुबह को प्रणाम करके अपने दैनिक कार्यों में लग जाते हैं। हमारी संस्था 'संस्कृति संज्ञान' का तात्कालिक प्रयास है कि अधिक से अधिक परिवारों में इस महान ग्रंथ का 5 से 10 मिनट तक नियमित दैनिक पाठ हो। इसके साथ ही हमारा दीर्घकालिक लक्ष्य यह है कि वर्ष 2030 तक भारतवर्ष के हर परिवार में श्रीरामचरितमानस का नियमित पाठ हो। अपने इसी तात्कालिक प्रयास को आगे बढ़ाते हुए हमने बड़े परिश्रम से 'मानस के मोती' नाम से इस स्मारिका का प्रकाशन किया है। तुलसीदास के शब्दों में कहें तो-

जानि कृपाकर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू।।
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउं सब पाहीं।।

आप सभी लोग हमें अपना दास समझकर कृपा करें और इस कार्य में अपना सहयोग दें। हमें न तो अपनी बुद्धि पर और न ही अपने बल पर भरोसा है। इसीलिये हमारी प्रार्थना है कि आप सब इस पुनीत अभियान में तन-मन-धन से सहयोग करें। हमें पूर्ण विश्वास है कि अगर आपने केवल 'मन' से ही सहयोग कर दिया तो भी हम सफल हो सकते हैं। मन को केवल एक बार दृढ़ करने की अवश्यकता है।

श्रीरामचरितमानस को भले ही एक सनातनी ब्राह्मण के घर जन्मे तुलसीदास ने लिखा है और सनातन समाज भले ही इसे धर्मग्रंथ के रूप में पूजता है, मेरी दृष्टि में यह समस्त मानव जाति के कल्याण के उद्देश्य से रचा गया एक 'पूर्ण व्यावहारिक ग्रंथ' है। जिसने श्रीरामचरितमानस को पढ़कर समझ लिया, फिर उसे चारों वेद, छहो शास्त्र, अठारहो पुराण व अन्य ग्रंथों को पढ़ने की जरूरत नहीं है। इसमें इन सबका 'रस' निचोड़कर डाला गया है।

इसी ग्रंथ के उत्तर कांड में तुलसीदास ने लिखा है- नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयं राम माया के प्रेरे। अर्थात्, हमारे हृदयों में रामजी की माया से प्रेरित सभी युगों के धर्म नित्य उपस्थित होते रहते हैं। पूरी प्रकृति सत्व, रज और तम गुणों से निर्मित है। हम सब 'आनंद' की खोज में भटक रहे हैं। जिस आनंद के मिलने से किसी भी चीज की आवश्यकता नहीं होती है, वह 'परम आनंद' है। योग, ज्ञान, कर्म और भक्ति इस आनंद को प्राप्त करने के रास्ते हैं। तुलसीदास की दृष्टि में 'भक्ति' इस आनंद को प्राप्त करने का सबसे सरल, सर्वसुलभ साधन है।

श्रीरामचरितमानस गाकर पढ़ने वाला ग्रंथ है। इसमें 'विशिष्ट रस' है। इस रस का पान करने वाला कभी भी मानस को पढ़कर तुष्ट नहीं होता। वह बार-बार पढ़ना चाहता है और अपने अंतिम समय तक इस रस का पान करता है। तुलसीदास ने शिवजी के माध्यम से घोषणा की है- 'राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं।' इस ग्रंथ के अध्ययन से परिवार और समाज में नैतिक बल बढ़ता है। हमें कब, क्या, कहां और कैसे बोलना है, कैसे सुनना है, जीवन के झंझावातों से कैसे निबटना है, जीवन में सफल कैसे होना है, ज्ञान-विज्ञान, नीति, कूटनीति, युद्ध नीति, पड़ोसी के साथ संबंध, नैतिक मूल्य क्या होते हैं, अनैतिकता क्या है और दुष्ट लोगों का क्या हश्र होता है, यह सब इस ग्रंथ में उपलब्ध है।

हरि अनंत, हरि कथा अनंता। कहने के लिये बहुत कुछ है, लेकिन आज के भाग-दौड़ और आपाधापी के जीवन में आप सभी लोगों से दोनों हाथ जोड़कर हमारी यही प्रार्थना है कि अपने घर-परिवार में ऐसी व्यवस्था अवश्य बनायें कि कोई एक व्यक्ति सुबह उठकर स्नान के बाद श्रीरामचरितमानस का कुछ समय के लिये सस्वर पाठ करे। विश्वास रखिए इस महान ग्रंथ का 'राम रसायन' आपका चतुर्दिक उत्थान करेगा और हमारी स्मारिका 'मानस के मोती' इसमें प्रेरक का काम करेगी, ऐसा हमें विश्वास है।

संजय राय
(सह-संपादक)

संकल्प फाउंडेशन ट्रस्ट
SAMKALP Foundation Trust

क्रमांक: .... | दिनांक: 20.05.2024

ॐ

संतोष तनेजा

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है कि भारतवर्ष और विश्व में सनातन संस्कृति के उत्थान के लिए विगत 5 वर्षों से काम कर रही सामाजिक संस्था "संस्कृति संज्ञान" ने गोस्वामी तुलसीदास कृत "श्रीरामचरितमानस" के विभिन्न आयामों पर एक स्मारिका का प्रकाशन करने का निर्णय लिया है।

इस स्मारिका में विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े देश के उत्कृष्ट विद्वानों के लेखों को शामिल किया जा रहा है। आज के समय में जब हर तरफ भौतिक वाद का बोलबाला है, यह स्मारिका समाज को अपनी जड़ों की तरफ ले जाकर सनातन मूल्यों एवं संस्कारों को पुनः प्रतिष्ठित करने का सराहनीय प्रयास कर रही है। वास्तव में गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस की रचना 72 वर्ष की आयु से 126 वर्ष की आयु तक लोक भाषा में की और यह समाज के हृदय की अंतिम गहराइयों तक पहुंची । इसका पठन एवं गायन भारत के लगभग सभी प्रदेशों में ही नहीं अपितु विश्व के अनेक देशो में आत्मविभोर हो कर किया जाता है। कुछ लोगों को यह ग्रंथ पूरा कंठस्थ है, देश के करोड़ों मंदिरों में रामचरितमानस का उपयोग किया जाता है। समाज का एक हिस्सा जो पढा लिखा नहीं है उसे भी मानस की चौपाइयां एवं दोहे प्रतिदिन पाठ के रूप में करने की परंपरा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह स्मारिका जो रामचरितमानस के महत्व को बढ़ाने का उद्देश्य ले कर प्रकाशित की जा रही है, यह अपने उद्देश्यों में सफल होगी और संस्कृति संज्ञान संस्था भविष्य में भी सनातन मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने की दिशा में काम करती रहेगी। मैं संस्कृति संज्ञान के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूं।

भवदीय

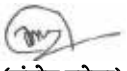

(संतोष तनेजा)
अध्यक्ष, संकल्प फ़ाउंडेशन
9312832376

कार्यालयः संकल्प भवन, प्लॉट नं.-2, एफसी 3 एवं 4, धीरपुर फेज-1, दिल्ली-110009
Office: Samkalp Bhawan, Plot No. 2, FC 3 & 4, Dheerpur, Phase-1, Delhi-110009
Ph: 08587005002 | e-mail: samfndtrust2020@gmail.com

पंजीकृत क्र. 5222/80-81
दूरभाष : +91 98711 96633
ईमेल : sanskarbharati1981@gmail.com

संस्कार भारती
कला एवं साहित्य की अखिल भारतीय संस्था

कार्यालय : कला संकुल
33, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नई दिल्ली 110 002.

अध्यक्ष : श्री वासुदेव कामत
महामंत्री : डॉ श्री अश्विन म. दलवी
कोषाध्यक्ष : श्री सुभाष चन्द्र अग्रवाल

Ref: SB/2024-25/002

युगाब्द 5126, विक्रम संवत 2081
चैत्र शुक्ल सप्तमी 15 अप्रैल 2024

शुभकामना सन्देश

संस्कृति संज्ञान संस्थान द्वारा **"मानस के मोती"** स्मारिका का प्रकाशन हो रहा है, यह अत्यंत हर्ष का विषय है। भारतीय समाज में श्रीराम के चरित्र को व्यक्ति जीवन का आदर्श माना गया है, जो आज भी प्रासंगिक हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरितमानस में श्रीराम के व्यक्तिगुणों की प्रासंगिकता का वर्णन मिलता हैं। व्यक्ति जीवन के साथ ही आदर्श समाजजीवन की दृष्टि से भी रामचरितमानस का अध्ययन आज आवश्यक हैं। इस स्मारिका के माध्यम से समाज जीवन के लिए उपयुक्त श्रीरामचरितमानस के विभिन्न पहलुओं को व्यवहारिक रुप में जनमानस के सन्निकट लाकर नित्य पाठ के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है वह अत्यंत प्रशंसनीय है। अयोध्या में श्रीराम के प्राण- प्रतिष्ठा के पश्चात इस स्मारिका का प्रकाशन सुखद व सौभाग्य का विषय है।

इस स्मारिका के निर्माण में जुड़े संस्कृति संज्ञान संस्थान के सभी पदाधिकारी एवं कार्यकर्ताओं का मैं अंत:करण से अभिनंदन करता हूँ तथा इस कार्य की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रस्तुत करता हूँ।

सादर

(अभिजित गोखले)
अखिल भारतीय संगठन मंत्री
संस्कार भारती

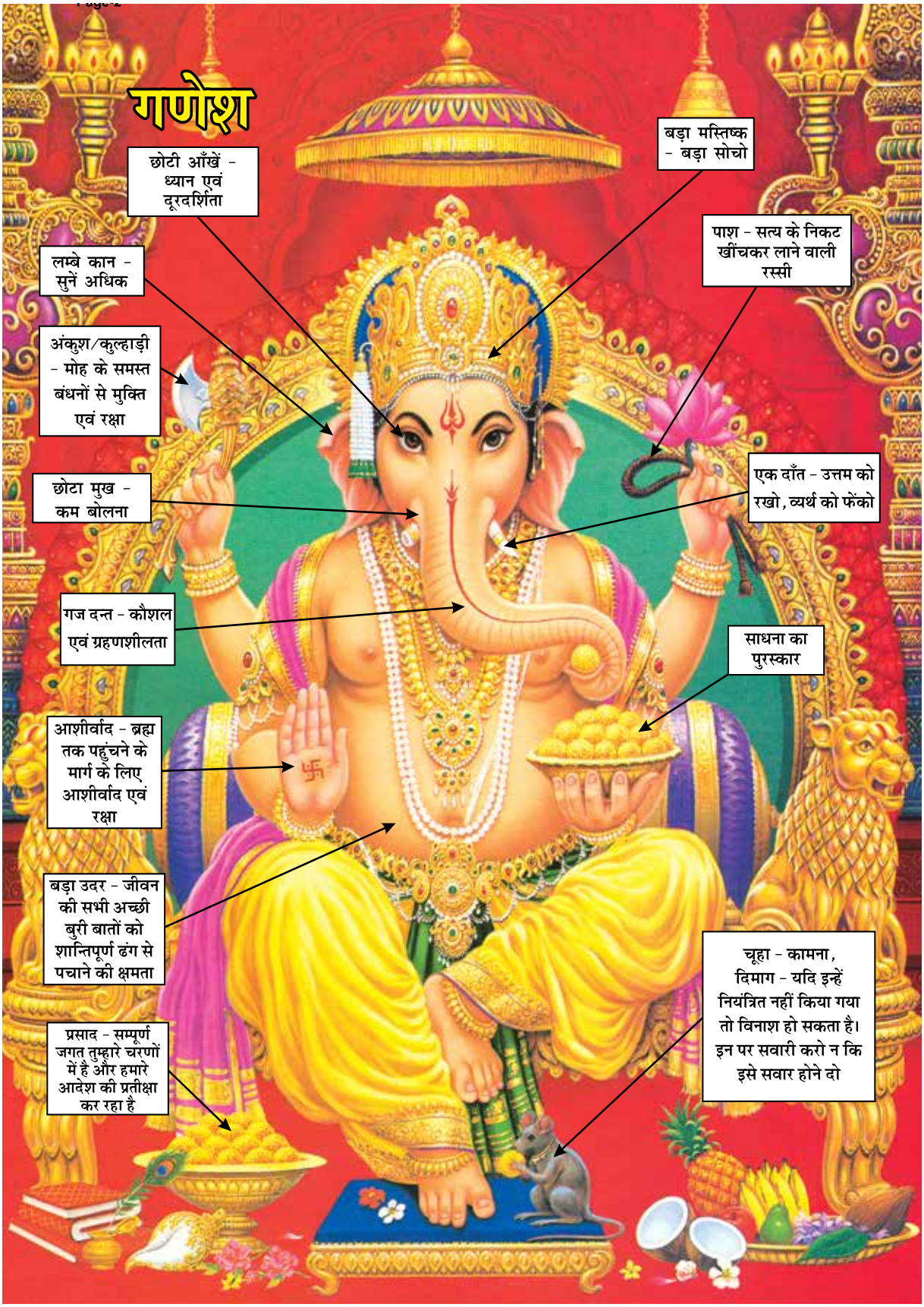
गणेश
छोटी आँखें - ध्यान एवं दूरदर्शिता
बड़ा मस्तिष्क - बड़ा सोचो
पाश - सत्य के निकट खींचकर लाने वाली रस्सी
लम्बे कान - सुनें अधिक
अंकुश/कुल्हाड़ी - मोह के समस्त बंधनों से मुक्ति एवं रक्षा
छोटा मुख - कम बोलना
एक दाँत - उत्तम को रखो, व्यर्थ को फेंको
गज दन्त - कौशल एवं ग्रहणशीलता
साधना का पुरस्कार
आशीर्वाद - ब्रह्म तक पहुंचने के मार्ग के लिए आशीर्वाद एवं रक्षा
बड़ा उदर - जीवन की सभी अच्छी बुरी बातों को शान्तिपूर्ण ढंग से पचाने की क्षमता
चूहा - कामना, दिमाग - यदि इन्हें नियंत्रित नहीं किया गया तो विनाश हो सकता है। इन पर सवारी करो न कि इसे सवार होने दो
प्रसाद - सम्पूर्ण जगत तुम्हारे चरणों में है और हमारे आदेश की प्रतीक्षा कर रहा है

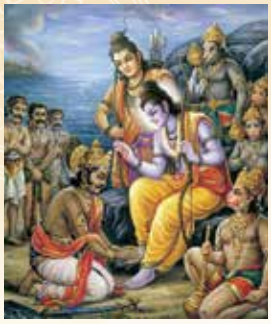

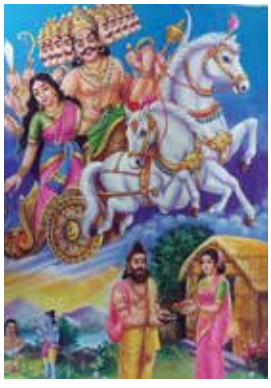

अनुक्रमणिका

रामकाज, राजकाज और देशकाज	12
मानस में पर्यावरण संरक्षण	18
मानस में अर्थशास्त्र के मोती	23
मानस में स्त्री-विमर्श	28
जीवन संस्कृति का संविधान है मानस	32
राम, तुलसी और सामाजिक समरसता	39
श्रीरामचरितमानस द्वारा अनुशासित एवं संस्कारित समाज का निर्माण	43
हनुमानजी की शौर्य-गाथा-सुंदरकांड	46
मानसिक रोगों का राम-रसायन	52
दीनता-दरिद्रता से उबरने का मार्ग है मानस	56
राजनीति बिनु धन, बिनु धरमा	60
श्रीरामचरितमानस में प्रबंधन के सूत्र	67
कृत्रिम बुद्धिमत्ता और रामचरितमानस	77
श्रीरामचरितमानस में राजनय (डिप्लोमेसी)	82
मानस में संतों और असंतों के लक्षणों का उल्लेख	93
संस्कृति का आधार है श्रीरामचरितमानस	98
रामचरितमानस का हृदय है अयोध्याकांड	109

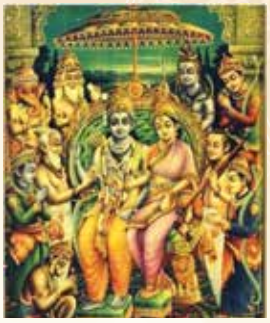

राष्ट्र-रक्षा का तरीका सिखाता है मानस	116
दाम्पत्य प्रेम	120
मानस का संदेश-धनात् धर्मं ततः सुखम्	131
श्रीरामचरितमानस में नीति शास्त्र	133
14 वर्ष के वनवास में निहित है गहरा तत्व-दर्शन	144
अथाह गहराई है मानस की	147
भव भेषज रघुनाथ जसु ...	150
श्रीरामचरितमानस से प्रेरणा	156
सफल जीवन-यापन हेतु मानस की चौपाइयाँ	162
रणभूमि में विनम्रता के प्रतीक श्रीराम	168
भगवान श्रीराम का वनगमन मार्ग	170
सिद्ध सम्पुट चौपाइयाँ	177
मानस में ज्योतिष शास्त्र	180
श्रीरामचरितमानस में शगुन-अपशगुन विमर्श	185
मुस्लिम तथा उर्दू-भाषी कवियों पर रामकाव्य का प्रभाव	192
श्रीरामशलाका महत्त्व एवं प्रासंगिकता	195
रामनाम से कुदरती इलाज और गाँधीजी	199

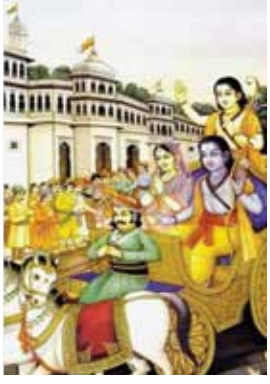

रामकाज, राजकाज और देशकाज

राजनय/नीति शास्त्र

रामजी भाई
वरिष्ठ प्रचारक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

पिता से वन में जाने का आदेश प्राप्त होने के बाद भगवान श्रीराम, भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता समेत वन के लिए प्रस्थान कर जाते हैं, लेकिन ननिहाल से लौटने पर भरतजी अयोध्यावासियों के साथ चित्रकूट पहुंच जाते हैं। भरतजी का शील प्रेम और उधर गुरुजनों, मंत्रियों तथा समाज की उपस्थिति, यह सब देखकर श्रीरामजी संकोच और स्नेह के वशीभूत हो गये। तब, भरत ने दो स्वर्णभूषित पादुकाएँ श्रीराम के चरणों में अर्पित की, आप इन पर चरण रखें, ये ही सम्पूर्ण जगत के योगक्षेम का निर्वाह करेंगी, उन चरण पादुकाओं को मस्तक से लगाते हुए भरत बोले कि मैं भी चौदह वर्षों तक जटा और चीर धारण करके फल-फूल का भोजन करता हुआ आपके आगमन की प्रतीक्षा नगर के बाहर ही करूँगा। भरत के चित्रकूट आकर वापस जाते समय प्रभु श्रीराम अपने भाई भरत से कहते हैं कि-

हे भरत, तुम अपने राज्य में विद्वानों, गुरुओं, पिता के समान पूज्य बड़े-बूढ़ों, चिकित्सकों, विद्वानों का सत्कार करना। सहस्त्रों मूर्खों के बदले एक विद्वान् को ही अपने पास रखना। यदि एक मंत्री भी मेधावी, शूरवीर, नीतिज्ञ हो तो राजा को बहुत सहायता होती है। हर काम के लिए स्तर के हिसाब से घूस न लेने वाले व्यक्ति को नियुक्त करना।

हे राघव, अपने समान विश्वसनीय, वीर, नीतिशास्त्र के जानने वाले, लोभ में न फँसने वाले, प्रामाणिक कुल में उत्पन्न और संकेत को समझने वाले व्यक्तियों को ही मंत्री बनाना, मंत्रणा को धारण करने वाले नीतिशास्त्र विशारद सचिवों के द्वारा गुप्त रखी हुई मंत्रणा ही राजाओं की विजय का मूल होती है। तुम अकेले किसी बात का

निर्णय नहीं करना। तुम्हारा विचार, कार्यरूप में परिणत होने से पूर्व दूसरे राजाओं को विदित नहीं होना चाहिए।

हे कैकेयी नंदन, तुम्हारे राज्य में उग्र दंड से उत्तेजित प्रजा को तुम्हारा अथवा तुम्हारे मंत्रियों का अपमान नहीं करना चाहिए। हे भरत! तुम व्यवहार कुशल, शूरवीर, बुद्धिमान, धीर, पवित्र स्वामिभक्त और कर्म कुशल व्यक्ति को अपना सेनाध्यक्ष बनाना। तुम्हारी सेना में जो अत्यंत बलवान, युद्ध विद्या में निपुण, सुपरीक्षित और पराक्रमी सैनिक हों, उन्हें पुरस्कृत कर उनका उत्साहवर्धन करना। तुम सेना के लोगों को कार्य अनुरूप भोजन और वेतन, जो उचित परिमाण में और उचित काल में देना, उसे यथासमय देने में विलंब तो नहीं करते? तुम्हारी गुप्तचर व्यवस्था अचूक होनी चाहिए।

भगवान अपने श्रीमुख से कहते हैं कि-हे भरत, पशुपालन कृषि आदि में लगे हुए तुम्हारी सब प्रजा सुखी रहे, लेन-देन के कार्य में लिप्त रहकर ही वैश्य लोग धन-धान्य से युक्त होते रहें, तुम प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर और सब प्रकार से सुभाषित होकर दोपहर से पहले ही सभा में जाकर प्रजा से मिलना, तुम्हारी आय अधिक और खर्च न्यून रहना चाहिए, तुम्हारे राज्य में घूस लेकर अपराधियों को नहीं छोड़ना चाहिए, अमीर और गरीब का झगड़ा होने पर तुम्हारे मंत्रियों को लोभ रहित होकर दोनों का मुकदमा न्यायपूर्वक निपटाना चाहिए, झूठे अपराधों के कारण दंडित लोगों की आँखों से गिरने वाले आँसू अपने भोग विलास के लिए शासन करने वाले राजा, उसके पुत्र, राज्य कर्मचारियों और उसके पशुओं का नाश कर डालते हैं।

रामराज की कर प्रणाली

प्रभु श्रीराम ने पूछा- हे तात! जनता से कर (टैक्स) कैसे ले रहे हो? भरत ने कहा, जैसे इक्ष्वाकु वंश लेता है। इस पर श्रीराम ने कहा कि हम सूर्यवंशी हैं।

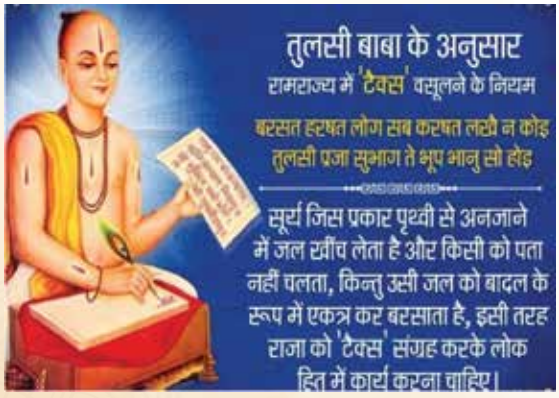

बरसत हरसत सब लखें, करसत लखे न कोय।
तुलसी प्रजा सुभाग से, भूप भानु सो होय।।
दोहावली 508।।

हमें प्रजा से कर ऐसे लेना चाहिए, जैसे सूर्य लेता है। सूर्य समुद्र, नदी, तालाब सभी जगहों से पानी लेता है, लेकिन किसी को पता नहीं चलता। जब वह बादलों के रूप में जरूरत की जगहों पर पानी बरसाता है तो सबको पता चलता है, खासकर जब जरूरत की जगह पर बरसता है तो सभी खुश हो जाते हैं। यानी सरकार को कर अर्थात टैक्स इस तरह से लेना चाहिए कि किसी को पता न चले, लेकिन जब उसी कर का इस्तेमाल जनता के हित में खर्च हो, जैसे हाइवे बनें, पुल बनें, स्कूल-कालेज अस्पताल बनें तो सबको पता चले।

हे भाई! तुम बाण और अस्त्र विद्या में निपुण तथा नीतिशास्त्र, विशारद, धनुर्वेद के आचार्यों का आदर सत्कार करना, क्योंकि उनके आशीर्वाद से ही राज्य का संचालन सुचारु रूप से संभव है। भगवान श्रीराम ने भाई भरत को प्रजा के हित को सर्वोपरि रखने का आदेश दिया। इस प्रकार धर्म के अनुसार राज्य करने वाला विद्वान राजा प्रजाओं का पालन करके समूची पृथ्वी को यथावतरूप से अपने वश में कर लेता है तथा देह त्यागने के पश्चात् स्वर्गलोक को जाता है।

तत्पश्चात् श्रीभरतजी ने चित्रकूट से वापस आकर नंदीग्राम से राज्य का संचालन किया। कृपा के समुद्र श्रीरामजी चौदह वर्ष वन में व्यतीत कर अयोध्या वापस आये। अयोध्यावासी सभी स्त्री पुरुष सुखी हुए। तब गुरु वसिष्ठ ने ब्राह्मणों को बुला लिया और कहा आज शुभ घड़ी सुंदर दिन सभी का योग है। आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दीजिये, जिसमें श्रीरामचन्द्रजी का राज्याभिषेक सम्पूर्ण जगत को आनन्द दे सके। हे मुनि श्रेष्ठ! अब विलम्ब न कीजिये, महाराज का तिलक शीघ्र कीजिये, सबसे पहले वशिष्ठजी ने तिलक किया, फिर उन्होंने सब ब्राह्मणों को तिलक करने की आज्ञा दी, पुत्र को राज सिंहासन पर देखकर माताएँ हर्षित हुईं, और उन्होंने बार-बार आरती उतारी।

प्रभु श्रीराम उस समय पहले ब्राह्मणों को एक लाख घोड़े, उतनी ही गायें दान कीं। तत्पश्चात् राजा श्रीराम ने अपने मित्र सुग्रीव को सोने की एक दिव्य माला भेंट की, जो सूर्य के किरणों के समान प्रकाशित हो रही थी। बालिपुत्र अंगद को दो बाजूबंद भेंट किये। उत्तम मणियों से युक्त उस परम उत्तम मुक्ताहार को जिसे वायु देवता ने भेंट किया था, जो चन्द्रमा की किरणों के समान प्रकाशित होता था, उसे श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी के गले में डाल दिया।

साथ ही उन्हें कभी मैले न होने वाले दो दिव्य वस्त्र तथा और भी बहुत से सुंदर आभूषण अर्पित किये।

श्रीरघुनाथजी के राज्याभिषेकोत्सव के समय पृथ्वी खेती से हरी-भरी हो गईं। वृक्षों में फल आ गये और फूलों में सुगंध छा गईं। प्रभु श्रीराम ने उदारतापूर्वक सम्मान सहित साथ में आये हुए सभी को विदा किया। इसके बाद रघुनाथजी आनन्द से समस्त राज्य का शासन करने लगे। ग्यारह हजार वर्षों तक प्रजा का पालन किया, सुहृदों, कुटुम्बीजनों तथा भाई बन्धुओं के साथ पौण्डरीक, वाजपेय और सैकड़ों अश्वमेध-यज्ञों का अनुष्ठान किया। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ऐसे दीनबन्धु और बिना ही कारण दया करने वाले थे। ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी की जय हो, राम राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते थे और वेदों में बतायी हुई मर्यादा में रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते थे।

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।।
उ.का./20।।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
उ.का./20/1,2।।

रामराज का नीति शास्त्र

भरतजी राम से पूछते हैं-

जेहिं उपाय पुनि पाय जनु देखै दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल।।
अयो.का./313।।

हे दीनदयालु! जिस उपाय से यह दास फिर चरणों का दर्शन करे- हे कोसलाधीश! हे कृपालु! अवधि भर के लिए मुझे वही शिक्षा दीजिए।

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की।।
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू।।
अयो.का./314/1,2।।

हे तात! तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की सारी चिंता गुरु वशिष्ठजी और महाराज जनकजी को है। हमारे सिर पर जब गुरुजी, मुनि विश्वामित्रजी और मिथिलापति जनकजी हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्न में भी क्लेश नहीं है।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु।।
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाईं। लोक बेद भल भूप भलाईं।।
अयो.का./314/3,4।।

मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों भाई पिताजी की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (उनके व्रत की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है।

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें।।
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई।।
अयो.का./314/5,6।।

गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने पर पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। ऐसा विचार कर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधि भर उसका पालन करो।

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू।।
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।।
अयो.का./314/7,8।।

देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरुजी की चरण रज पर है। तुम तो मुनि वशिष्ठजी, माताओं और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन (रक्षा) भर करते रहना।

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।।
अयो.का./315।।

तुलसीदासजी कहते हैं- (श्रीरामजी ने कहा-) मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।

रामराज की कानून व्यवस्था

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज।।
उ.का./22।।

श्रीरामचंद्रजी के राज्य में दण्ड केवल संन्यासियों के हाथों में है और भेद नाचने वालों के नृत्य समाज में है और जीतो शब्द केवल मन के जीतने के लिये ही सुनाई पड़ता है अर्थात् राजनीति में शत्रुओं को जीतने तथा चोर, डाकुओं आदि को दमन करने के लिये साम, दाम, दण्ड और भेद-ये चार उपाय किये जाते हैं। रामराज्य में कोई शत्रु है ही नहीं, इसलिये जीतो शब्द केवल मन के जीतने के लिये ही कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिये दण्ड किसी को नहीं होता, दण्ड शब्द केवल संन्यासियों के हाथों में रहने वाला दण्ड के लिये ही रह गया है तथा सभी अनुकूल होने के कारण भेदनीति की आवश्यकता ही नहीं रह गयी, भेद शब्द केवल सुर-ताल के भेद के लिये ही कामों में आता है।

रामराज का प्राकृतिक सौंदर्य

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।
लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी।।
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।।
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।
सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा।।

उ.का./22/1-10।।

वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभी ने स्वाभाविक वैर भुलाकर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है।

पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं, भाँति-भाँति के पशुओं के समूह वन में निर्भय विचरते और आनंद करते हैं। शीतल, मंद, सुगन्धित पवन चलता रहता है। भौंरे पुष्पों का रस लेकर चलते हुए गुंजार करते जाते हैं।

बेलें और वृक्ष माँगने से ही मधु टपका देते हैं। गौएँ मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेती से भरी रहती है। त्रेता में सतयुग की स्थिति हो गयी।

समस्त जगत के आत्मा भगवान को जगत का राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों की खानें प्रकट कर दीं। सब नदियों में श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहने लगा।

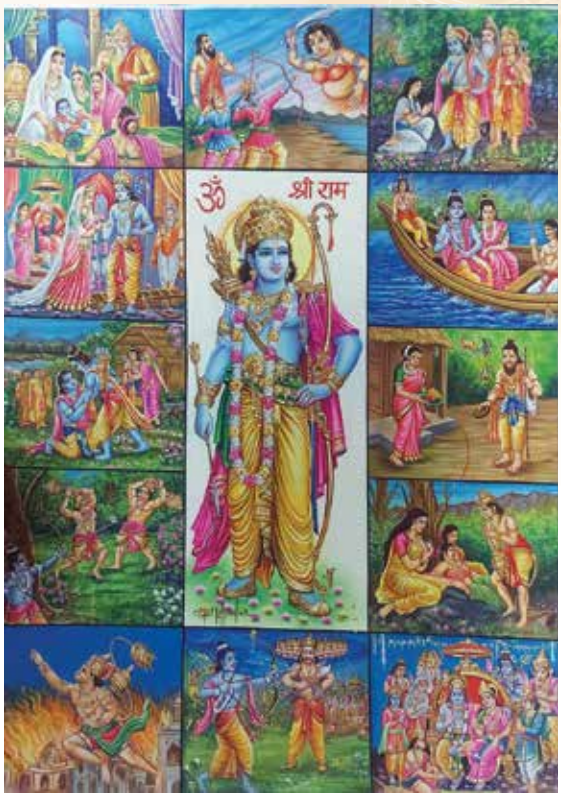

समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों के द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यंत प्रसन्न हैं।

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज। मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज।।

उ.का./23।।

श्रीरामचंद्रजी के राज्य में चंद्रमा अपनी किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं जितने की आवश्यकता होती है और मेघ मांगने से जल देते हैं।

रामराज का वास्तु सौंदर्य

जातरूप मनि रचित अटारीं। नाना रंग रुचिर गच ढारीं।।
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर।।
नव ग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई।।
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा।।
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत।।
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं।।

उ.का./26/3-8।।

स्वर्ण और रत्नों से बनी हुई अटारियाँ हैं। उनमें अनेक रंगों की सुंदर ढली हुई फर्शें हैं। नगर के चारों ओर अत्यंत सुन्दर परकोटा बना है, जिस पर सुंदर रंग-बिरंगे कंगूरे बने हैं।

मानो नवग्रहों ने बड़ी भारी सेना बनाकर अमरावती को आकर घेर लिया हो। पृथ्वी पर अनेकों रंगों के कांचों की गच बनाती गयी है, जिसे देखकर श्रेष्ठ मुनियों के भी मन नाच उठते हैं।

उज्ज्वल महल ऊपर आकाश को छू रहे हैं। महलों पर के कलश मानो सूर्य, चंद्रमा के प्रकाश की भी निंदा करते हैं। बहुत सी मणियों से रचे हुए झरोखे सुशोभित हैं और घर-घर में मणियों के दीपक शोभा पा रहे हैं।

मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि करकत खची।।
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे।।
उ.का./26छं.।।

घरों में मणियों के दीपक शोभा दे रहे हैं। मूँगो की बनी हुई देहलियाँ चमक रही हैं। मणियों के खम्भे हैं। मरकतमणियों से जड़ी हुई सोने की दीवारें ऐसी सुंदर हैं, मानो ब्रह्मा ने खास तौर से बनायी हों। महल सुन्दर, मनोहर और विशाल हैं। उनमें सुंदर स्फटिक के आँगन बने हैं। प्रत्येक द्वार पर बहुत से खरादे हुए हीरों से जड़े हुए सोने के किवाड़ हैं।

बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे।।
उ.का./27छं.।।

सुंदर बाजार हैं, जो वर्णन करते नहीं बनता, वहाँ वस्तुएँ बिना ही मूल्य मिलती हैं। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों, वहाँ की सम्पत्ति का वर्णन कैसे किया जाय? बजाज (कपड़े का व्यापार करने वाले), सराफ (रुपये-पैसे का लेन-देन करने वाले) आदि वणिक (व्यापारी) बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं, मानों अनेक कुबेर हों। स्त्री, पुरुष बच्चे और बूढ़े जो भी हैं, सभी सुखी, सदाचारी और सुंदर हैं।

रामराज्य में जल-प्रबंधन व्यवस्था

नीति-निर्माताओं के लिये राम के समय की अयोध्या में जल-व्यवस्था मार्गदर्शक का काम कर सकती है।

अयोध्या के रामजन्मभूमि मंदिर में बालरूप में प्रभु श्रीराम के मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा हो चुकी है। दुनियाभर में अयोध्या का नाम गूँज रहा है। श्रीरामचरितमानस में बताया गया है कि सरयू नदी अयोध्या के उत्तर दिशा में बहती है-

उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर।।
उ.कां.28।।

अर्थात्, नगर के उत्तर दिशा में सरयूजी बह रही हैं। जिनका जल निर्मल और गहरा है। मन को हरने वाले घाट बँधे हुए हैं, किनारे पर जरा भी कीचड़ नहीं है।

प्रभु श्रीराम जब लंका विजय के बाद अयोध्या वापस लौटे तो उनका राज्याभिषेक हुआ। इसके साथ ही पृथ्वी पर रामराज्य की संकल्पना साकार हुई। हमारी चर्चा का मुख्य विषय 'रामराज्य में जल-प्रबंधन' है। जल प्रकृति का अनुपम उपहार है। इसीलिये जल को जीवन कहा गया है। राम के समय जल-संरक्षण की व्यवस्था को आज हम अमल में क्यों नहीं ला सकते? इस बारे में विचार करने पर निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमने 'विकास' का जो आदर्श अपनाया है, उसमें प्रकृति को संसाधन समझकर अपने हित की पूर्ति के लिये उसका अंधाधुंध और अवैज्ञानिक दोहन किया जा रहा है।

इस दोहन के चक्कर में प्रकृति के प्रति अपनी जिम्मेदारी को भूल गये हैं। अगर हम हमारी दृष्टि में हमारे भौतिक अस्तित्व की बुनियाद पृथ्वी, पानी, पवन, अग्नि और आकाश के प्रति अपने पूर्वजों की दृष्टि पुनर्प्रतिष्ठित कर लें तो वर्तमान जल प्रदूषण की समस्या से निपट सकते हैं।

आज पूरी दुनिया में जल और इसके प्रमुख स्रोतों में दिनों-दिन बढ़ रही प्रदूषण की समस्या सबके लिये गहरी चिंता का विषय बनी हुई है। सहज जिज्ञासा मन में उठती है कि आखिर रामराज्य के समय अयोध्या में सरयू नदी का जल कैसा था। नदी पर राजा राम, आम जनता और अन्य जीव-जंतुओं के लिये किस तरह की व्यवस्था थी, नदी के आसपास के इलाकों का क्या हाल था, इस बारे में तुलसीदास ने उत्तरकांड में बहुत संक्षेप में सारगर्भित वर्णन किया है। नदी के अलावा जल के अन्य स्रोतों के बारे में तुलसीदास ने जो वर्णन किया है, वह हमारे समाज और हमारी सरकार के लिये एक कसौटी बन सकता है। कसौटी इसलिये है कि हम सब अयोध्या में एक बार फिर से रामराज्य के वापस लौटने के सपने

को साकार करने के सामूहिक प्रयास में पूरी ताकत से जुटे हुए हैं। रामराज्य में सरयू से कुछ दूरी पर अलग से पशुओं के घाट बने हुए हैं। इस घाट पर घोड़ों और हाथियों के झुंड पानी पीते हैं। आज के विकास की अवधारणा में हमने जो शहर बना रखे हैं, वहाँ इन पशुओं के लिये कोई स्थान है ही नहीं।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा।।

उ.कां./28/1।।

नदी पर महिलाओं के जल भरने के लिये बने घाट भी परम मनोहर हैं। आज हम महिला सशक्तिकरण की बात करते हैं, लेकिन सोचना चाहिए कि हमारे इसी समाज में रामराज्य के समय महिलाओं के घाटों पर पुरुषों का प्रवेश वर्जित है, यानी कि घाट पूरी तरह महिलाओं के लिये आरक्षित थे।

पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना।।

उ.का./28/2।।

रामराज्य में सरयू तट पर राजा के लिये भी एक अत्यंत सुंदर घाट बना हुआ था। राजा का घाट आरक्षित नहीं था। उस घाट पर चारों वर्ण के समाज का कोई भी व्यक्ति जाकर स्नान कर सकता था।

राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।

उ.कां./28/3।।

इसके अलावा नदी के किनारे पर देवताओं के मंदिर थे और इन मंदिरों के चारों ओर सुंदर उपवन थे। हर किनारे पर अनेक मुनियों द्वारा तुलसी के सुंदर पौधों के समूह लगाये गये थे।

तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर।।

उ.कां./28/4।।

तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।।

उ.कां./28/6।।

अयोध्या में रामराज्य के समय जल-निकायों का सुंदर वर्णन तुलसीदास ने एक छंद में किया है-

बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं। सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं।। बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं। आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं।।

उ.का./28छं.।।

अर्थात्, अयोध्या में बावलियाँ, तालाब और विशाल कुएँ इतने सुंदर हैं कि उनके लिये कोई उपमा नहीं है। वे अनुपम सुंदर हैं। उनकी रत्नजटित सुंदर सीढ़ियों और जल की निर्मलता को देखकर मुनियों के मन भी मुग्ध हो जाते हैं। तालाबों में अनेक रंग के कमल खिले हुए हैं। अनेक पक्षी कलरव कर रहे हैं और भौंरे गुँजार कर रहे हैं। परम रमणीय बगीचे कोयल आदि पक्षियों की सुंदर बोली से मानो राह चलने वालों को बुला रहे हैं।

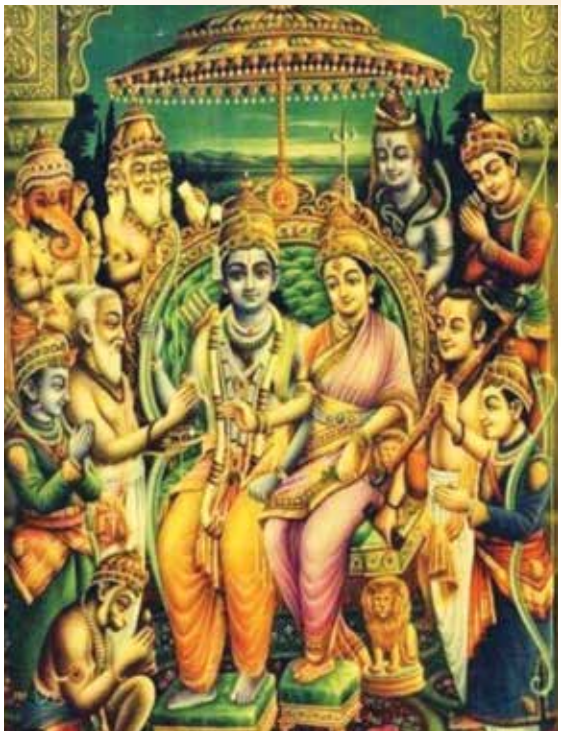

उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट पता चल रहा है कि रामराज्य में जल-प्रबंधन की व्यवस्था अत्यंत उच्चकोटि की थी। जल प्रदूषण का कहीं पर भी नामोनिशान नहीं था। नदी के जल पर सबका बराबर का अधिकार था। नदी, बावली, कूप, तालाब का पानी निर्मल बना रहे, इसके पर्याप्त प्रबंध किये गये थे। प्रकृति के प्रति समस्त समाज संवेदनशील था। इंसानों और जानवरों के लिये अलग-अलग जल व्यवस्था की गयी थी, जिससे कि बीमारियों से बचा जा सके। **रामराज्य में प्रकृति को सृष्टि के पोषक की दृष्टि से देखा और संजोया जाता था। लोग कृतज्ञता के भाव से प्रकृति का पालन-पोषण करते थे। इसीलिये सभी लोग स्वस्थ और सुंदर थे। उनके विचार भी स्वस्थ थे। हर तरफ सुख-शांति और प्रसन्नता का वातावरण था।** जल हमारे अस्तित्व से जुड़ा है। जल को शुद्ध रखना और प्रदूषण से बचाना हम सबकी जिम्मेदारी है। रामराज्य के समय अयोध्या की जल व्यवस्था हमारे नीति-निर्माताओं के मार्गदर्शन में बहुत उपयोगी साबित हो सकती है।

मानस में पर्यावरण संरक्षण

पर्यावरण संरक्षण में छिपे हैं मानवहित के बीज मानस में मार्मिक वर्णन

डॉ. शेख शहेनाज अहेमद
हिंदी विभागाध्यक्ष, हुतात्मा जयवंतराव पाटील महाविद्यालय,
हिमायतनगर, नांदेड

वर्तमान समय के बदलते सामाजिक, वैज्ञानिक, प्राकृतिक पर्यावरण परिवेश में रामचरितमानस का महत्व और अधिक बढ़ गया है। यह एक आशीर्वादरूपी, दिशादर्शक ग्रंथ है। इसका प्रत्येक कांड महत्वपूर्ण है, जिसमें भारतीय संस्कृति की तस्वीर उभरती है और संपूर्ण मानव जगत के साथ विश्व-साहित्य को भी प्रेरणा देती है। वैसे देखा जाये तो भक्ति, नीति, ज्ञान, सदाचार का प्रचार-प्रसार जनता में जितना इस ग्रंथ से हुआ है, उतना किसी और ग्रंथ से नहीं।

वर्तमान में पर्यावरणीय असंतुलन ने संपूर्ण विश्व की स्थिति को भयावह बना दिया है। इस असंतुलन ने मानव की विकास यात्रा को रोक दिया है। हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रकृति के संदर्भ में जिस पर्यावरण की परिकल्पना की थी, आज उसकी सर्वाधिक आवश्यकता है। प्रकृति, पर्यावरण, प्रगति के मध्य अंतर्संबंध है, जिनके प्रति मानवीय दृष्टिकोण सांस्कृतिक विरासत से निर्मित एवं विकसित होता है। इस संदर्भ में भारतीय हिंदू संस्कृति की वैश्विक भूमिका प्राचीनकाल से ही मानी गयी है।

पर्यावरण अध्ययन और पर्यावरण संरक्षण हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चिंतन सभी कांडों में पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होता है। उसी तरह तुलसी रचित श्रीरामचरितमानस में प्रकृति चित्रण, पर्यावरण संचेतना,

पर्यावरण संरक्षण का विस्तृत उल्लेख किया गया है। प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में भी पर्यावरण का उल्लेख है, तो अथर्ववेद में भी भूमि को माता के रूप में स्वीकार किया गया है। सूर्य, जल, वायु, वृक्ष, अग्नि सभी को देवता मानकर पूजनीय माना गया है। जल, वायु को दूषित करना, वृक्षों को अनावश्यक रूप से काटना पाप माना गया है। प्राचीन ऋषि-मुनियों को पर्यावरण के इन महत्वपूर्ण घटकों का ज्ञान था। तत्कालीन भारतीय सामाजिक जीवन में पर्यावरणीय तत्वों के साथ सामंजस्य की भावना धर्म से जुड़ी हुई थी।

रामचरितमानस में पर्यावरणीय संपन्नता के कतिपय संक्षिप्त संकेतों का अवलोकन करें तो गोस्वामी तुलसीदासजी का वृक्षारोपण को एक स्वाभाविक कार्य मानने एवं मानस में वर्णित प्रकृति में उपलब्ध औषधीय तत्वों का प्रतीकात्मक रूप तथा जैविक विविधता एवं मानस में वैयक्तिक वृत्ति और पर्यावरण का समन्वय आदि बिंदु उनकी विलक्षण प्रतिभा को उजागर करते हैं।

रामचरितमानस में पर्यावरण के संदर्भ में वर्णन करते हुए कहा है कि उस समय पर्यावरण प्रदूषण कोई समस्या नहीं थी। पृथ्वी के अधिकांश भू-भाग पर वन क्षेत्र होता था। शिक्षा गुरूकुल आश्रम में आबादी से दूर वनों में हुआ करती थी। श्रीरामचंद्र ने भी अपने भाइयों के साथ महर्षि विश्वामित्रजी के आश्रम में ही शिक्षा ग्रहण की थी। उस समय समाज में ऋषि-मुनियों का बड़ा सम्मान होता था। राजा-महाराजा भी उनकी सलाह से कार्य करते और उनके सामने नतमस्तक होना अपना सौभाग्य समझते थे। यही कारण है कि जब श्रीराम को वनवास हुआ तो वे प्रसन्न हुए थे, क्योंकि उन्हें वन-क्षेत्र में ऋषि-मुनियों के सत्संग का लाभ प्राप्त होगा, तब वे अपनी माता कौशल्या से कहते है -

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।।
अयो.कां./41।।

श्रीराम को भविष्य में रामराज्य की स्थापना करनी थी, जिसमें मानव-जीवन को सुखमय बनाने हेतु मानव-प्रकृति, जीवन वनस्पति सभी में सामंजस्य पर आधारित समवेती विकास संभव हो सके। मानस में हम यह भी देखते है कि किस तरह सभी जीवों तथा वनस्पतियों से प्रेम का संबंध स्थापित किया गया है। आवश्यकतानुसार प्रकृति का उपभोग कृतज्ञतापूर्वक प्रतिपादित किया गया है। साथ ही वृक्ष को काटना अपराध है तो उसके फल खाना उचित बताया गया है। तुलसी ने रामराज्य की स्थापना करने के लिए प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण की संस्कृति विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया है।

भगवान श्रीराम का काल भारतीय समाज व्यवस्था का ऐसा आदर्श काल था, जिससे समाज को सदैव नई चेतना और नई प्रेरणा मिलती है। इस काल की समृद्ध प्रकृति और सुखी समाज व्यवस्था हजारों वर्षों से जन सामान्य को प्रभावित और आकर्षित करती रही है। इसलिए रामराज्य हमारा सांस्कृतिक लक्ष्य रहा है।

मानस में भारत के अतीत की गौरवशाली स्मृतियाँ संजोई हुई हैं। देश की श्रेष्ठ पर्यावरणीय विरासत के प्रति समाज में जागरूकता पैदा करना तुलसी का लक्ष्य रहा है। मानसकार ने यह बताने का प्रयास किया है कि रामायणकालीन भारतीय समाज में प्रकृति के प्रति लोगों में जैव सत्ता का भाव था। यही कारण है कि प्रकृति के अवयवों का वर्णन मानस में यत्र-तत्र मिलता है।

भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विकास में नदियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। इसके अतिरिक्त भारत में नदियों का धार्मिक महत्व भी बहुत अधिक है। अधिकतर नगर व मंदिर इन्हीं तटों पर स्थित हैं। गोस्वामीजी ने मानस में नदी, पर्वत, जल, वृक्षों का उल्लेख किया है। हमारे देश में काशी, मथुरा, प्रयाग, उज्जैन और अयोध्या जैसे अध्यात्मिक नगर नदियों के तट पर ही बसे हैं। गंगा हमारे देश में प्राचीनकाल से पूज्य रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि गंगा का पवित्र जल, पथ की थकान को दूर कर पथिक को सुख प्रदान करता है। तुलसी समस्त मंगलों और आनंदों का मूल गंगा को मानते हैं-

गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।।
अयो.कां/86/4।।

रामचंद्रजी के चित्रकूट प्रसंग में गोस्वामीजी अनेक नदियों का उल्लेख करते हुए उन्हें पुण्यमयी नदियाँ कहते हैं।

सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या।
सब सर सिंधु नदीं नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना।।
अयो.कां./137/4,5।।

मानस में गंगा, यमुना तथा संगम के चित्रण अतिरिक्त सरयू नदी का विवरण भी है। सरयू का निर्मल जल आसपास के वायु मंडल को भी शुद्ध कर देता है-

बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा।।
उ.कां./2ख/10।।

जल स्रोतों के परिप्रेक्ष्य में तुलसीजी ने तालाबों, कुओं, बावड़ियों आदि की चर्चा की है। राम जब वनगमन के लिए प्रस्थान करते हैं

तब वे जिस-जिस वन में गये, वहाँ के तालाब, नदियों के सौंदर्य के वर्णन को तुलसी ने अत्यंत हृदयग्राही बना दिया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने संकेत किया है कि मानव अपने कार्यों की सहजता एवं सरलता के लिए प्रकृति के मौलिक स्वरूप में परिवर्तन या विकास कर सकता है, जिसका उदाहरण सेतुबंध, कुएँ, बावड़ियाँ आदि हैं। आकाश में बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं-

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ।।
कि.कां./13/3।।
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई।।
कि.कां./13/5।।

श्रीरामचंद्रजी के विवाहोपरान्त बारात लौटकर अयोध्या आती है, तो अयोध्या नगरी में विविध पौधों का रोपण किया जाता है-

सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला।।
बा.कां./343/7।।

प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण की संस्कृति को विकसित करने के लिए पौधारोपण अधिक महत्वपूर्ण है। श्रीरामजी ने वन प्रवास के दिनों में सीताजी व लक्ष्मणजी के साथ वृक्षारोपण किया था।

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए।।
अयो.कां./236/7।।

आज हमारे ही देश में नहीं बल्कि सारे विश्व में पर्यावरण प्रदूषण के संकट ने घेर रखा है। वृक्षारोपण संस्कृति को अपनाकर पर्यावरण प्रदूषण के भयावह संकट से मुक्ति संभव है। तुलसीदास ने रामराज्य में वनों की छटा और उनसे मिलने वाले उपहारों का सजीव शब्द-चित्रण किया है-

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन।।
सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।
उ.कां./22/1,8।।

प्रकृति का सीमित विदोहन ही मानव जीवन के सुखमय भविष्य की गारंटी है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तु का उपयोग हमें प्रकृति से अनावश्यक छेड़छाड़ किये बिना करना चाहिए। ऐसी सामाजिक संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है, जिसका वर्णन तुलसीजी ने रामचरितमानस में किया है। मानस के अरण्यकांड में पम्पा सरोवर का वर्णन अत्यंत मनोहारी है। प्रकृति के छेड़छाड़ करने से अनेक विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। प्रकृति के सान्निध्य में न रहनेवाले जीव जंतुओं का अस्तित्व संकटग्रस्त हो जाता है। जब श्रीरामचंद्रजी की प्रार्थना पर समुद्र ध्यान नही देता है, तो वे क्रोधित होकर धनुष बाण उठाते है, जिससे समस्त जलचर व्यथित हो उठते है -

संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।।
मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने।।
सु.कां./57/6,7।।

समुद्र द्वारा क्षमा मांगने पर प्रभु श्रीराम क्षमा कर देते हैं। समुद्र रास्ता दे देता है और प्रभु श्रीराम अपने बाण को तरकश में डाल लेते हैं। समुद्र के अस्तित्व को कोई नुकसान पहुंचाए बिना वह अपना कार्य पूरा करते हैं।

वास्तव में प्रकृति हमें स्वाभाविक रूप से अपने उपहार देती है। हमें कृतज्ञ भाव से बिना छेड़छाड़ किये उन्हें ग्रहण करना चाहिए। असीमित स्वार्थ से किया गया शोषण विकृति उत्पन्न करता है, जो अंततः प्रलयकारी है। प्रकृति की इस प्रवृत्ति को समुद्र के माध्यम से मानस में अभिव्यक्ति मिली है।

सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।।
उ.कां./22/9।।

मानसकार ने दोहे व चौपाइयों के माध्यम से हमें पर्यावरण एवं प्रकृति के विविध आयामों से परिचित कराया है। मानस में स्वाभाविक प्रकृति चित्रण ने मनोहारी हरी-भरी धरती और वन्य-जीवन के प्रति प्रेममूलक संबंधों एवं पर्यावरण के संरक्षण में समाज के अंतिम व्यक्ति तक को भागीदार बनाये जाने का आदर्श समाज के सामने उपस्थित किया है। इस प्रकार प्रकृति के संतुलन में संस्कृति की शाश्वतता का युग संदेश हमारे लिए इस काल की महत्वपूर्ण विरासत है। तुलसी ने मानस में पृथ्वी से लेकर आकाश तक सृष्टि के पाँचो तत्वों की विस्तृत चर्चा की है।

जीवन प्रकृति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण ईकाई है। तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में, प्रकृति में जितने भी उपस्थित जीव हैं, उनके प्रकार बताए हैं।

जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।
बा.कां./2/4।।
आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी।।
बा.कां./7घ/1।।

प्रकृति में व्याप्त अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों, वृक्षों, वनस्पतियों वनों का सूक्ष्मतम अंकन गोस्वामीजी ने किया है। इस काल में पर्यावरण इतना संतुलित था कि कृषि, पशुपालन और अन्य कार्यों में कभी कोई बाधा नहीं आती थी। उस समय समाज में धन-धान्य की किसी भी प्रकार की कमी नही थी। एक स्थान पर वर्णन आता है-

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज।।
उ.कां./23।।

इस प्रकार सर्दी-गर्मी और बरसात का मौसम-चक्र अपनी संतुलित गति से चलता था। उस समय न बाढ़ का संकट था, न ही सूखे का संकट होता था। इस प्रकार प्रकृति के समन्वयकारी सहयोग में समाज की स्थिति कैसी थी, इस पर मानसकार लिखते हैं-

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
उ.कां./20/1।।

पर्यावरण संरक्षण से प्रकृति संरक्षण ही नहीं होता है, वरन् इसके साथ मानवजाति के स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का निदान भी होता है। रामायण तथा रामचरितमानस में संजीवनी बूटी का प्रसंग द्योतक है कि प्रकृति में उपलब्ध दुर्लभ बूटी-संजीवनी से मृतप्राय शरीर भी जीवित हो सकता है।

आवश्यकता केवल उन औषधीय जड़ी-बूटियों के विषय में ज्ञान की है। भारत में आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली प्राकृतिक जड़ी-बूटियों के औषधीय गुणों पर ही आधारित है, परंतु एलोपैथी चिकित्सा-प्रणाली के प्रचार-प्रसार ने इस आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली को अत्यधिक हानि पहुँचाई है। ऐलोपैथी प्रणाली अधिक खर्चीली है। यह दोष आयुर्वेद में नहीं है, क्योंकि इसमें दोषों के विपरीत औषध प्रयोग होता है। यह औषधि लाभकारी होती है। इस औषधि के ज्ञान का सर्वोत्तम स्रोत रामायण तथा रामचरितमानस माने जा सकते है, क्योंकि तुलसीजी ने विस्तृत रूप से इन औषधीय गुणों से भरपूर प्राकृतिक जड़ी-बूटियों का उल्लेख किया है। रामचरितमानस में प्रकृति में उपलब्ध औषधीय तत्वों का प्रतीकात्मक रूप से बहुत ही सुंदर वर्णन किया है। युद्ध के समय लक्ष्मणजी के मूर्छित होने पर लंका से वैद्य सुषेन को बुलाकर संजीवनी बूटी द्वारा लक्ष्मण का उपचार किया जाता है, जिसका उल्लेख तुलसी ने इस प्रकार किया है-

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन।।
लं.कां./55।।

सुषेण ने आकर श्रीरामजी के चरणारविन्दों में सिर नवाया। उसने पर्वत और औषध का नाम बताया और कहा कि हे पवनपुत्र! औषधि लेने जाओ।

तुलसी ने रामचरितमानस में अनेक वनस्पतियों, वृक्षों, वनों का सौंदर्यात्मक वर्णन किया है। इसके साथ उसके सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय महत्व का भी रेखांकन किया गया है। भोज्य पदार्थ के रूप में कंदमूल फल का वर्णन मानस में किया गया है। एक प्रसंग में वन में रहने वाले कोल, भील जाति के लोग श्रीराम के आगमन की सूचना मिलने पर दोनों (पत्तल से बने पात्र) में ही कंदमूल फल भर-भरकर चले। मानो दरिद्र सोना लूटने चले हों।

कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।।

अयो.कां./134/2।।

तुलसी ने रामचरितमानस में वनस्पतियों, वृक्षों में कपास, पीपल, बरगद, गूलर, आम, तुलसी, कमल-अमरूद, चंदन, सुपारी, केला, अशोक, बेल-बेर, अनार, बाँस आदि का नामोल्लेख किया है। मुनियों के आश्रम में सुंदर वृक्ष चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, पाटल, ढाक और आम आदि सुशोभित हैं। वृक्षों तथा फलों, फूलों के आधार पर तुलसी ने नीति वचनों को अर्थवत्ता प्रदान की है। तुलसी ने पर्यावरण का प्राकृतिक संदेश पग-पग पर दिया है।

तुलसी ने वृक्षों के साथ-साथ पर्यावरण में पशु-पक्षियों की विशेषता को भी अंकित किया है, क्योंकि पशु-पक्षी हमारे पर्यावरण के विशेष रूप से पारिस्थितिक तंत्र के अभिन्न अंग है। भारत में विश्व की समस्त प्रकार की जलवायु, वनस्पति, जीव, जंतु आदि विद्यमान हैं। तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में भिन्न-भिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों को चित्रित किया है। वन की प्राकृतिक सुंदरता अति मनमोहक है-

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।।

अर.कां./29ख/9,10।।

मन की प्रसन्नता एवं अवसाद में प्रकृति में उपस्थित जीव से मानव अपने उल्लास, अवसाद, क्रोध, पश्चाताप को साझा करता है। तुलसी के राम सीता के वियोग में व्याकुल होकर लताओं और पक्षियों से अपना दुःख साझा करते हैं।

तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में पर्यावरणीय सम्पन्नता की पराकाष्ठा को छुआ है। पर्यावरण के संरक्षण के लिए सतत प्रयास, समर्पण और परिश्रम आवश्यक है। जब व्यक्ति और पर्यावरण के मध्य संगम होता है, तब प्रकृति का स्वरूप मानव के प्रति सकारात्मक होता है।

जहाँ-जहाँ राम ने निवास किया, वहीं-वहीं प्रकृति के सौंदर्य की अद्भुत छटा विकीर्ण हो गई। प्रतीकात्मक रूप में श्रीरामचंद्रजी की उपस्थिति प्रकृति को संपन्न बनाती है। इस तथ्य को सांकेतिक रूप से तुलसीजी अरण्यकांड में कहते है-

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा।
गिरि बन नदीं ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए।।

अर.कां./13/1,2।।

जब से श्रीरामजी ने वहाँ निवास किया, तब से मुनि सुखी हो गये, उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और तालाब शोभा से छा गये। वे दिनोंदिन अधिक सुहावने होने लगे।

तुलसीजी ने स्पष्ट संकेत दिए है कि श्रीरामजी की उपस्थिति से पर्यावरणीय चेतना अत्यधिक सम्पन्न होती है। साथ ही उनके प्रति भक्तिभाव भी जनसाधारण के कष्टों का हरण करता है। तुलसीदास की यह रामकथा उनके भीतर की अपनी कथा है, उनकी स्वानुभूति है और उनके अनुभव में पले राम की कथा है। एक बड़ी आध्यात्मिक ऊँचाई से आई हुई राम कथा की भागीरथी, तुलसी के घाट पर आते ही एक ऐसा वृत्ताकार मोड़ लेती है कि वह एक नयी काशी बन जाती है। चित्तकाशी नहीं, भावकाशी।

इस प्रकार अनेक प्रसंग मानस में आये हैं, उनमें से कुछ का प्रतीकात्मक उल्लेख किया गया है, जो वर्तमान में भी प्रासंगिक है। देखा जाए तो इन प्रसंगों और संदर्भों की चर्चा आज ज्यादा जरूरी है। प्रकृति से प्रेम करनेवाले और उसे अपना आदर्श मानने वाले सभ्य समाज की आज की स्थिति क्या हो गई है? वन, उपवन, उद्यान हमसे कोसों दूर हो गये हैं। इतना ही नहीं, तुलसी का पौधा भी आज हमारे घरों से गायब होता जा रहा है। नगरों तथा शहरों के प्रायः बड़े घरों में लॉन एवं गमलों में कैक्टस तथा विदेशी वनस्पतियाँ दिखाई देती हैं। घर में भीतरी सजावट में भी ज्यादातर लोगों का प्रकृति का प्रकृति-प्रेम प्लास्टिक के फूल पत्तों के माध्यम से व्यक्त हो रहा है। तुलसी के पौधे की जगह आज घर-घर में मनीप्लांट ने ले ली है। अधिकतर घरों में कांच के गमलों में प्लास्टिक के फूल-पौधे बैठक कक्ष की अलमारी या टी.वी. टेबल पर शोभित होते हैं। आज हम जितने सभ्य और सुसंस्कृत समाज में जीते हुए खुद को आधुनिक समझ रहे हैं, उतने ही हम प्रकृति से दूर भागते जा रहे हैं। प्रकृति और पर्यावरण की तन-मन-धन से पूजा-अर्चना करने वाला हमारा यह देश आज दुर्भाग्य से, पर्यावरण प्रदूषण की भयावह आग में घिरा हुआ है। यहाँ यह स्मरण रखना अप्रासंगिक नहीं होगा कि हम प्रकृति से जुड़कर ही प्रकृति पुरुष राम से जुड़ पाएंगे।

मानस में अर्थशास्त्र के मोती

सशक्त राजकोष से न केवल राजा सशक्त होता है, बल्कि धर्मपरायण प्रजा भी वैभवशाली और संपन्न रहती है। यही रामराज्य है।

डॉ. सुरेन्द्र बाबू

प्राचार्य, चौ. रामप्रकाश यादव, महाविद्यालय सोरों, सूकर क्षेत्र, कासगंज, उ. प्र.

युगद्रष्टा गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस की रचना का आधार 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं' स्वीकार कर, उसमें 'श्रुति सिद्धांत' के निचोड़ को बनाया है। पौराणिक काल से ही अट्ठारह विद्याओं में, 'अर्थशास्त्र' को मान्यता प्राप्त है। यदि श्रीभर्तृहरि ने **'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयंते'** कहकर 'अर्थ' की आभा को प्रदर्शित किया, तो चाणक्य ने **'धर्मस्य मूलं अर्थः, अर्थस्य मूलं राज्यं,'** कहकर अर्थ की महत्ता को स्थापित किया। 'राज-धर्म' निर्वहन में 'अर्थ' के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। 'धर्म-नीति' के सिंचन से ही 'राज-धर्म' व 'प्रजा-धर्म' फलता-फूलता और सुवासित होता है।

इस सत्य को श्रीरामचरितमानस की रचना की भूमिका में गोस्वामी तुलसीदासजी ने स्वीकार कर लिया है-

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी।।
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा।।
बा.कां./36/9,10।।

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष-ये चारों, ज्ञान-विज्ञान का विचार के कहना, काव्य के नौ रस, जप, तप, योग और वैराग्य के प्रसंग, ये सब इस सरोवर के सुन्दर जलचर जीव हैं।

भारतीय मनीषियों के स्वस्थ मानसिक चिंतन से प्रादुर्भूत पुरुषार्थ चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से गोस्वामी तुलसीदास ने

'अर्थ' को प्रथम वरीयता के रूप में स्वीकार किया। चक्रवर्ती राजा प्रतापभानु के प्रसंग से भी यही सत्यापित होता है-

अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समयँ नरेसु।।
बा.कां./154।।

श्रेष्ठ राजधर्म में सत्ता संचालन, प्रजा पालन के दायित्व-निर्वहन में कोष (धन) की महत्ता को स्वीकार किया जा सकता है।

मानवीय धर्म का आचरण करते हुए सत्कर्मों में प्रवृत्त होकर जीविकोपार्जन हेतु धन संचय, जन-जीवन कल्याण के भाव से सुख आनंद में मग्न, मन के जीवन आनंद का आधार है। यही भाव सांसारिक जीवन में सहजता, समरसता तथा सरलता प्रदान करता है, यही मोक्ष का द्वार है। भरतजी के श्रीरामजी की भक्ति में भावित मन को अर्थ, धर्म और कर्म में कोई रुचि नहीं रहती है-

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।।
अयो.कां./204।।

जब राज्य संचालक ही विरक्ति की दशा को प्राप्त हो जायेगा, तब राज्य और प्रजा धर्म का पालन कैसे होगा। गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामजी द्वारा भाई भरत को सुन्दर दिशा-निर्देश प्रस्तुत कराते हुए राज सत्ता में गुरुजी की महत्ता को स्थापित कराया-

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू।।
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।।
अयो.कां /314/7,8।।

अर्थात्-देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरुजी की चरण-रज पर है। तुम तो मुनि वशिष्ठजी, माताओं और मंत्रियों की शिक्षा मानकर तद्नुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन (रक्षा) भर करते रहना।

> पाश्चात्य अर्थशास्त्री एडम स्मिथ के अनुसार, 'प्रत्येक देश के अर्थशास्त्र का उद्देश्य उस देश की सम्पत्ति और शक्ति बढ़ाना है।' पश्चिम की यह विचारधारा राजा को निरंकुशता की ओर ले जाने वाली है।

भारतीय मनीषियों ने राज्य सत्ता के सप्त अंगों का निर्धारण किया- राजा, मंत्री, कोष, सेना, मित्र, राष्ट्र और नगर। **(महाभारत-शांतिपर्व)**। मानसकार तुलसी ने गुरु वशिष्ठ को प्रधानमंत्री, सुमंत को मंत्री, निषादराज, सुग्रीव, विभीषण आदि को मित्र के रूप में स्थापित किया। तुलसी ने राज्य-संचालन में प्रजा तथा पंचों की सहभागिता स्वीकार की है-

सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी।।
अयो.कां 2/2।।

सेवक, मंत्री, सब नगर निवासी और जो हमारे शत्रु, मित्र या उदासीन हैं।

जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका।।
अयो.कां/ 4/3।।

यदि पंचों को यह मत अच्छा लगे, तो हृदय में हर्षित होकर आप लोग श्रीरामचंद्र का राजतिलक कीजिये।

मोरि बात सब बिधिहिं बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई।।
अयो.कां/ 179/8।।

मेरी सब बात तो विधाता ने ही बना दी है। उसमें प्रजा और पंच क्यों सहायता कर रहे हैं?

निश्चय ही वर्तमान प्रजातांत्रिक राज्य व्यवस्था का इसे बीजारोपण स्वीकार किया जा सकता है। राजा के गुणों को परिभाषित करते हुए तुलसीदासजी ने लिखा है कि

मुखिया मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।।
अयो.कां/ 315।।

मुखिया मुख के समान होना चाहिये जो खाने-पीने को तो एक है, परंतु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।

राजधरम सरबसु एतनोई।।
अयो.कां. /315/1।।

राजधर्म का सर्वस्व भी इतना ही है।

इसी भाव को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है-

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।।
अयो.कां/306।।

सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिये।

राज-धर्म को व्याख्यायित करते हुए स्पष्ट किया है कि राजा को लोक लाज, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, धाम के साथ गुरुजी के प्रताप की रक्षा का दायित्व निर्वहन करना चाहिये। यदि ऐसा करते हैं तो सदैव अच्छे परिणाम ही मिलेंगे-

राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम।।
अयो.कां/ 305।।

गोस्वामी तुलसीदास का मानस 'अर्थ' की आभा से प्रकाशमान है। प्रजा के सर्वोन्मुखी उत्थान के लिये ही राज-सत्ता है-

कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ।।
पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी।।
अयो.कां/ 151/3,4।।

प्रजा का पालन, कर्म, मन तथा वचन से करना ही सच्चा राजधर्म है। यदि इस पुनीत भाव से राजा जुड़ा रहेगा तो प्रजा सुखी रहेगी, प्रजा सुख में ही राज्य का उत्थान संभव है। तुलसी ने ऐसे राज्यों का चित्रण किया है, जहाँ राजधर्म, लोक रंजक रहा है। राजा प्रतापभानु के कैकय राज्य में प्रजा सुखी थी।

सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी।।
बा.कां/154/2।।

प्रजा सब दुखों से रहित और सुखी थी और सभी स्त्री-पुरुष सुंदर और धर्मात्मा थे।

यही स्थिति अवधपुरी तथा जनकपुर की थी। यथा राजा तथा प्रजा।

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।।
उ.कां./20।।

राजा द्वारा धन का सदुपयोग या तो राजसत्ता को सुदृढ़ करने में होता था अथवा प्रजा के हित में होता था। प्रजा में किसी प्रकार का भय, शोक और रोग न फैले, सभी सुखी, परस्पर मेल-मिलाप से रहें। सभी के स्वास्थ, शिक्षा, एवं समृद्धि के लिये वे उत्तरदायी थे।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
उ.कां./20/1,2।।

राम-राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बतायी हुई नीति में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने राज्यों की संरचना सुविचारित, स्वस्थ वैज्ञानिक व्यवस्था प्रदान की, जो कि वर्तमान संदर्भ में भी उतनी ही आवश्यक है। शुद्ध जल तथा वायु के साथ स्वस्थ मनोभावों का संचरण, प्रजा के कल्याण में सहायक होता है। शुद्ध पेयजल हेतु बावली और कुओं का निर्माण, वर्षा जलसंचय व स्नानार्थ निर्मल जलयुक्त तालाब, पर्यावरण तथा वायुशुद्धि के भाव से वन-उपवन व सुगंधित पुष्प वाटिकाएँ, फलाहार हेतु सुमधुर फलों की प्राप्ति के उद्देश्य से बागों की स्थापना आदि सुविचारित श्रेष्ठ व्यवस्था के परिचायक ही हैं। इतना ही नहीं मन शांति एवं मानसिक स्वास्थ्य में सहायक देवालयों, तीर्थाटन हेतु तीर्थस्थलों का विकास, मानवीय भावों के संवाहन में सहायक विप्रों के आवासों का निर्माण कराया जाना उल्लेखनीय है। ऐसे शुभ कार्य मानस मे वर्णित प्रायः समस्त राज्यों में संपादित हुए हैं। यथा-राजा प्रतापभानु के राज्य कैकय में दृश्यमान है-

नाना बापीं कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा।।
बिप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए।।
बा.कां./154/7,8।।

उसने बहुत सी बावलियाँ, कुएँ, तालाब, फुलवाड़ियाँ, सुंदर बगीचे, ब्राह्मणों के लिये घर और देवताओं के सुंदर विचित्र मंदिर सब तीर्थों में बनवाये।

ऐसा ही सुन्दर दृश्य जनकपुर में भी दृष्टव्य है-

सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास।।
बा.कां./212।।

पुष्पवाटिका, बाग और वन, जिसमें बहुत से पक्षियों का निवास है, फूलते, फलते और सुंदर पत्तों से लदे हुए नगर के चारों ओर सुशोभित हैं।

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना।।
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर रूख लजाए।।
बा.कां./226/4,5।।

मन को लुभाने वाले अनेक वृक्ष लगे हैं। रंग-बिरंगी उत्तम लताओं के मण्डप छाये हुए हैं। नव-पत्तों, फलों और फूलों से युक्त सुंदर वृक्ष अपनी संपत्ति से कल्पवृक्ष को भी लजा रहे हैं।

लंका राज्य की संरचना में भी इसके महत्व को स्वीकारा है-

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।।
सु.कां./2/छं.2।।

वन, बाग, उपवन, फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं।

मानस में वर्णित समस्त राज्य धन-धान्य, खनिज-संपदा, स्वर्ण, मणि, माणिक्य से सम्पन्न थे। स्थापत्य कला में इनका प्रयोग देखते ही बनता है-

मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची।
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे।।
उ.कां./26छं.।।

घरों में मणियों के दीपक शोभा दे रहे हैं। मूँगों की बनी हुई देहलियाँ चमक रही हैं। मणियों के खम्भे हैं, मरकतमणियों से जड़ी हुई सोने की दीवारें ऐसी सुंदर हैं मानो ब्रह्मा ने खास तौर से बनायी हों। महल सुंदर, मनोहर और विशाल हैं। उनमें सुंदर

स्फटिक के आंगन बने हैं। प्रत्येक द्वार पर बहुत-से खरादे हुए हीरों से जड़े हुए सोने के किंवाड़ हैं।

सभी राज्य प्राकृतिक संसाधनों से संतृप्त थे। धन-धान्य का कहीं अभाव न था। यही कारण था कि राजा की प्रसन्नता से प्रजा जुड़ी रहती थी। सुख-दुख में समान सहभागिता रहती थी। राजा प्रजा पर सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहते थे-

सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू।।
बा.कां./193/7।।

राजा ने सब किसी को भरपूर दान दिया। जिसने पाया उसने भी नहीं रखा। राज्य की सम्पन्नता का मूल्यांकन उनकी संपत्तियों से ही किया जाता था। राजा जनक चारों कन्याओं के विवाहोपरांत विदाई के समय संपत्ति, दान इस रूप में करते हैं-

भरि भरि बसहँ अपार कहारा। पठईं जनक अनेक सुसारा।।
तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नख अरु सीसा।।
मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे।।
कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना।।
बा.कां./332/5-8।।

अनगिनत बैलों और कहारों पर भर-भरकर वस्तुएँ भेजी गयी। साथ ही जनकजी ने अनेक सुंदर शय्याएँ भेजीं। एक लाख घोड़े और पच्चीस हजार रथ सब नख से शिखर तक सजाये हुए। दस हजार सजे हुए मतवाले हाथी, जिन्हें देखकर दिशाओं के हाथी भी लजा जाते हैं। गाड़ियों में भर-भरकर सोना, वस्त्र और रत्न और भैंस, गाय तथा और भी नाना प्रकार की चीजें दीं।

संपन्न राज्य ही क्षमतावान होते हैं। फिर प्रजा भी सामर्थ्यवान रहेगी ही। अर्थ-विनिमय के केंद्र बाजार की आभा भी अद्भुत थी-

चारु बजारु बिचित्र अँबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी।।
धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना।।
बा.कां./212/2,3।।

सुन्दर बाजार में मणियों से बने हुए विचित्र छज्जे हैं, मानो ब्रह्मा ने उन्हें अपने हाथों से बनाया है। कुबेर के समान श्रेष्ठ धनी व्यापारी सब प्रकार की अनेक वस्तुएँ लेकर बैठे हैं।

अन्य प्रसंगों में भी बाजार का सुन्दर चित्रण हुआ है-

बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे।।
उ.कां./27/छं.।।

सुन्दर बाजार है, जो वर्णन करते नहीं बनता, जहाँ वस्तुएँ बिना ही मूल्य मिलती हैं। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हो, वहाँ की संपत्ति का वर्णन कैसे किया जाय। बजाज, सराफ आदि व्यापारी बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों अनेक कुबेर हों। स्त्री, पुरूष, बच्चे और बूढ़े जो भी हैं सभी सुखी, सदाचारी और सुंदर हैं।

राज्य और नगर नागरिकों की समृद्धता के प्रतीक बाजार ही होते हैं। नर-नारी के सौन्दर्य और आभा को द्विगुणित करने में सहायक वस्त्र तथा आभूषण के विक्रेताओं का धनाढ्य होना, प्रजा के सामर्थ्य को ही सिद्ध करता है। ऐसे प्रसंग मानस में प्रसंगानुकूल यत्र-तत्र-सर्वत्र देखे जा सकते हैं। राजाओं का प्रजापालक व दानवीर होने के साथ वीर व चक्रवर्ती स्वरूप प्रशंसनीय है। राजा प्रतापभानु, जिसने अपनी शक्ति से जीत कर राजाओं को अधीन करके दण्डस्वरूप उपहार लेकर उन्हें छोड़ दिया-

सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे।
बा.कां./153/7।।

दशरथनन्दन श्रीरामजी ने माता कैकेयी के भाव तथा पिताश्री की वचनबद्धता का सम्मान करते हुए 'राज' (धन-वैभव) छोड़कर चौदह वर्ष का बनवास सहर्ष स्वीकार किया, इस अवस्था में केवट को 'गंगा' पार कराने हेतु पारिश्रमिक देने को न था-

केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।।
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी।।
अयो.कां.101/2,3।।

तब केवट ने उतरकर दण्डवत की। प्रभु को संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं। पति के हृदय की जाननेवाली सीताजी ने आनन्दभरे मन से अपनी रत्नजटित अँगूठी उतारी।

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।।
अयो.कां./102।।

प्रभु श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी ने बहुत आग्रह किया, पर केवट कुछ नहीं लेता।

अर्थ बल से विहीन श्रीरामजी ने अपने आत्मबल तथा बाहुबल से अनीति का प्रतिकार करके नीति स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। सीताजी के अपहरण ने उनके इस भाव को और प्रबल बना दिया। किष्किन्धा के राजा बाली द्वारा अपने भाई सुग्रीव से किये गये अत्याचार का प्रसंग देखिए-

हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी।।
कि.कां./5/11।।

बाली ने सुग्रीव का सर्वस्व तथा उनकी स्त्री को भी छीन लिया। इसके प्रतिफल स्वरूप-

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।।
कि.कां./8/7,8।।

श्रीरामजी ने कहा-हे मूर्ख! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या-ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता।

श्रीराम ने राजा विहीन राज्य को अपने अधीन नहीं किया, अपितु मित्र सुग्रीव को राजा तथा बाली पुत्र अंगद को युवराज बनाये जाने की व्यवस्था देकर, राज्य उन्हें सौंप दिया-

राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज।।
कि.कां./11।।

सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज पद दिया।

राज्य संपदा परिवर्धन में राज्य सचिव व परिवारिक बंधुओं के नीति-सम्मत सुझावों का विशेष योगदान रहता है। जब-जब राजा मान के मद में चूर होकर अनीति के मार्ग पर चलता है, नीतिगत सुझावों पर विचार नहीं करता, तब-तब वह परिजन तथा प्रजा के धन, बल तथा ऐश्वर्य की हानि का कारक बनता है। मुनि पुलस्ति, सचिव माल्यवंत तथा भाई विभीषण के नीतिगत सुझाव-

सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार।।
सुं.कां./40।।

श्रीरामजी को सीताजी दे दीजिये, जिसमें आपका अहित न हो। पर महाबली, परम ज्ञानी राजा रावण दुर्बुद्धि के वशीभूत होकर क्रोधित हो जाता है। परिणामस्वरूप निज कुल, संपत्ति तथा लंका राज्य के विध्वंस का कारण बनता है।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।
सुं.कां./39ख/6।।

जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकार की सम्पदाएँ रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है, वहाँ परिणाम में विपत्ति रहती है।

जिस सम्पदा को महातपस्वी रावण ने साधन और समर्पण के बल से प्रभु शिवजी से प्राप्त किया, उस सम्पदा को उसके दम्भ और कुमति ने खो दिया। श्रीरामजी ने युद्ध पूर्व ही स्वर्णमयी लंका का राज्य और वहाँ की संपदा को उसी के भाई विभीषण को संकल्पित भाव से समर्पित कर दिया-

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ।।
सुं.कां./49ख।।

शिवजी ने जो सम्पत्ति रावण को दसों सिरों की बलि देने पर दी थी, वही संपत्ति श्रीरघुनाथजी ने विभीषण को बहुत सकुचाते हुए दी।

इस प्रकार बनवासी श्रीराम ने बुद्धि और विवेक के साथ यह निर्णय लिया कि यदि राजा अनीतिपरक है तो कालांतर में उस राज्य की प्रजा पर इसका सीधा-सीधा प्रभाव पड़ेगा। अतः नीति स्थापनार्थ सत्ता परिवर्तन करना ही उचित समाधान है।

निष्कर्ष यह है कि धन का सदुपयोग ही कल्याणकारी होकर उसकी उन्नति में सहायक होता है। गोस्वामी तुलसीदास ने मानस में सर्वत्र सुख-संपत्ति (सम्पदा) के वर्चस्व को स्वीकार किया है-

रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ।।
उ.कां./29।।

स्वयं लक्ष्मीपति भगवान जहाँ राजा हों, उस नगर का कहीं वर्णन किया जा सकता है? अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ और समस्त सुख संपत्तियाँ अयोध्या में छा रही हैं।

राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।।
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।
उ.कां.21/6,7।।

रामराज्य की सुख संपत्ति का वर्णन शेषजी और सरस्वतीजी भी नहीं कर सकते। सभी नर-नारी उदार हैं, सभी परोपकारी हैं और सभी ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं।

अस्तु, गोस्वामी तुलसीदासजी का अर्थ ज्ञान उच्चकोटि का है। उन्होंने अर्थ ज्ञान को आत्मसात करके, उसके आलोक में प्रजा की राज-सत्ता में महत्ता को प्रकाशमान किया है। उसे उत्पादन, वितरण और विनिमय तथा अर्थ संबंधी बातों की प्रधानता से बाहर निकालकर, उसका उद्देश्य न केवल अर्थ प्राप्त करने तक सीमित रखा, अपितु अर्थ सत्य की खोज द्वारा उसे विश्व, मानव, जीव के कल्याण सुख और शांति आदि के लिये विस्तार प्रदान किया।

मानस में स्त्री-विमर्श

रामराज्य की महिला सशक्तिकरण में अटूट आस्था - तुलसी के मानस से सजीव हो उठती है

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय
वरिष्ठ प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय

आज जब वर्तमान उत्तर-आधुनिक दौर में स्त्री विमर्श की धूम मची हुई है, तब तुलसी जैसी गतिशील लोकोन्मुख परम्परा के विश्व-विख्यात कवि की नारी-दृष्टि पर एक खुला विमर्श अपरिहार्य हो जाता है। ऐसा माना जाता है कि मानव-समाज का इतिहास स्त्री को सत्ता, प्रभुत्व एवं शक्ति से दूर रखने का इतिहास है। यदि भारत को छोड़ दिया जाए तो विश्व के प्रायः सभी देशों, सभी कालों, सभी जातियों, सभी पंथों में स्त्री को पुरुषों के बराबर न आने देने की संरचनात्मक, सांस्कृतिक व दूसरी तरह की मर्यादाएँ निर्मित होती रही हैं। यदि वर्तमान समय में स्त्री मुक्ति, नारी अधिकारवाद, स्त्री विमर्श जैसे शब्दबन्ध तथा प्रत्यय बौद्धिकों में मीमांसा का विषय हैं, तो इतना तो स्पष्ट है कि आज भी कुछ गड़बड़ है, कोई अन्याय हो रहा है, कहीं बेचैनी है, कोई आक्रोश है, जो फूट पड़ना चाहता है।

> **स्त्री विमर्श न केवल पुरुष प्रधान समाज के परम्परागत दृष्टिकोण का प्रत्याख्यान हैं, अपितु पुरुष एवं स्त्री के मध्य मानव-निर्मित असमानता को अस्वीकार कर नारी के सशक्तिकरण की प्रक्रिया को बौद्धिक व कार्यरूप देने के लिए संकल्पित है।**

आज स्त्री-विमर्श नारी के जीवन, उससे जुड़े तमाम प्रश्नों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करने के साथ-साथ उसकी दुनिया को लोकतांत्रिक बनाने का सहरानीय कार्य कर रहा है। अब स्त्री विश्व

की आधी आबादी से जुड़े सवालों पर खुला विमर्श कर रही है। वह अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के सम्यक निर्वहन में सन्तुलन साधने का प्रयास कर रही है। वस्तुतः स्त्री विमर्श एक बहुस्तरीय, बहुआयामी एवं जटिल प्रत्यय है, जिसके भिन्न सन्दर्भों में परस्पर भिन्न व्याख्याएँ सम्भव हैं।

महाकवि तुलसीदास मेरी दृष्टि में नारी अधिकार की बात करने वाले पहले कवि हैं। इनकी नारी दृष्टि अतिशय प्रशस्त है। इन्होंने भारतीय परंपरा के सर्वोत्तम को आत्मसात कर लिया था। इनका संपूर्ण लेखन भारतीय ज्ञानपरंपरा का पुनराविष्कार है। इन्होंने स्वयं अपनी उपलब्धियों का श्रेय पत्नी रत्नावली को दिया है-

''हौं तो चाखा प्रेम रस पत्नी के उपदेश।' गोस्वामीजी ने अपने विश्व प्रसिद्ध महाकाव्य रामचरितमानस का शुभारंभ सरस्वती-गणेश और श्रद्धा-विश्वास के प्रतिमान भवानी-शंकर की वंदना से किया है-

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।
भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।
बा.का./श्लोक1,2।।

यह भारतीय ज्ञान परंपरा और नारी शक्ति के प्रति तुलसीदास की आस्था है जो वर्तमान संदर्भों में और भी प्रासंगिक है।

इन्होंने नारी की महिमा से अनुप्राणित होकर ही गौतम ऋषि की परित्यक्ता पत्नी अहिल्या का श्रीराम के हाथों उद्धार करवाया है। वह देवताओं के राजा इन्द्र के छल का शिकार हुई थी जिसने उसका सतीत्व नष्ट किया। यह भी कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि गौतम जैसे ऋषि पत्नी को ही दोषी मान बैठते हैं। उसे क्षमा नहीं करते। एक बलात्कार पीड़िता स्त्री को न्याय दिलाकर तुलसी ने क्रान्तिकारी कदम उठाया है। आज भी हमारे देश में लाखों अहिल्याएँ राम जैसे उद्धारक की प्रतीक्षा कर रही हैं। इस तरह तुलसी की नारी चेतना वर्तमान सन्दर्भों से स्वतः जुड़ जाती है।

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।।
बा.का./101/5।।

तुलसी की नारी सम्बन्धी मान्यताएँ नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण और नारी विषयक मान्यताओं के स्पष्ट निरूपण में प्रकट होती हैं। इनका नारी के प्रति दृष्टिकोण अतिशय प्रशस्त है। इनके नारी पात्रों की संख्या बहुत अधिक है। इन्होंने कैकेयी के चरित्र को भी उदात्त रूप में प्रस्तुत किया है। उसमें नारी की गरिमा है। सौतेले बेटों के प्रति भी उसका मन स्नेह से भरा है। मंथरा से राम के अभिषेक का समाचार सुनकर उसका विशाल हृदय उमड़ पड़ता है। वह समूची दुनिया के सामने यह कहती है कि

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना।।
अयो.का./48/5।।

इसके बदले उसे राम के अपने प्रति विशिष्ट प्रेम का भी भरोसा है। वह कहती है-

मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी।।
अयो.का./14/6।।

इसलिए राम के अयोध्या वापस लौटने पर कैकेयी आत्मग्लानि और संकोच से भर उठती है। यह पश्चाताप ही उसके व्यक्तित्व का उन्नयन करता है। इनके लिए तो सीता का व्यक्तित्व केवल आदर्श नारी का चरम प्रतिमान ही नहीं है, अपितु वे तो सम्पूर्ण सृष्टि के उद्भव, पालन-पोषण और संहार करनेवाली हैं। चरमसत्ता का प्रतीक हैं। तुलसी लिखते हैं कि-

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।
बा.का./श्लोक 5।।

अर्थात् अपने भक्तों के रास्तों से बाधा-विघ्न क्लेश को हरनेवाली हैं, सम्पूर्ण कल्याणों को करनेवाली श्रीरामचन्द्रजी की प्रिया श्रीसीताजी के चरणों में हम अपना प्रणति-भाव निवेदित करते हैं। इस तरह गोस्वामीजी ने सीता की तुलना आदिशक्ति

से की है, जो नारी जाति को दिया जाने वाला सबसे बड़ा सम्मान है। तुलसीदास ने अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर नारी के आयुष्क्रम के आधार पर उसके चार रूप निर्धारित किए हैं। सीता जब पुष्पवाटिका-प्रसंग में गौरी-पूजन के लिए आती हैं तब वे गौरी-स्तुति करते हुए नारी के इन चारों रूपों का भी निर्वचन करती हैं। वे कहती हैं कि—

जय जय गिरिबरराज किसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी।
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता।।
बा.का./234/5,6।।

इसका ध्वन्यार्थ यह भी है कि कोई भी स्त्री सर्वप्रथम अपने पिता की पुत्री होती है। फिर अपने पति की प्रेयसी, तदुपरान्त केवल अपने बच्चों की माँ तथा अन्त में ऐसी अवस्था भी आती है जब वह जगत जननी हो जाती है। उसे हर कोई मां का संबोधन दे सकता है।

गोस्वामीजी का काव्य तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति और उसके धार्मिक अधिकारों पर प्रकाश डालता है। तुलसीदास ने विदेहराज जनक से तपस्विनी सीता के संबंध में कहलवाया है कि हे पुत्री ! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिए। तेरे निर्मल यश से सारा जगत उज्जवल हो रहा है। तेरी कीर्ति रूपी नदी देवनदी गंगा से भी श्रेष्ठ है क्योंकि गंगाजी तो एक ही ब्रह्मांड में बहती हैं, जबकि तेरी कीर्ति करोड़ों ब्रह्मांड में बह चली है। गंगाजी तो हरिद्वार, प्रयागराज और गंगासागर को ही बड़ा तीर्थ बनाती हैं जबकि तेरी इस कीर्ति ने तो अनेक संत समाज रूपी तीर्थ स्थान बना दिए हैं-

पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ।।
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी।।
अयो.का./286/2,3।।

इसे गोस्वामी तुलसीदास का प्रशस्त दृष्टिकोण ही कहा जाएगा कि तत्कालीन परिवेश में धर्म-क्षेत्र से बहिष्कृत नारी को भी भक्ति की अधिकारिणी बताया। इनके अनुसार भक्तिसाधना द्वारा नारी परमपद अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकती है। तुलसी का भक्ति-मार्ग पुरुष, नपुंसक, स्त्री चर-अचर सबके लिए खुला है। वह प्राणीमात्र के लिए है। वे लिखते हैं कि-

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।।
उ.का./87क।।

आखिर, इससे व्यापक मानवतावाद और कहाँ मिलेगा? यह चराचर जगत के कल्याण के प्रति कवि की प्रतिबद्धता है। यह भी चिंतनीय है कि गीता आज भी भारतीय परम्परा का सर्व-सम्मान्य ग्रंथ इसलिए है कि उसमें वर्णित श्लोक स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविंद से निःसृत हैं। इसी तरह तुलसी पंचम पुरुषार्थ की प्रतीक भक्ति को मर्यादा पुरुषोत्तम राम के मुख से प्रस्तुत करवाते हैं। राम नवधा भक्ति का उपदेश शबरी को देते हैं, जो स्वयं स्त्री है और वह भी अंत्यज वर्ग की आदिवासी स्त्री। आज की भाषा में कहें तो तुलसी के राम एक दलित अथवा आदिवासी स्त्री को नवधा भक्ति का पाठ पढ़ाते हैं। यह तत्कालीन समाज में क्रान्तिकारी कदम था। एक ओर जातिप्रथा का निषेध तथा दूसरी ओर स्त्री जाति को अनपेक्षित सम्मान-दान करने का क्रान्तिकारी प्रयास। आखिर इससे बड़ा नारीवादी कदम क्या हो सकता है? यह तुलसी के साम्यमूलक आदर्श का प्रकर्ष है। ऐसे कवि के संपूर्ण चिंतन का वर्तमान संदर्भों में सम्यक निर्वचन आवश्यक है।

इसी क्रम में तुलसीदास मध्यकाल की जिस दूसरी सामाजिक बुराई का परिहार करते हैं, वह है बहु पत्नी प्रथा।

इतिहास साक्षी है कि अकबर और जहाँगीर जैसे बादशाहों के हरम में भी 800 से एक हजार के मध्य बेगमें थीं, जिन्हें पति का सुख शायद ही मिला।

कुछ इतिहासकार तो पाँच हजार स्त्रियों की संख्या बतलाते हैं। उस समय कतिपय ऐसे स्थल थे, जहाँ स्त्रियों का विधिवत क्रय-विक्रय होता था। उन्हें अमानवीय यातनाओं एवं संकीर्ण आवर्जनाओं से गुजरना पड़ता था।

समूचा मध्यकाल नारी जाति के लिए सबसे कठिन समय रहा है। इस भयानक सामाजिक बुराई और नारी के प्रति असमान व्यवहार को लक्षित करके ही वे कहीं न कहीं यह संकेतित करते हैं कि दशरथ जैसे प्रतापी सम्राट की दुर्दशा के लिए बहुपत्नी प्रथा ही जिम्मेदार है।

दुनिया का सबसे शक्तिशाली एवं समृद्ध साम्राज्य इसलिए ध्वस्त हो जाता है कि उसका स्वामी अर्थात् लंकेश्वर रावण अनेक सुन्दर पत्नियों के होते हुए भी दूसरे (राम) की पत्नी के प्रति आसक्त है। यह मूल्य क्षय ही सर्वनाश का कारण है।

इसीलिए गोस्वामीजी चतुर्थी के चन्द्रमा की तरह परनारी से बचने की सलाह देते हैं क्योंकि उसके दर्शन मात्र से कलंक लगने का भय रहता है। तुलसी की दृष्टि में रामराज्य तभी आ सकता है, जब लोग राम की तरह एक पत्नीव्रत का पालन करें। वे राम से एक पत्नीव्रत की प्रतिज्ञा करवाकर सदा-सर्वदा के लिए ऐसा प्रतिमान निर्मित कर देते हैं, जिसका कोई सानी नहीं। नारी को उसका स्वाभाविक अधिकार दिलाने वाले तुलसी हिन्दी के पहले संत साहित्यकार हैं।

सारांश यह है कि जो महान कवि नारी जाति का इतना बड़ा शुभचिन्तक होते हुए भी नारी निन्दक की संज्ञा से अभिहित किया जाता रहा है, उसे हिन्दी आलोचना का अविवेक नहीं तो और क्या कहेंगे? यह काव्यशास्त्र की विवेकपूर्ण समदृष्टि है कि किसी महाकाव्य अथवा प्रबन्ध-सृष्टि में जो विचार सत्पात्रों के माध्यम से आते हैं, वह उस कवि की सैद्धान्तिकी की प्रतिष्ठा करते हैं। इसी तरह खल अथवा बुरे पात्र जो कुछ कहते हैं, कवि उसका विरोध कर रहा होता है। तुलसी की नारी दृष्टि का विश्लेषण इस तथ्य के आलोक में ही होना चाहिए। तुलसी नारी-निन्दा करनेवालों के विरोधी हैं। वे तो राक्षस-पत्नी होकर भी मन्दोदरी तथा त्रिजटा जैसी स्त्रियों के चरित्र का उन्नयन करते हैं। वे दोनों ही राम की महिमा से परिचित हैं। तुलसी ने सीता से लेकर मन्दोदरी तक को पुरुष की सहधर्मिणी, पथप्रदर्शिका तथा सर्वथा कल्याणकारिणी बतलाया है। यह नारी के प्रति उनके उदात्त एवं व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है।

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।।
सु.का./10/1।।

उनमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसकी श्रीरामचंद्रजी के चरणों में प्रीति थी और वह विवेक में निपुण थी।

दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी।
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू।।
सु.का./35/4,6।।

दूतियों से नगरवासियों के वचन सुनकर मंदोदरी बहुत ही व्याकुल हो गयी। हे प्रियतम! श्रीहरि से विरोध छोड़ दीजिये। मेरे कहने को अत्यंत ही हितकर जानकर हृदय में धारण कीजिये।

वास्तविकता यह है कि तुलसी के जितने आदर्श और सम्मान्य पात्र हैं, वे नारी के प्रति अत्यन्त पूज्य तथा स्नेहिल भाव का ही प्रदर्शन करते हैं। केवल समुद्र तथा रावण जैसे पात्रों के मुख से ही नारी निन्दा हुई है, जो स्वयं तुलसी की दृष्टि में खल पात्र हैं। तुलसीदास प्रकारान्तर से इन बुरे पात्रों के व्यक्तित्व की कमजोरियों एवं दुर्भावनाओं को उभारने के लिए ही नारी के प्रति उनके अशोभनीय रवैये को उद्घाटित करते हैं। जिससे पाठक के मन में इन पात्रों के प्रति वितृष्णा पैदा हो। यह तुलसीदास की अपनी 'कहन शैली' है जिसे कम से कम बुद्धिजीवियों द्वारा सही सन्दर्भ में देखने की अपेक्षा है। ऐसा करके हम इस महाकवि के नारी विषयक दृष्टिकोण को सही सन्दर्भ में विश्लेषित कर सकते हैं।

संक्षेप में, इनके नारीवादी कवि होने की प्रतिष्ठा करना भी हिन्दी आलोचना की एक अनिवार्य माँग है। एक आलोचक के रूप में यह हमारा दायित्व है कि हम महाकवि के साथ किए गए अन्याय का प्रतिकार करें और इनके साहित्य की सन्दर्भ-विपथित व्याख्या के प्रति हिन्दी जगत का ध्यान आकृष्ट करें। भक्तिकाव्य का पुनर्पाठ सन्दर्भ-सापेक्षता द्वारा ही सम्भव है। **तुलसी के नारीवादी दृष्टिकोण का निर्वचन वर्तमान समय की माँग है। गोस्वामीजी ने 'पार्वती-मंगल' और 'जानकी-मंगल' नामक अपने दो काव्य-ग्रंथ नारी शक्ति को ही समर्पित किये हैं।** ये नारी शक्ति को उद्बुद्ध करने वाले महाकवि हैं। रामचरित मानस में केवल रामकथा का अन्वेषण संकलन, उस पर पुनर्विचार और उसमें इतिहास, कल्पना तथा आधुनिकता का सामंजस्य ही नहीं है, अपितु अपने समय, समाज तथा तत्कालीन घटनाओं के अन्तर्गत नारी-जीवन की समस्या, नारी अस्मिता के प्रश्न एवं उसके प्रति समाज में विद्यमान भेदभाव तथा पूर्वाग्रह का चित्रण भी उसमें मिलता है।

तुलसी सामन्ती संस्कृति में निहित नारी के प्रति अमानवीय दृष्टिकोण का मुखौटा उतारकर उसके प्रति मानवीय संवेदना का उन्नयन करते हैं। इस दृष्टि से उनके सारे नारी पात्र सन्दर्भ-सापेक्ष पुनर्पाठ की माँग करते हैं। यह कार्य स्त्री-विमर्श के पुरस्कर्ताओं को करना चाहिए। संक्षेप में, तुलसीदास के नारी संबंधी दृष्टिकोण में भारतीय वाङ्मय का सार समाहित है। ये संपूर्ण मध्यकाल की जिस तरह समीक्षा करते हैं, वह न केवल इन्हें लोकधर्म का प्रतिष्ठाता बनाता है अपितु नारी जाति का सबसे बड़ा शुभचिन्तक साहित्यकार भी बनाता है। भारतवर्ष की गतिशील लोकोन्मुख परंपरा को जिस तरह गोस्वामी तुलसीदास ने पुरस्कृत किया है और जिस तरह मुगल शासकों के विलासमय जीवन के बरक्स राम के मर्यादावाद को प्रतिष्ठित किया है वह इन्हें नारी अधिकारवादी कवि के रूप में भी कालजयता प्रदान करता है। इस तरह रामचरितमानस में तुलसीदास की व्यापक नारी दृष्टि भी चित्रित हुई है, जो उनकी प्रासंगिकता को और भी उद्भासित करती है।

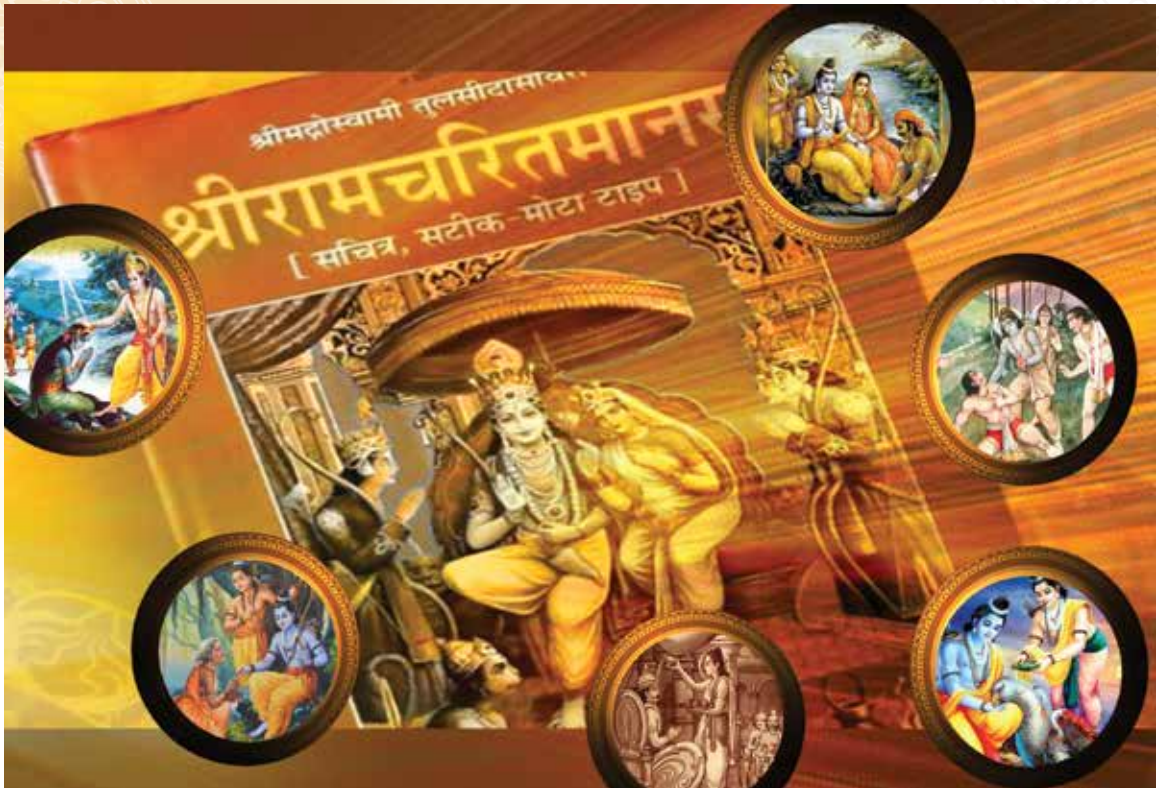

जीवन संस्कृति का संविधान है मानस

लोक और शास्त्र को साथ लेकर चलते हैं तुलसी

संजय तिवारी
संपादक, संस्कृति पर्व एवं अध्यक्ष, भारत संस्कृति न्यास

श्रीरामचरितमानस केवल एक पुस्तक भर नहीं है। यह श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, इतिहास, विज्ञान और जीवन का वह दर्शन है जो भगवान शिव के मानस में रचा गया और गोस्वामी तुलसीदासजी की कलम से अवतरित हुआ। सनातन जीवन संस्कृति का यह आधार दर्शन है, जो गोस्वामीजी के माध्यम से हमें प्राप्त हुआ है। यह ग्रंथ केवल कोई कथा कहानी भर नहीं है। यह साक्षात भगवान का शब्दविग्रह है। श्रीरामचरितमानस पर कुछ समय में कुछ बातें कहने के लिए भी बहुत शक्ति और चिंतन की सामर्थ्य चाहिए।

इस ग्रंथ के एक-एक पात्र महत्वपूर्ण हैं। यदि नायक के रूप में भगवान श्रीराम हैं, तो प्रतिनायक के रूप में महापंडित रावण भी हैं। दसों इंद्रियों पर सम्पूर्ण नियंत्रण रखने वाले चक्रवर्ती दशरथजी हैं, तो उसी अनुपात में दसगुना नियंत्रण न रखने वाले दशानन हैं। भक्ति और पोषक के साक्षात विग्रह भरतजी हैं, तो सेवा के प्रतिमूर्ति लक्ष्मणजी भी हैं। राम को भगवान राम बनाने के लिए स्वयं को खल पात्र बना लेने वाली माता कैकेयी हैं, तो सूर्य उदय का मार्ग देने वाली पूरब दिशा के समान माता कौशल्या हैं। सेवा और परिवार का आदर्श स्थापित करने वाली माता सुमित्रा हैं, तो महा तपस्विनी उर्मिला भी हैं। जगजननी माता सीता तो इस ग्रंथ का आधार हैं। श्री हनुमानजी, जामवंतजी, सुग्रीवजी से लेकर महाराज जनक तक के बारे में केवल कह पाने भर से उनके साथ न्याय नही हो सकता। मानस के मनुष्य, जड़, स्थावर, पशु ,पक्षी,

नदी, समुद्र, सेवक, नाविक से लेकर सम्पूर्ण परिवेश में जीवन के संदेश सुरक्षित हैं। मानस, आदर्श मानव जीवन का महासमुद्र है, जिससे प्रति पल कुछ सीखने को मिलता है।

गोस्वामीजी ने मानस को आकार देते समय जैसे सृष्टि का संविधान ही रच दिया है।

बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना।।
बा.का./5/4।।

उन्होंने यह लिख कर पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि विधाता ने सृष्टि में सकारात्मक और नकारात्मक सभी प्रकार की रचनाओं को सान दिया है, यानी एक ही धरातल पर उतार दिया है। इस तथ्य को गोस्वामीजी ने संत-असंत वंदना में ही प्रस्तुत कर दिया है। ग्रंथ के आरंभ में ही वह लिखते हैं-

बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं।।
बा.का./4/3,4।।

अब मैं संत और असंत दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ, दोनों ही दुःख देने वाले हैं, परन्तु उनमें कुछ अन्तर कहा गया है। वह अंतर यह है कि एक (संत) तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं और दूसरे (असंत) मिलते हैं, तब दारुण दुःख देते हैं (अर्थात् संतों का बिछुड़ना और असंतों का मिलना मरने के समान दुःखदायी होता है)।

उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं।।
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।।
बा.का./4/5,6।।

दोनों (संत और असंत) जगत में एक साथ पैदा होते हैं, पर (एक साथ पैदा होने वाले) कमल और जोंक की तरह उनके गुण अलग-अलग होते हैं। (कमल दर्शन और स्पर्श से सुख देता है, किन्तु जोंक शरीर का स्पर्श पाते ही रक्त चूसने लगती है।) साधु अमृत के समान (मृत्यु रूपी संसार से उबारने वाला) और असाधु मदिरा के समान (मोह, प्रमाद और जड़ता उत्पन्न करने वाला) है, दोनों को उत्पन्न करने वाला जगत रूपी अगाध समुद्र एक ही है (शास्त्रों में समुद्रमन्थन से ही अमृत और मदिरा दोनों की उत्पत्ति बताई गई है)।

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती।।
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू।।
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।।
बा.का./4/7-9।।

भले और बुरे अपनी-अपनी करनी के अनुसार सुंदर यश और अपयश की सम्पत्ति पाते हैं। अमृत, चन्द्रमा, गंगाजी और साधु एवं विष, अग्नि, कलियुग के पापों की नदी अर्थात् कर्मनाशा और हिंसा करने वाला व्याध, इनके गुण-अवगुण सब कोई जानते हैं, किन्तु जिसे जो भाता है, उसे वही अच्छा लगता है।

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु।।
बा.का./5।।

भला भलाई ही ग्रहण करता है और नीच नीचता को ही ग्रहण किए रहता है। अमृत की सराहना अमर करने में होती है और विष की मारने में।

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा।।
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।।
बा.का./5/1,2।।

दुष्टों के पापों और अवगुणों की और साधुओं के गुणों की कथाएँ-दोनों ही अपार और अथाह समुद्र हैं। इसी से कुछ गुण और दोषों का वर्णन किया गया है, क्योंकि बिना पहचाने उनका ग्रहण या त्याग नहीं हो सकता।

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए।।
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना।।
बा.का./5/3,4।।

भले-बुरे सभी ब्रह्मा के पैदा किए हुए हैं, पर गुण और दोषों को विचार कर वेदों ने उनको अलग-अलग कर दिया है। वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा की यह सृष्टि गुण-अवगुणों से सनी हुई है।

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती।।
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू।।
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।।
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा।।
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा।।
बा.का./5/5-9।।

दुःख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाति, दानव-देवता, ऊँच-नीच, अमृत-विष, सुजीवन (सुंदर जीवन)-मृत्यु, माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, सम्पत्ति-दरिद्रता, रंक-राजा, काशी-मगध, गंगा-कर्मनाशा, मारवाड़-मालवा, ब्राह्मण-कसाई, स्वर्ग-नरक, अनुराग-वैराग्य (ये सभी पदार्थ ब्रह्मा की सृष्टि में हैं) वेद-शास्त्रों ने उनके गुण-दोषों का विभाग कर दिया है।

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।।
बा.का/6।।

विधाता ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है, किन्तु संतरूपी हंस दोषरूपी जल को छोड़कर गुणरूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं।

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता।।
काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं।।
बा.का./6/1,2

विधाता जब इस प्रकार का (हंस का-सा) विवेक देते हैं, तब दोषों को छोड़कर मन गुणों में अनुरक्त होता है। काल स्वभाव और कर्म की प्रबलता से भले लोग (साधु) भी माया के वश में होकर कभी-कभी भलाई से चूक जाते हैं।

सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं।।
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।।
बा.का./6/3,4।।

भगवान के भक्त जैसे उस चूक को सुधार लेते हैं और दुःख-दोषों को मिटाकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही दुष्ट भी कभी-कभी उत्तम संग पाकर भलाई करते हैं, परन्तु उनका कभी भंग न होने वाला मलिन स्वभाव नहीं मिटता।

लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ।।
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।।
बा.का./6/5,6।।

जो (वेषधारी) ठग हैं, उन्हें भी अच्छा (साधु का-सा) वेष बनाए देखकर वेष के प्रताप से जगत पूजता है, परन्तु एक न एक दिन वे चौड़े आ ही जाते हैं, अंत तक उनका कपट नहीं निभता, जैसे कालनेमि, रावण और राहु का हाल हुआ ।

किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू।।
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब काहू।।
बा.का./6/7,8।।

बुरा वेष बना लेने पर भी साधु का सम्मान ही होता है, जैसे जगत में जाम्बवान और हनुमानजी का हुआ। बुरे संग से हानि और अच्छे संग से लाभ होता है, यह बात लोक और वेद में है और सभी लोग इसको जानते हैं।

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा।।
साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं।।
बा.का./6/9,10।।

पवन के संग से धूल आकाश पर चढ़ जाती है और वही नीच (नीचे की ओर बहने वाले) जल के संग से कीचड़ में मिल जाती है। साधु के घर के तोता-मैना राम-राम सुमिरते हैं और असाधु के घर के तोता-मैना गिन-गिनकर गालियाँ देते है।

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई।।
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता।।
बा.का.6/11,12।।

कुसंग के कारण धुआँ कालिख कहलाता है, वही धुआँ (सुसंग से) सुंदर स्याही होकर पुराण लिखने के काम में आता है और वही धुआँ जल, अग्नि और पवन के संग से बादल होकर जगत को जीवन देने वाला बन जाता है।

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग।।
बा.का./7क।।

ग्रह, औषधि, जल, वायु और वस्त्र-ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसार में बुरे और भले पदार्थ हो जाते हैं। चतुर एवं विचारशील पुरुष ही इस बात को जान पाते हैं।

सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह।।
बा.का./7ख।।

महीने के दोनों पखवाड़ों में उजियाला और अँधेरा समान ही रहता है, परन्तु विधाता ने इनके नाम में भेद कर दिया है (एक का नाम शुक्ल और दूसरे का नाम कृष्ण रख दिया)। एक को चन्द्रमा का बढ़ाने वाला और दूसरे को उसका घटाने वाला समझकर जगत ने एक को सुयश और दूसरे को अपयश दे दिया।

मानस से आत्मसात करने योग्य बातें

रिश्ते क्या होते है, इसको मानस से सीखना चाहिए। पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-भाई, बड़ा-छोटा, आदेश और उसका निर्वहन।

मित्र धर्म

राम चाहते तो बालि से मित्रता करके रावण पर विजय पा सकते थे, लेकिन उन्होंने सुग्रीव से मित्रता की और मित्र धर्म का पूरा निर्वहन किया। यहाँ तक कि सुग्रीव एक बार राम से किये अपने वादे को भूल भी गए, लेकिन इसके बावजूद राम ने अपना धर्म निभाया और सुग्रीव को उनकी गलती का सलीके से आभास भी कराया।

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।।
कि.का./4।।

तब हनुमानजी ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि को साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी।

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।।
कि.का./6।।

हे सुग्रीव! सुनो, मैं एक ही बाण से बालि को मार डालूँगा।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।।
कि.का./6/1।।

जो लोग मित्र के दुःख से दुखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है।

सेवक का सम्मान

केवट ने बहुत जिद की थी। राम उस पर कुपित नहीं हुए बल्कि उसकी हर बात मानते गए। वह केवट को सजा भी दे सकते थे। केवट निषादराज गुह के राज्य में ही था, लेकिन राम ने उसकी सेवा का सम्मान किया।

जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू।।
अयो.का./99/8।।

हे प्रभु! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरण कमल पखारने के लिये कह दो।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई।।
अयो.का./100/1।।

कृपा के समुद्र श्रीरामचंद्रजी केवट से मुसकराते हुए बोले-भाई! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाय।

व्यक्ति का समाज से संबंध और दायित्व

आसुरी शक्तियों के नाश के लिए समाज के अग्रगण्य व्यक्तियों से लेकर आखिरी तबके तक को एकजुट करने का संदेश अपने हर कदम पर राम ने दिया है। अपने वनगमन के हर चरण में एक तरफ वह अपने से श्रेष्ठ ऋषियों-मुनियों के आशीर्वाद ले रहे हैं और दूसरी ओर वनवासी समाज को जोड़ कर उन्हें भयमुक्त वातावरण उपलब्ध करा रहे हैं। वह समग्र वनक्षेत्र को ही आसुरी शक्तियों से मुक्त कर वनवासी समाज को सौप देते हैं।

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।।
अर.का./9।।

श्रीरामचंद्रजी ने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर दूंगा। फिर समस्त मुनियों के आश्रमों में जा-जाकर उनको सुख दूंगा।

कही भी वह स्वयं राजा नहीं बनते बल्कि जिस समाज का सम्बंधित क्षेत्र है, उसी में से राजा बनाते चलते हैं। यहाँ तक कि लंका का जीता हुआ राज्य भी वह विभीषण को सौंपते हैं।

सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी।।
ल.का./105/6।।

आदर के साथ विभीषण को सिंहासन पर बैठाकर राजतिलक किया और स्तुति की।

जटायु और शबरी प्रसंग

जटायु गिद्ध हैं, पक्षी हैं, लेकिन राम उनको परमधाम में स्थापित करते हैं। शबरी स्वयं को अधम कह रही है, लेकिन राम उसे भामिनि कह कर संबोधित करते हैं। यह वह संबोधन है जिसका प्रयोग उन्होंने अपनी माता के लिए किया है। प्रेम-भक्ति और ईश्वर की आस्था के साथ समाज में निम्नतर माने गए को श्रेष्ठतर साबित करने का चरित्र अद्भुत है।

स्त्री और दलित का सम्मान

पक्षियों में चांडाल कहे जाने वाले कौवे द्वारा रामकथा का व्याख्यान और श्रोता में पक्षियों के राजा, यह मानस की बहुत बड़ी शिक्षा है। यहाँ ज्ञान को भरपूर सम्मान है। इस सम्मान में कोई जाति, वर्ण या वय का भेद नहीं है।

आज भी कोई कितना ही दलित और नारी-विमर्श की बात करता हो, लेकिन किसी दलित स्त्री का जूठन नही खा सकता। राम ने शबरी का जूठन खाया। इससे बड़ा सम्मान क्या हो सकता है। राम राजा भी थे और उनके पास अनेक सेवक और तब तक वनवासियों की बहुत बड़ी सेना भी तैयार थी। वह शबरी को अपने पास भी बुलवा सकते थे। उसका जूठन नहीं भी खाते तो कोई प्रश्न नहीं उठता।

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।।
अर.का./34।।

उन्होंने अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्रीरामजी को दिए। प्रभु ने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेमसहित खाया।

आदर भाव

आदर भाव तो मानस की आत्मा है। मानस का नायक समाज के सभी श्रेष्ठ लोगों का अत्यंत आदर कर रहा है। सभी ऋषियों और मुनियों के साथ संतजनों को राम बहुत आदर देते हैं। यहाँ तक कि परशुराम के क्रोध के बीच भी राम ने उन्हें केवल आदर ही दिया है। वाल्मीकि और भरद्वाज को दंडवत करते हैं। शरभंगजी को स्वयं अग्निदान कर बैकुंठ भेजते हैं।

वचन निर्वहन

मानस में वचन की महत्ता, क्षत्रिय धर्म की महत्ता और कुल की महत्ता को तुलसीदासजी ने बहुत महत्व दिया है।

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई।।
अयो.का./27/4।।

रघुकुल में सदा से यही रीति चली आयी है कि प्राण भले ही चले जायँ, पर वचन नहीं जाता।।

यह प्रसंग ही स्वयं में जीवन का सार प्रस्तुत कर देता है।

मानस को लेकर प्रश्न करने वालों को राम और शबरी के प्रसंग को ध्यान से पढ़ना चाहिए।

राम-शबरी संवाद में जो नवधाभक्ति सूत्र गोस्वामीजी ने दिए हैं, वही सब सवालों का जवाब है। रामचरितमानस के अरण्य कांड में दोहा संख्या 34,35,36 के मध्य की जो चौपाइयाँ हैं, इसमें इसका पूरा वर्णन है। इसमें गोस्वामीजी ने बड़े भाव से शबरी के संकोच को प्रदर्शित किया है, जिसमें शबरी भगवान से कहती हैं कि वो कैसे उनकी भक्ति प्राप्त कर सकती हैं, जबकि वो जाति से अधम और मति से भी जड़ हैं। शबरी कहती हैं-

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।
अर.का./34/2।।

शबरी के इस सवाल के जवाब में गोस्वामीजी भगवान श्रीराम से उत्तर दिलवाते हैं कि राम को जाति-पाँति के भेदभाव का कोई सवाल भक्ति के मामले में मंजूर नहीं है। राम कहते हैं-

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता।।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।।
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं।।
अर.का./34/4-7।।

पहली बात तो राम के जरिए गोस्वामीजी शबरी के लिए अत्यंत आदरसूचक भामिनी संबोधन देते हैं। कहते हैं कि जात-पाँत, परिवार, कुल, गोत्र, पैसा, बल, परिवार, बुद्धि और चतुराई जैसी बातों का मेरे लिए कोई मतलब ही नहीं है। क्योंकि जिस मनुष्य में भक्ति नहीं है, श्रद्धा नहीं है, उसकी किसी बात का वैसे ही कोई महत्व नहीं है, जैसे बिना जल के बादलों का। मतलब है तो केवल प्रेम का, श्रद्धा का, भक्ति का। ईश्वर से नाता जोड़ने के लिए यही चीजें महत्व रखती हैं। इसमें जाति का कोई मतलब नहीं है।

नवधा भगति के सूत्रों को भारत के आध्यात्मिक जगत में बड़े आदर के साथ सुनाया जाता है। जो सूत्र शबरी और शाबर संप्रदाय से जुड़े हैं, शायद उन्हें शाबर संप्रदाय से ही गोस्वामीजी ने उठा लिया। इसमें कहा गया है -

1-पहली भक्ति- संतों का सत्संग है और संतों की कोई जाति नहीं होती। यही लोक परंपरा कहती है। इसी लोक को तुलसी अपनी आँखों के सामने रखते हैं और आगम-निगम यानी आगम मतलब लोकमान्यताओं और निगम मतलब शास्त्र को साथ लेकर चलते हैं।

2-दूसरी भक्ति- भगवान की कथा चर्चा जहाँ हो वहाँ मन लगाओ, जिस रूप में हो, उसे सुनो, उस पर ध्यान दो। आध्यात्मिक बातों और धर्ममय चरित्र पर चलने का यहाँ बड़ा महत्व है।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
अर.का./34/8।।

3-तीसरी भक्ति- अपने जो गुरु हैं, उनकी सेवा करो।

4-चौथी भक्ति- कपट, छल मत करो और कपट त्यागकर शुद्ध भाव से मेरे गुणों का गान करो। कोई न कोई मंत्र नियमित जपो और ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखो।

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।
दोहा, अर.का./35।।

5-पाँचवीं भक्ति- मेरे नाम (राम) का जप और मुझमें दृढ़-विश्वास-यह जो वेदों में प्रसिद्ध है।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।
अर.का./35/1।।

6-छठी भक्ति- इसका सूत्र वही है जो भगवान बुद्ध ने भी बताया है कि दम और शील को धारण करो। यानी आत्म-नियंत्रण रखो और जीवन में शुद्ध चरित्र को महत्व दो। बहुत सारे विषयों में एक साथ मत फँसो। जो सज्जन हैं, उनका साथ करो, सज्जनों के धर्म-मार्ग पर चलो।

छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।
अर.का./35/2।।

7-सातवीं भक्ति- सब सवालों का जवाब है, जिसमें गोस्वामीजी कहते हैं कि सारे जगत को राममय ही देखो और उसमें भी संतों की बात को सबसे ज्यादा महत्व दो। यही कबीर कहते हैं कि राम को महत्व दो। संतों भाई आई ज्ञान की आँधी रे। देश और मानवता को संत ही संभालते हैं और मार्गदर्शन करते हैं।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।
अर.का./35/3।।

8-आठवीं भक्ति- यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि कर्म तो पूरी ईमानदारी से करो किन्तु जो भी लाभ हो या न हो उसमें संतोष करो। और जीवन में कर्म करते समय दूसरे लोगों में दोष को मत खोजो। हमेशा कमियाँ खुद में देखो और दूसरों के लिए अच्छे शब्दों का ही इस्तेमाल करो।

आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।
अर.का./35/4।।

9-नवीं भक्ति- यह सूत्र भी अद्भुत है कि सबके साथ अति सरल भाव से रहो और किसी के साथ छल और कपट मत करो। राम नाम पर दृढ़ भरोसा रखो और मन में किसी प्रकार का अवसाद मत आने दो, सदा खुश रहो, हर हाल में खुश रहना सीखो।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें।।
अर.का./35/5-7।।

अब यहाँ गोस्वामीजी रचित रामचरितमानस में भगवान के साथ शबरी की इन नौ विशेष भगति सूत्रों पर चर्चा हुई। गोस्वामीजी इसका सार-संक्षेप लिखते हैं कि इसमें से नौ की नौ तो छोड़िए, कोई मनुष्य एक सूत्र भी यदि जीवन में अपना ले तो चाहे वो स्त्री हो या पुरुष किसी जाति का हो, वही ईश्वर का सबसे प्रिय बन जाता है।

गोस्वामीजी के मौलिक चिंतन में तो भक्ति भेदभाव नहीं कर सकती है। नवधा भक्ति सूत्र लिखने वाले गोस्वामीजी फिर कैसे भेदभाव की बात कर सकते हैं? गोस्वामी तुलसीदास के जीवन की यथार्थ और कटु सच्चाई तो यही है कि उनकी माँ उन्हें जन्म देते ही परलोक सिधार गईं। उनके ज्योतिषी पिता ने ग्राम पर किसी आपदा के आने की भविष्यवाणी देखते हुए उन्हें पड़ोसी गांव की एक शूद्र महिला को पालन-पोषण के लिए दे दिया। उनका बचपन तो एक शूद्र अर्थात आज की प्रचलित परिपाटी के अनुसार अनुसूचित या दलित महिला की गोद में ही पला-बढ़ा। क्योंकि उनके पिता का भी कुछ ही दिनों में निधन हो गया और गांव भी शायद गंगा की बाढ़ में या मुगल सेना की लूट की भेंट चढ़ गया। इन बातों का ब्यौरा गोस्वामी तुलसीदास ने स्वयं ही अपने अनेक पदों में दिया है।

तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों।।
विनय पत्रिका।।

अर्थात् पिता ने तो कोई कुटिल कीड़ा समझकर ही फेंक दिया था, लेकिन हे राम! तुम्हारी कृपा ने इस तुलसी को नवजीवन दे दिया। नवधा भक्ति सूत्र के अंत में गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं कि किसी भी जाति के नर-नारी को छोड़िए, समस्त चर-अचर जीव जगत में कोई भी राम की ओर देखता है तो उसके जीवन में बदलाव आने लगता है।

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें।
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई।।
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।
अर.का./35/7-9।।

भगवान का दर्शनमात्र जीव को उसके उसी सहज रूप से मिलाता है, जो वस्तुतः राम का ही रूप है।

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।
बा.का./7घ/2।।

यानी सारे संसार में सीता-राम का रूप देखो। दोनों हाथ उठाकर सबको प्रणाम करो, क्योंकि हर किसी में अंतर्यामी रूप में वही सीताराम बसते हैं।

ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।

सु.का./58/6।।

यह प्रसंग आजकल चर्चा में है। चर्चा करने वाले यह नहीं बता रहे कि यह बात कही है समुद्र ने। किस संदर्भ में यह बात आई है, उसके बारे में भी विचार करना चाहिए। ताड़ना शब्द अवधी का है, जिसका अर्थ होता है गहराई से समझने योग्य। इसका अर्थ प्रताड़ना तो किसी भी हाल में नहीं है। रामचरितमानस की भाषा अवधी है। अयोध्या से बस्ती के बीच जो लोग रहते हैं उनकी लोकभाषा में ताड़ना शब्द बार-बार आता है।

ढोल को ताड़ने का क्या मतलब हो सकता है। गँवार तो ब्राह्मण भी हो सकता है। शूद्र तो वर्ण है, कोई जाति नहीं है। प्राचीन काल से चारों वर्ण एक-दूसरे पर ही आश्रित हैं। भारत में प्राचीन काल से सभी में परस्पर प्रेम रहा है, ऐसा नहीं होता तो भारत में 6 लाख से ज्यादा गांव बसे तो इनमें एक भी गांव किसी एक जाति या किसी एक वर्ण का नहीं है। हर गांव में सभी वर्णों के लोगों की बसावट साथ-साथ, सोच-समझकर रखी गई। एक गांव को कुटुंब ही माना गया है। इसमें सबके अधिकार और कर्तव्य निर्धारित थे। पशु में गौ है, जिसे भारत ने परंपरा से माता का दर्जा दिया है। बुद्ध ने भी गौ की महिमा गाई और भिक्षुक को चीवर और गोमूत्र-औषधि आदि के सेवन का मंत्र दिया। नारी तो माता ही है, गोस्वामीजी तो जगतजननी के रूप में माता सीता को हृदय में रखते रहे। वह नारी के बारे में अशोभनीय बात कैसे लिख सकते हैं? इसलिए गोस्वामीजी के बारे में या रामचरितमानस के बारे में बुद्धि और तर्क से विचार किया जाना चाहिए। इसमें किसी दुष्प्रचार का हिस्सा नहीं बनना चाहिए।

ब्राह्मण सबका है और सबके लिए है, जैसे सभी वर्ण सभी के लिए हैं। उसे जो स्थान मिला, वह भारत के समाज ने दिया है। जो कार्य उसने किया, वह भी इसी समाज के कारण उसने किया है। शेष समाज से अलग होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं है।

पूजिअ बिप्र सील गुन हीना।।

अर.का./33/2।।

ब्राह्मण को सात्विक, राजसिक, तामसिक तीनों ही गुणों से परे जाना होगा, तभी वह पूज्य है, अन्यथा नहीं है। ब्राह्मण की यात्रा गुणों में उलझने की नहीं है, उसे समस्त गुणों से मुक्त होकर उस मार्ग पर जाने का प्रयास करना चाहिए, जबकि वह सभी गुणों से परे होकर उस एक अखंड सच्चिदानंद परमात्मा में लीन हो जाता है। यही धर्म या धम्म मार्ग भी है। यही ब्राह्मणत्व है कि वह संपूर्ण समाज को स्वयं में धारण कर चले, समाज की आत्म-शक्ति को जगाए, उसके मन में, जीवन में अच्छाई का प्रचार और प्रसार करे। उन्हें गलत रास्ते पर जाने से रोके, उनकी शिक्षा का प्रबंध करे और बदले में कोई शुल्क नहीं ले और जिस तरह से समाज उसे रखे, उसी तरह से रहे। भिक्षा ही उसके जीवन का आधार प्राचीन समय से रहा है। बुद्ध ने भी अपने भिक्षुकों के लिए कठोर ब्राह्मण जीवन के आदर्श को ही सामने रखा था।

वास्तव में यही भारत है और यही भारत होने की कथा है। आधुनिक समझ वाले कुछ लोग इसे न सुनना चाहते हैं और न ही समझना। जब तक समझने का उनका मन होगा, तब तक शायद बहुत देर हो चुकी होगी। भारत को तोड़ने की शक्तियाँ तब तक शायद अपनी साजिशों में गहरी सफलता प्राप्त कर चुकी होंगी। हमें इसकी चिंता इसलिए नहीं होती क्योंकि इन साजिशों के समय में भी भारत के नायक स्पष्ट सामने दिखाई देते हैं। जैसे आचार्य चाणक्य कहते हैं कि यदि दुष्ट शक्तियों, घातक और हिंसक प्राणियों, सर्प आदि की भयानक आतंकी वृत्तियों की चली होती तो यह संसार कब का समाप्त हो गया होता, किन्तु अनेक ज़हरीले जीवों के होते हुए भी यह संसार अपनी शांति और आनंदमय गति से चलता आया है तो कोई न कोई तो बात है जो संसार की गति को संतुलित रखती है। शांति और धीरज का परिचय देते हुए सामाजिक समरसता और एकता के लिए शांत मन से आगे बढ़ेंगे तो सदा ही जैसे विजय मिलती रही है, तो आगे तो और अधिक प्रचंड विजय ही विजय मिलने का रास्ता साफ हो रहा है।

मानस को लेकर कुटिल, कामी और लोभी लोगों के पेट में दर्द किसी और बात से उठ रहा है। उन्हें पच नहीं रहा है कि अयोध्या पहुँच चुके शालिग्राम शिला का प्रचंड प्रवाह माता सीता और प्रभु श्रीराम का रूप धारण कर अपना पूर्ण स्वरूप ले चुका है। 2024 की जनवरी में उसी के प्रकाश से यह जग आलोकित हो उठा है। भारत की इस प्रचंड शक्ति के प्रवाह को विश्व महसूस कर रहा है। मानस के माध्यम से गोस्वामीजी ने पहले ही कह दिया है-

सीय राममय सब जग जानी।।

बा.का./7घ/2।।

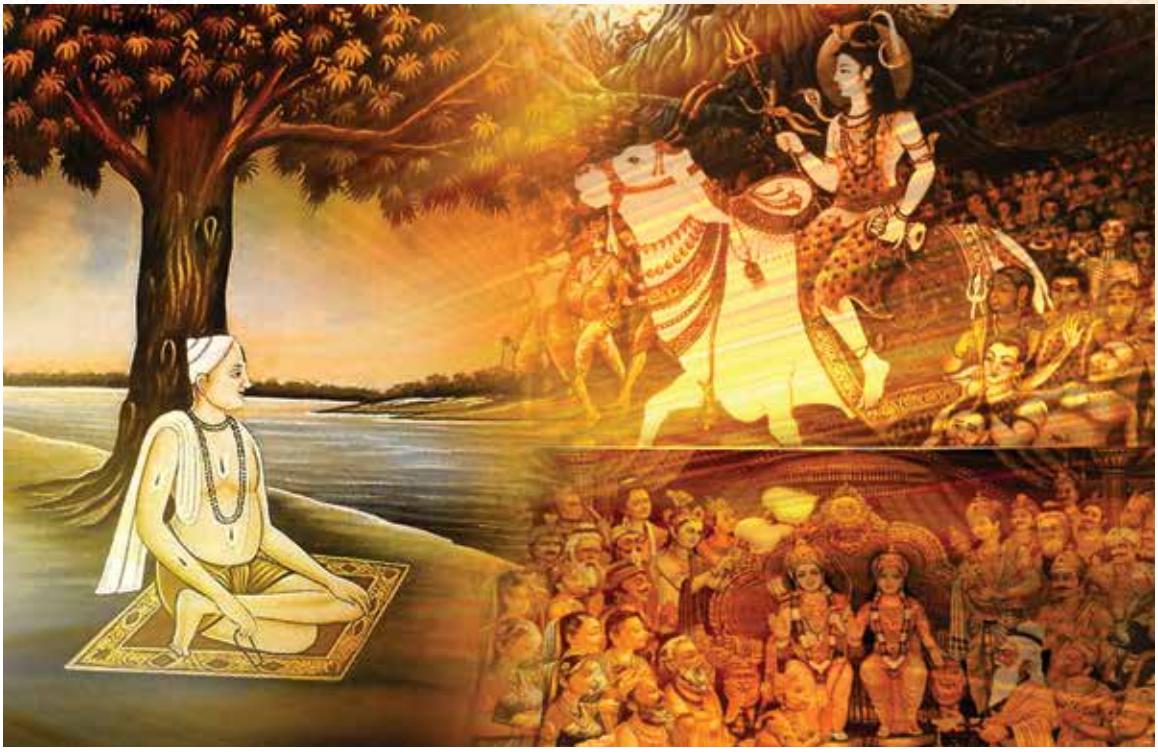

राम, तुलसी और सामाजिक समरसता

परिवार और समाज से कैसे रखे मधुर संबंध-मानस की सार्वकालिक प्रासंगिकता

विजय शंकर मिश्रा 'भास्कर'
कवि, लेखक, समीक्षक-साहित्यभूषण, उ.प्र. हिंदी संस्थान लखनऊ

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। प्रायः चौरासी लाख योनियों में चार प्रकार के (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज) जीव जल, पृथ्वी और आकाश में रहते हैं। उन सबका अपना संकुल होता है, सबकी अपनी जीवनचर्या होती है। मनुष्य का जन्म परिवार में होता है। परिवार में उसका पालनपोषण और शिक्षण होता है। परिवार के माध्यम से ही मनुष्य का कुलशील विकसित होता है। परिवार की पाठशाला के साथ-साथ वह समाज द्वारा स्थापित पाठशाला में पदार्पण करता है।

वर्तमान में यह सामाजिक ढांचा चरमरा रहा है, अपसंस्कृति हावी हो रही है और मनुष्य सामाजिक दायित्व को भूलकर स्व के पोषण में प्रवृत्त हो रहा है। वह 'आप आप ही चरे' को चरितार्थ करने में आनंद ढूंढ़ता हुआ भटकाव की पराकाष्ठा तक पहुंच रहा है। उसकी स्वार्थी सोच उसके जीवन को लक्ष्यभ्रष्ट और पथभ्रष्ट बना देती है। उसकी इस वृत्ति के कारण सामाजिक पर्यावरण असंतुलन की स्थिति को प्राप्त हो रहा है।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति सः पण्डितः।।

दूसरे की पत्नी को अपनी माता के समान, दूसरे के द्रव्य को ढेले के समान और सभी प्राणियों को अपने समान समझने वाला पण्डित कहा गया है। पंडित कौन हैं, जिनकी आत्मा का अज्ञान, ज्ञान द्वारा नष्ट हो चुका है, जो परमार्थतत्त्व को समभाव से देखते हैं।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

ऐसे पण्डित समदर्शी कहलाते हैं।

रामचरितमानस परिवार की आदर्श पाठशाला है। रामचरितमानस में पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं-

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी।।
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।
बा.का./7घ/1,2।।

अपने को सम्पूर्ण सृष्टि के सभी जीवों के प्रति गोस्वामी तुलसीदासजी ने आदरभाव प्रदर्शित करते हुए सबका कृपापात्र किंकर कहा है और सबसे छलरहित छोह की याचना किया है। गोस्वामीजी की सामाजिक समरसता का भाव श्रीरामचरितमानस में आद्योपान्त भरा हुआ है।

शिव विवाह प्रसंग में शिव परिवार का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने वसुधैव कुटुंबकम् के मनोहारी स्वरूप का दर्शन कराया है। शिवगणों द्वारा सृष्टि के आदिपुरुष भूतभावन भोलेनाथ के दूल्हे के रूप में श्रृंगार का जो वर्णन हुआ है, वह समष्टि के समाहित स्वरूप हेतु विचारणीय है।

सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा।।
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला।।
बा.का./91/1,2।।

विश्वपिता संपूर्ण परिवार के आनंद में ही आनंदित होते हैं। सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् के प्रतीक भोलेनाथ देवताओं के समाज के साथ-साथ अपने गणों को भी बारात में चलने के लिए आहूत करते हैं। शिवगण, शिव की आज्ञा पाकर बारात करने के लिए आते हैं। कोई मुखहीन है, तो कोई विपुल मुखवाला है। कोई बिना हाथ पैर का है, तो किसी के बहुत हाथ-पैर हैं। कोई नेत्रविहीन है, तो किसी के कई-कई नेत्र हैं। प्रेत पिशाच भी बाराती हैं। देवों का समाज अलग जमात बनाकर चल रहा है। इसीलिए शिव भूतभावन भूतनाथ हैं, सर्वेश्वर हैं और तुलसी के आराध्य श्रीरामजी के रामेश्वर हैं। मानस के रचयिता भगवान् शिव के विवाह प्रकरण में शिव परिवार का दर्शन कराकर गोस्वामीजी ने सामाजिक समरसता की सार्वकालिक प्रासंगिकता की पूर्वपीठिका रच दी है।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का व्यवहार सामाजिक समरसता का अद्भुत परिदृश्य उपस्थित करता है। बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था के लिए सामाजिक समरसता का आदर्श बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड में छाया हुआ है।

इस परिदृश्य को चित्रित करते हुए मानसकार लिखते हैं

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।।
बा.का./204/7,8।।

बाल्यावस्था में गुरुकुल में शिक्षार्थ चारों राजकुमारों के गमन और विद्यार्जन का वर्णन हुआ है।

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई।।
बा.का./203/4।।

किशोरावस्था में महामुनि विश्वामित्र के साथ श्रीराम और लक्ष्मण मिथिला नगरी में पहुँचते हैं। नगर दर्शन हेतु हाथ में धनुष बाण लेकर बिहरने वाले दोनों भाइयों को देखकर नर-नारी चकित हो रहे हैं। एक चक्रवर्ती नरेश के युवराज का सर्वतोभावेन सुंदर आचरण इस प्रकार की सुखद स्थिति का निर्माण करता है जिसमें,

कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल।।
बा.का./204।।

अर्थात् कोसलपुर के रहनेवाले स्त्री, पुरुष, बूढ़े और बालक सभी को कृपालु राम प्राणों से भी बढ़कर प्रिय लगते हैं।

यही स्थिति धनुषयज्ञ हेतु धनुष मखशाला के दर्शन प्रसंग में बनती है। यज्ञशाला देखते समय प्रेम के वशीभूत जनकपुर के बालकों के साथ श्रीराम और लक्ष्मण का व्यवहार सराहनीय है,

सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने।।
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई।।
बा.का /224/1,2।।

श्रीरामचन्द्रजी ने सब बालकों को प्रेम के वशीभूत जानकर (यज्ञभूमि के) स्थानों की प्रेमपूर्वक प्रशंसा की। इससे बालकों का उत्साह, आनंद और प्रेम और भी बढ़ गया, जिससे वे सब अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उन्हें बुला लेते हैं और प्रत्येक के बुलाने पर दोनों भाई प्रेम सहित उनके पास चले जाते हैं।

पुष्पवाटिका प्रसंग में गुरुदेव विश्वामित्र की पूजा के लिए मालीगणों से पूछकर ही पुष्पचयन करना सामाजिक समरसता को दर्शाता है। सामाजिक व्यवस्था बड़े और छोटे तबकों के लिए एक समान होनी चाहिए। यह त्रेतायुग में भी प्रासंगिक थी और आज भी अपरिहार्य है।

धनुर्भंग के पश्चात् राजा जनकजी ने महाराज दशरथ के पास बारात लेकर आने का संदेश भेजा है। चक्रवर्ती महाराज दशरथजी का व्यवहार और संभाषण सामाजिक समरसता की गवाही दे रहा है,

तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे।।
भैआ कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीकें निज नयन निहारे।।
बा.का./290/3,4।।

अर्थात् तब राजा दूतों को पास बैठाकर मन को हरने वाले मीठे वचन बोले-भैया! कहो, दोनों बच्चे कुशल से तो हैं? तुमने अपनी आँखों से उन्हें अच्छी तरह देखा होगा।

राघवेंद्र के व्यवहार से अयोध्याकाण्ड में सामाजिक समरसता तब मूर्तिमान हो उठती है, जब राम के वनगमन का समाचार पाकर भरत विह्वल हो जाते हैं और सारी प्रजा उनके साथ श्रीराम का दर्शन करने के लिए उमड़ पड़ती है।

मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई।।
धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सीलु सनेहु सराहत जाहीं।।
कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू।।
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी।।
अयो.का./184/3-6।।

चित्रकूट में आम नागरिकों के बीच श्रीराम भरत को चौदह वर्ष तक राजकार्य चलाने का आदेश देते हैं। प्रजाजन इसके साक्षी बनते

हैं। श्रीराम के खड़ाऊँ राजसिंहासन पर विराजमान होते हैं और सारी प्रजा रामराज्य को संभालने में कटिबद्ध हो जाती है। अयोध्याकाण्ड से लंकापुरी की दूरी चौदह वर्ष का अंतराल रखती है। इन चौदह वर्षों में रामराज्य लाने के लिए सब जी-जान से लग जाते हैं। श्वेत क्रांति, हरित क्रांति के साथ-साथ सुख-समृद्धि में कई गुना वृद्धि होती है। भरत नंदिग्राम में बसते हैं, जहाँ आम नागरिक बेरोक-टोक अपने राजा से मिल सकते हैं। महलों में जनकपुर की बेटियाँ दिन-रात जागरण करती हैं और रामराज्य आता है जिसकी समृद्धि मानसकार के शब्दों में निम्नवत् वर्णित होती है-

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई।।
उ.का./19ग/7,8।।
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
उ.का./20/5-7।।
फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।
उ.का./22/1,2।।

हर ऋतु में फल देने वाले वृक्षों का रोपण हुआ था, जो आपसी प्रेम और सौहार्द से ही संभव है। धरती शस्य से संपन्न रहती थी। लता विटपों का बाहुल्य था। गायें मनचाहा दुग्ध प्रदान करने वाली थीं। विषमता का अभाव ही समरसता को जन्म देता है। रामराज्य में ऐसा ही समरस समाज था।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
उ.का./20/1,2।।

राम राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बतायी हुई नीति में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई।।
उ.का./19ग/8।।

सभी मनुष्यों का आपस में प्यार और सद्भाव के साथ रहना सामाजिक समरसता का दर्पण है। इस प्रकार के रामराज्य का आधार राजा और प्रजा के बीच का खुला संवाद था।

पूज्यपाद गोस्वामीजी ने उत्तरकाण्ड में इसका भी रहस्य बतलाया है,

एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए।।
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन।।
उ.का./42/1,2।।

साधारण सभा की खुली बैठक में श्रीरघुनाथजी के बुलाये हुए गुरु वशिष्ठजी, ब्राह्मण और अन्य सब नगर निवासी सभा में आये। जब गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सब सज्जन यथायोग्य बैठ गये, तब भक्तों के जन्म-मरण को मिटाने वाले श्रीरामजी वचन बोले-

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी।।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई।।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।
उ.का./42/3-6।।

कोसल नरेश श्रीरामजी के इन वचनों में सामाजिक समरसता का अमृत छलक रहा है। जिनका अवतार ही धर्म की संस्थापना के लिए हुआ है, वे ऐसा क्यों नहीं कहेंगे?

वृद्धावस्था की आचार संहिता भी श्रीरामचरितमानस के लंकाकाण्ड में निम्नवत् वर्णित है-

संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेपन जाइहि नृप कानन।।
तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता।।
ल.का./6/3,4।।

वर्तमान परिदृश्य में कानन विलुप्त हो गए हैं, कानन की चारुता मिट चुकी है और उसका आकर्षक गुरुकुलों के अस्तित्व के बिना समाप्तप्राय हो चुका है। तब भी समाज में रहते हुए सांसारिकता से विरक्त होकर मन और चित्त को परमार्थ में नियोजित करके भगवद्भजन में रम जाना तो हमारे हाथ में है ही।

श्रीरामचरितमानस में प्रभु श्रीराम का शबरी के घर जाना, गिद्धराज जटायु को गले लगाना, ऋषियों-मुनियों के आश्रम पर जाना, उन्हें आतंकी घटनाओं से मुक्ति दिलाना सामाजिक समरसता के स्थापन का मुख्य हेतु ही माना जा सकता है।

यह समरसता सार्वकालिक है, त्रेता से चलकर अद्यावधि इसकी प्रासंगिकता निर्विवाद स्थापित है। श्रीरामचरितमानस भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व में समादृत है। इसके प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। इसका अनुशीलन विश्व के हर भू-भाग में हो रहा है। इसकी परिवार व्यवस्था आचरणीय है।

श्रीरामचरितमानस का नियमित पाठ
परिवार में हो सुख शांति समृद्धि का वास

डॉ हिमांशु प्रसाद मिश्र

संजीत मिश्रा

राजीव कुमार

श्रीरामचरितमानस द्वारा अनुशासित एवं संस्कारित समाज का निर्माण

परिवार और समाज में सकारात्मक ऊर्जा का सृजन करती हैं रामचरितमानस

डॉ प्रदीप कुमार सिंघल, राष्ट्रीय अध्यक्ष संस्कृति संज्ञान
आर सी बंसल, वरिष्ठ सलाहकार संस्कृति संज्ञान
राजीव रंजन, वरिष्ठ पत्रकार एवं इतिहासविद

आज के भौतिकवादी और पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित भारतीय समाज में सनातन संस्कृति धर्म में आस्था निरंतर कम हो रही है, जिसके फलस्वरूप आपसी समझ, तालमेल, प्रेम एवं अनुशासन में बहुत ही गिरावट आ गयी है। लोगों में आक्रोश, चरित्र हनन, अपराधिक मानसिकता, भ्रष्टाचार इत्यादि जैसी राक्षसी प्रवृत्तियों का जन्म हो रहा है। भारतीय अस्तित्व और भविष्य के लिये यह बहुत ही खतरनाक है।

रामचरितमानस एक व्यवहारिक ग्रंथ है, इसमें अनेकों जगह ऐसे दोहे और प्रसंग हैं, जिनका परिवार में नित्य पाठ करने से परिवार और समाज को अनुशासित एवं संस्कारित किया जा सकता है।

माता-पिता और गुरु का आदर

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।।
बा.का./204/7,8।।

श्रीरघुनाथजी प्रातःकाल उठकर माता-पिता और गुरु को मस्तक नवाते हैं और आज्ञा लेकर नगर का काम करते हैं। उनके चरित्र

देख-देखकर राजा मन में बड़े हर्षित होते हैं।

सेवक और स्वामी की प्रीति

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ।।
अयो.का./306।।

सेवक हाथ, पैर और नेत्र के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक-स्वामी की ऐसी प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं।

आपसी प्रेम

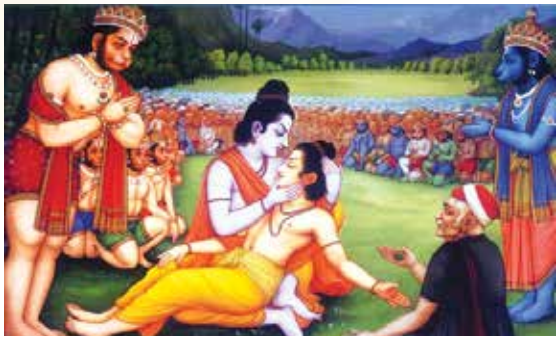

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी।।
अर्ध राति गई कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ।।
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।।
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता।।
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।।
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।
लं.का./60ख/1-8।।

वहाँ लक्ष्मणजी को देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्य के अनुसार वचन बोले-आधी रात बीत चुकी, हनुमान नहीं आये। यह कहकर श्रीरामजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को उठाकर हृदय से लगा लिया। (और बोले) हे भाई! तुम मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल था। मेरे हित के लिये तुमने माता-पिता को भी छोड़ दिया और वन में जाड़ा, गरमी और हवा सब सहन किया।

हे भाई! वह प्रेम अब कहाँ है? मेरे व्याकुलतापूर्ण वचन सुनकर उठते क्यों नहीं? यदि मैं जानता कि वन में भाई का विछोह होगा तो मैं पिता का वचन (जिसका मानना मेरे लिये परम कर्तव्य था) उसे भी न मानता।

पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार ये जगत में बार-बार होते और जाते हैं, परन्तु जगत में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। हृदय में ऐसा विचारकर हे तात! जागो।

क्रोध पाप का मूल

लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल।।
बा.का./277।।

लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा-हे मुनि! सुनिये, क्रोध पाप का मूल है, जिसके वश में होकर मनुष्य अनुचित कर्म कर बैठते हैं और विश्वभर के प्रतिकूल चलते (सबका अहित करते) हैं।

अच्छे मित्र-स्वस्थ संस्कार

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।।
जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा।।
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।।
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।।
आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई।।
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई।।
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।।
सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें।।
कि.का./6/1-10।।

जो लोग मित्र के दुःख से दुखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु के समान जाने। जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे।

लेन देन में मन में शंका न रखे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय में तो सदा सौगुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत मित्र के गुण ये हैं। जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है-हे भाई जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है। मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र- ये चारों शूल के समान पीड़ा देने वाले हैं। हे सखा मेरे बल पर अब तुम चिंता छोड़ दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारे काम आऊँगा।

व्यवहार

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।।
कि.का./8/7,8।।

श्रीरामजी ने कहा-हे मूर्ख! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या-ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता।

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।।
सु.का./37।।

मंत्री, वैद्य और गुरु— ये तीन यदि भय या आशा से प्रिय बोलते हैं तो राज्य, शरीर और धर्म इन तीन का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं।।
सु.का./37/5,6।।

जो मनुष्य अपना कल्याण, सुंदर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह हे स्वामी! पर स्त्री के ललाट को चौथ के चन्द्रमा की तरह त्याग दे। अर्थात जैसे लोग चौथ के चंद्रमा को नहीं देखते, उसी प्रकार पर स्त्री का मुख ही न देखें।

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत।।
सु.का./38।।

तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना।।
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी।।
अर.का./25/3,4।।

संयम-सफलता की कुंजी

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी।।
अर.का./4/7।।

कार्य की समय सीमा

कार्य को समय पर नहीं करने की प्रवृति से लोग विचलित होते हैं, झूठ का सहारा लेते हैं, जिससे व्यक्तित्व निर्माण एवं विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई।।
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ।।
कि.का./21/7,8।।

जाकर जानकीजी को खोजो। हे भाई! महीने भर में वापस आ जाना। जो अवधि बिताकर बिना पता लगाये ही लौट आवेगा, उसे मेरे द्वारा मरवाते ही बनेगा अर्थात मुझे उसका वध करवाना ही पड़ेगा।

परिवार के साथ नित्य सुबह श्रीरामचरितमानस के इन दोहों का बच्चों के साथ, बच्चों के द्वारा पाठ अवश्य करें, परिवार और बच्चे संस्कारित, अनुशासित, राष्ट्र प्रेमी एवं जीवन लक्ष्य केंद्रित होंगे।

हनुमानजी की शौर्य-गाथा-सुंदरकांड

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना।।

हनुमानजी की प्रबंधन क्षमता, नीति निपुणता, राजनय परिपक्वता, युद्ध कौशल एवं बुद्धिमत्ता युवाओं के लिए प्रेरणा स्रोत है।

लंका विजय की आधारशिला हनुमानजी के सार्वभौमिक गुणों के कारण ही बनी। इसका वर्णन बहुत ही प्रभावी ढंग से इस कांड में मिलता है।

डॉ प्रदीप कुमार सिंघल, अध्यक्ष, संस्कृति संज्ञान
राजकुमार गोयल, समाजसेवी एवं राष्ट्रवादी लेखक
मिलन दीप सिंघल, समाजसेवी एवं राष्ट्रवादी चिंतक

श्रीरामचरितमानस का पाँचवाँ कांड है सुंदरकांड। सुन्दरकांड में 3 श्लोक, 60 दोहे और 526 चौपाइयाँ है। 60 दोहों में से 30 दोहों में भगवान् विष्णु स्वरूप भगवान् श्रीरामजी का वर्णन किया गया है। इस कांड में सुंदर शब्द 24 चौपाइयों में आया है। सुदरकांड का सौंदर्य अप्रतिम और अद्भुत है।

सवाल उठता है कि आखिर यह कांड किस दृष्टि से 'सुंदर' है? तुलसीदास ने इसका नाम सुंदरकांड क्यों रखा? एक मान्यता है कि लंका की जिस अशोक वाटिका में रावण ने माता सीता को रखा था, वह सुंदर पर्वत पर स्थित था, इसलिये इसका नाम सुंदरकांड रखा गया है। लेकिन इस कांड को पढ़ने के बाद लगता है कि यही एक कारण नहीं है। इसे समझने के लिये हमें सुंदरकांड की विषय-वस्तु को समझना होगा।

सुंदरकांड में हनुमानजी को प्रभु श्रीराम लंका भेजकर माता सीता का पता लगाने की जिम्मेदारी देते हैं। हनुमानजी लंका जाकर

सीताजी का पता लगाने के साथ-साथ लंका दहन करके लंकेश रावण और वहाँ की जनता के बीच जिस तरह का माहौल बनाकर वापस लौटते हैं, वह रामकथा का सबसे महत्वपूर्ण भाग है।

सुंदरकांड में साहित्यिक सौंदर्य, लंका की तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक दशा-दिशा, नीति, कूटनीति, राजनीति, राजनय, सैन्यकला, कार्य-प्रबंधन, बल-बुद्धि-विवेक के सर्वोत्तम प्रयोग, दुश्मन के साथ व्यवहार आदि ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जो गहन विवेचन के बाद हम सबके मनो-मस्तिष्क को झंकृत करते हैं। इस कांड में आरंभ से लेकर अंत तक प्रत्येक दोहा, प्रत्येक छंद, प्रत्येक सोरठा और प्रत्येक चौपाई हमारी जीवन-यात्रा को सुगम बनाने के लिये बहुत उपयोगी हैं। **सुंदरकांड के पाठ से हमारे जीवन में कई प्रकार के सकारात्मक परिवर्तन आते हैं। ये परिवर्तन हमें जीवन में अनेक समस्याओं का समाधान करने में काफी मददगार साबित होते हैं।**

रामचरितमानस की रचना गायन की दृष्टि से की गयी है। इसका गायन हमारे मनोमस्तिष्क में सकारात्मक रसायनों का स्राव करने में प्रेरक की भूमिका निभाता है। यह वैज्ञानिक प्रयोगों में सिद्ध हो चुका है। सुंदरकांड की शुरुआत उस प्रसंग से होती है जब सुग्रीव के नेतृत्व में समस्त वानर, भालू समुद्र के किनारे बैठकर लंका जाकर सीता माता का पता लगाने के बारे में मंत्रणा करते हैं। इस समाज में हनुमानजी भी चुपचाप बैठे हुए थे। जब जामवंत ने उन्हें उनके बल की याद दिलायी, तब वह लंका जाने के लिये तुरंत तैयार हो गये और प्रभु श्रीराम के अमोघ बाण की तरह लंका के लिये चल दिये।

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
श्लोक 3/1।।

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना।।
श्लोक /3/8।।

तर्क की कसौटी पर विचार किया जाय तो यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि बल, बुद्धि और विद्या के भंडार हनुमानजी को अपनी शक्ति का अंदाजा न रहा हो। उन्होंने इस मंत्रणा बैठक में चुप रहकर यही संदेश दिया है कि जब तक आपको अपने समूह के अन्य लोगों की शक्ति और क्षमता का पता न चल जाय, तब तक चुप रहना ही उचित है।

हनुमानजी की बल-बुद्धि की परीक्षा

देवताओं ने पवनपुत्र हनुमानजी की विशेष बल बुद्धि को जानने के लिए सुरसा नामक सर्पों की माता को भेजा।

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा।।
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता।।
1/1,2।।

सुरसा ने हनुमान को खाने के लिए योजन भर (चार कोस) मुंह फैलाया। तब हनुमानजी ने अपने शरीर को उससे दूना बढ़ा लिया। उसने 16 योजन का मुख किया। तब हनुमानजी तुरंत ही 32 योजन के हो गए। जैसे-जैसे सुरसा मुख का विस्तार बढ़ाती थी, हनुमानजी उसका दूना रूप दिखलाते थे। उसने सौ योजन (चार सौ कोस का) मुख किया। तब हनुमानजी ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया और वे उसके मुख में घुसकर तुरंत फिर बाहर निकल आये और उसे सिर नवाकर विदा मांगने लगे। उसने कहा मैंने तुम्हारे बुद्धि-बल का भेद पा लिया, जिसके लिये देवताओं ने मुझे भेजा था।

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा।
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ।।
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।।
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा।।
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा।।
1/7-12।।

सुरसा ने कहा तुम बल बुद्धि के भंडार हो, तुम श्रीरामचंद्रजी का सब कार्य करोगे। यह आशीर्वाद देकर वह चली गयी, तब हनुमानजी हर्षित होकर चले।

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान।। 2।।

तात्कालिक निर्णय क्षमता-लंका के किले का सुरक्षा कवच भेदना

हनुमानजी ने पर्वत पर चढ़कर लंका देखी। किला बहुत ही बड़ा है, वह अत्यंत ऊँचा है, उसके चारों ओर समुद्र है। सोने के परकोटे (चहारदीवारी) का परम प्रकाश हो रहा है।

गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी।।
अति उतंग जलनिधि चहु पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा।।
2/10,11।।

नगर के बहुसंख्यक रखवालों को देखकर हनुमानजी ने

मच्छर के समान अत्यंत छोटा रूप धरा और रात के समय नगर में प्रवेश किया।

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार।।
3।।

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।
3/1।।

लंका द्वार पर लंकिनी नाम की एक राक्षसी थी, उसने हनुमानजी को पहचान लिया।

नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी।।
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा।।
3/2,3।।

हनुमानजी ने उसे घूंसा मारा, जिससे वह खून की उल्टी करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी और बोली कि ब्रह्माजी ने वर दिया था कि जब तू बंदर के मारने से व्याकुल हो जाए, तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान लेना।

मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी।।
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा।।
बिकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे।।
3/4,6,7।।

नीति निपुणता (रामकाज के लिए विभीषण की खोज)

तमाम बाधाओं को पार करके लंका में पहुँचकर हनुमानजी पूरे क्षेत्र का अवलोकन करते हैं। तुलसीदास ने लिखा है-

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा।।
4/5,8।।

ये दो चौपाइयाँ बताती हैं कि मंदिर में केवल संत-महात्मा ही नहीं, राक्षस भी रहते हैं। लंका के राक्षस मंदिर में थे और राम भक्त विभीषण 'भवन' में थे, जो अन्य मंदिरों से भिन्न था। हनुमानजी ने इस अलगाव को ध्यान में रखकर विभीषण से मित्रता की। विभीषण से मुलाकात के समय उन्होंने ब्राह्मण का रूप धारण कर लिया। इससे यह पता चलता है कि पूरी छानबीन के बाद भी दुश्मन के किसी भी प्रतिनिधि पर सीधे विश्वास नहीं करना चाहिए। उससे प्रत्यक्ष मुलाकात के पहले भी पूरी तरह सतर्क रहना चाहिए।

विभीषण के बारे में पूरी तरह संतुष्ट होने के बाद ही हनुमानजी ने अपना असली परिचय दिया और विभीषण को रावण से अलग करने में अहम भूमिका निभाई।

विभीषण ने माता के दर्शन की सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनायीं। तब हनुमानजी विदा लेकर चले। फिर वही पहले का मसक-सरीखा रूप धरकर वहाँ गए, जहाँ अशोक वाटिका में सीताजी रहती थीं।

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई।।
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ।।
7/5,6।।

हनुमानजी अशोक वाटिका पहुँचे, वहाँ पर उन्होंने सीताजी को बहुत ही दुखी पाया। तब उन्होंने सीताजी के सामने भगवान राम की अँगूठी डाल दी।

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ।।
12।।

हनुमानजी ने माता सीता को बताया कि वह श्रीरामचंद्रजी के दूत हैं और राक्षसों को मारकर आपको जल्द ही ले जाएँगे। सीताजी ने कहा हे-पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान (नन्हें-नन्हें) होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान योद्धा हैं। यह सुनकर हनुमानजी ने अत्यंत विशाल शरीर धारण किया, उसे देखकर सीताजी के मन में विश्वास हुआ। हनुमानजी ने फिर छोटा रूप धारण कर लिया।

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं।।
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना।।
मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा।।
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा।।
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ।।
15/5-9।।

सुंदरकांड में लंका नगरी की सुंदरता का भी काफी विस्तार से वर्णन किया गया है। इस वर्णन को तुलसीदास ने जिस तरह भाषाबद्ध किया है, वह भी अत्यंत सुंदर है। इतना आकर्षक कि सुनते ही किसी का ध्यान अपनी तरफ खींच ले और छोटे बच्चों

की भी जुबान पर आसानी से चढ़ जाये।

कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना।।
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै।।
2छं.।।

अशोक वाटिका में शौर्य-प्रदर्शन

हनुमानजी ने माता सीता से कहा, हे माता सुनो सुंदर फल वाले वृक्षों को देखकर मुझे बड़ी ही भूख लग आई है। माता सीता ने कहा, वन की रखवाली बड़े भारी योद्धा करते हैं। हनुमान ने कहा, मुझे उनका भय बिल्कुल नहीं है।

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा।
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी।।
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं।।
16/7-9।।

हनुमानजी ने बाग में घुसकर फल खाए और वृक्षों को तोड़ दिया। कुछ राक्षसों ने रावण को इसकी सूचना दी। रावण ने अपने पुत्र अक्षय कुमार सहित काफी राक्षसों को भेजा। लेकिन उन सब का हनुमानजी ने वध कर दिया।

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा।।
नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी।।
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।।
पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा।।
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा।।
17/1,3,4,7,8।।

तब रावण ने अपने पुत्र मेघनाद को भेजा। मेघनाद हनुमानजी को नागपाश से बांधकर ले आया।

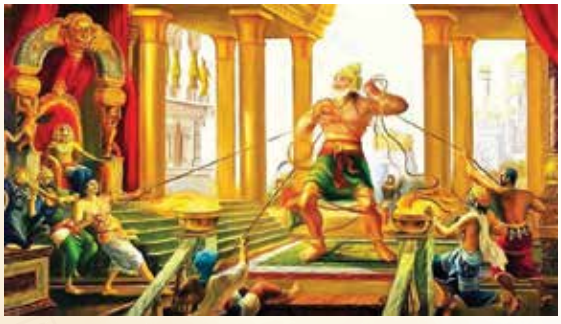

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा।।
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ।।
19/1,2।।

राजनय परिपक्वता (रावण से वार्तालाप)

बड़ी मेहनत के बाद मेघनाद हनुमानजी को पकड़कर रावण के सामने ले जाते हैं। उस समय रावण और हनुमान के बीच रोचक वार्तालाप समझने लायक है। रावण जब उनसे परिचय पूछता है-

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि कें बल घालेहि बन खीसा।।
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही।।
20/1,2।।

हे बानर बता तू कौन है और किसके बल पर तूने वन को नष्ट किया। क्या तूने मेरे बारे में नहीं सुना है, मूर्ख मैं देख रहा हूँ कि तू बिलकुल निडर है।

इस प्रश्न के उत्तर में हनुमानजी का जवाब मनन योग्य है।

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया।।
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली।।
20/4,9।।

हे रावण! सुन, जिनका बल पाकर माया संपूर्ण ब्रह्मांडों के समूहों की रचना करती है। जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशरा और बालि को मार डाला, जो सब के सब अतुलनीय बलवान थे।

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि।।
21।।

अर्थात्, हे रावण सुन! जिसके बल से ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं, जिनके बल से हजारों फन वाले शेषजी पर्वत और वन सहित समस्त ब्रह्मांड को सिर पर धारण करते हैं। जो देवताओं की रक्षा के लिये नाना प्रकार का शरीर धारण करते हैं और जो तुम्हारे जैसे मूर्खों को शिक्षा देने वाले हैं, जिन्होंने शिवजी के धनुष को तोड़कर राजाओं के समूह का गर्व चूर-चूर कर दिया, जिन्होंने खर, दूषण, त्रिसिरा और बाली जैसे अतुलनीय बलवानों को मार डाला, जिनके बल से तुमने समस्त चराचर जगत को जीत लिया और जिनकी पत्नी को चोरी से तुम हर लाये हो, मैं उन्हीं का दूत हूँ।

राम के दूत का यह परिचय वैश्विक कूटनीति, राजनय और सैन्य शिक्षा की दृष्टि से आज भी अत्यंत उपयोगी है। हनुमानजी ने अपना परिचय देते समय रावण के सामने अपना नाम एक बार भी नहीं बताया। उन्होंने श्रीराम का ऐसा परिचय दिया कि रावण भयभीत हो जाये, उनके बल और प्रताप का वर्णन किया, लेकिन एक बार भी नाम का उल्लेख नहीं किया। विचारणीय तथ्य यह है कि हनुमानजी ने जिस शिवजी के धनुष तोड़ने का उल्लेख किया है, उस सभा में रावण भी गया हुआ था। रावण को धनुष भंग की याद दिलाकर हनुमान ने रावण को उसके बल की

सीमा का स्मरण कराया और संकेत दिया कि उसने माता सीता का अपहरण करके अपनी मृत्यु को आमंत्रण दिया है। हनुमानजी को रावण ने सठ (मूर्ख) कहा तो जवाब में हनुमानजी भी लंका नरेश को उसका नाम न लेकर उसे भी सठ कहते हैं।

रावण हनुमानजी से कहता है-

की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही।।
मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा।।
20/2,3।।

अर्थात् क्या तूने कभी मेरा नाम और यश कानों से नहीं सुना? रे शठ मैं तुझे अत्यंत निःशंक देख रहा हूं। तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा? रे मूर्ख बता! क्या तुझे अपने प्राण जाने का भय नहीं है?

जवाब में हनुमानजी ने कहा-

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता।।
20/7।।

अर्थात् जो देवताओं की रक्षा के लिये नाना प्रकार की देह धारण करते हैं और जो तुम्हारे जैसे मूर्खों को शिक्षा देने वाले हैं। मैं उनका दूत हूँ।

हनुमानजी ने अपना परिचय अद्भुत तरीके से देकर रावण के मन में भय का प्रबल संचार करने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी। **रावण को हनुमानजी द्वारा दिया गया जवाब एक राजदूत की उत्कृष्ट वाक्पटुता और बुद्धिचातुर्य का सर्वोत्तम उदाहरण है।**

हनुमानजी ने रावण को समझाने के लिये वाणी का भी बहुत सुंदर उपयोग किया। उन्होंने रावण को उसके कुल-खानदान की याद दिलाकर समझाया कि माता सीता को राम के पास वापस लौटा दो और उनसे क्षमा मांग लो। वह क्षमा कर देंगे।

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई।।
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै।।
21/9,10।।

जो देवता, राक्षस और समस्त चराचर को खा जाता है, काल भी जिनके डर से अत्यंत डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहने से जानकीजी को दे दो।

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू।।
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका।।
22/1,2।।

दुश्मन के हर अत्याचार का जवाब दूत को ऐसा देना चाहिए कि उसके खेमे में भय का माहौल चरम पर पहुँच जाये। रावण के आतंक का जवाब हुनमानजी ने बतौर दूत जिस तरह से दिया, वह आज भी प्रासंगिक और युगों-युगों तक प्रासंगिक बना रहेगा।

लंका दहन-कूटनीतिक चाल

रावण ने हनुमान को मारना चाहा, लेकिन विभीषण की सलाह पर रावण ने हनुमानजी की पूँछ जलाने का आदेश दिया।

आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई।।
सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर।।
23/8,9।

हनुमानजी ने अपनी पूँछ को लंबा कर दिया।

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला।।
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी।।
24/5,6।।

पूँछ के लपेटने में इतना कपड़ा और घी-तेल लगा कि नगर में कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया। हनुमानजी ने ऐसा खेल किया कि पूंछ बढ़ गयी। नगरवासी लोग तमाशा देखने आये। वे हनुमानजी को पैर से ठोकर मारते हैं और उनकी बहुत हंसी करते हैं।

हनुमानजी ने पूरी लंका में आग लगा दी केवल विभीषण का घर नहीं जलाया।

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई।।
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला।।
साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा।।
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं।।
25/1,2,5,6।।

देह बड़ी विशाल, परंतु बहुत ही हलकी (फुर्तीली) है। वे दौड़कर एक महल से दूसरे महल पर चढ़ जाते हैं। नगर जल रहा है, लोग बेहाल हो गये हैं। आग की करोड़ों भयंकर लपटें झपट रही हैं। साधु के अपमान का यह फल है कि नगर अनाथ के नगरी की तरह जल रहा है। हनुमानजी ने एक ही क्षण में सारा नगर जला डाला। एक विभीषण का घर नहीं जलाया।

रावण के कहने पर हनुमानजी की पूँछ में राक्षसों ने आग लगा दी, तो उन्होंने लंका में ही आग लगाकर राक्षस सेना और पूरे समाज में ही भय पैदा कर दिया। जलाया भी तो कैसे-

उलटि पलटि लंका सब जारी।
25/8।।

माँ सीता का प्रोत्साहन (कुशल मनोवैज्ञानिक संवाद)

लंका जलाने के बाद हनुमानजी समुद्र में कूद पड़े और फिर छोटा सा रूप धारण कर श्रीजानकीजी के सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए।

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि।।
26।।

हनुमानजी ने कहा-हे माता! मुझे कोई चिन्ह दीजिए जैसे श्रीरघुनाथजी ने मुझे दिया था।

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा।।
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ।।
26/1,2।।

हनुमानजी ने जानकीजी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया और उनके चरणकमलों में सिर नवाकर श्रीरामजी के पास गमन किया।

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह।।
27।।

प्रभु श्रीराम से वार्तालाप (सहज-विवेकपूर्ण कुशल संवाद)

हनुमानजी ने प्रभु श्रीराम को पूरा वृतांत विस्तृत रूप से सुनाया, तब प्रभु ने कहा-

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
31/5,6।।

हे हनुमान! सुन, तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता।

हनुमानजी ने कहा-

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी।।
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी।।
33/1,2।।

हे नाथ! मुझे अत्यंत सुख देने वाली अपनी निश्चल भक्ति कृपा करके दीजिये। हनुमानजी की अत्यंत सरल वाणी सुनकर, प्रभु श्रीरामचंद्रजी ने 'एवमस्तु' कहा।

सुंदरकांड में विनय को क्रोध से पहले जगह दी गयी है। युद्ध को टालने के लिये समझाने-बुझाने के अनेक प्रयास किये गये। लेकिन जब सारे प्रयास विफल हो गये तब समुद्र पर सेतु बनाकर लंका चढ़ाई की योजना बनी। जड़ और चेतन के प्रति यह रामसेना की समदृष्टि का ही प्रभाव था कि प्रभु श्रीराम समुद्र से तीन दिन तक रास्ता देने के लिये प्रार्थना करते हैं। जब प्रार्थना से काम नहीं बना तब उन्होंने क्रोध और धमकी का इस्तेमाल किया।

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।
57।।

श्रीरामचरितमानस में सुंदरकांड अपनी पूर्ण सुंदरता के साथ प्रकट हुआ है। इस कांड का नियमित अध्ययन व्यक्ति, परिवार, समाज और वातावरण पर अपना जो प्रभाव छोड़ता है, वह अतीव सुंदर होता है। इस संसार सागर को आसानी से पार करना है तो हम सबको सुंदरकांड का पाठ अवश्य करना चाहिए। इसकी हर चौपाई से हम कुछ न कुछ अच्छा सीख सकते हैं। इसीलिए तुलसीदास ने सुंदरकांड का समापन करते हुए आखिरी दोहे में लिख दिया है-

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान।।
60।।

श्रीरघुनाथजी का गुणगान संपूर्ण सुंदर मंगलों का देने वाला है। जो इसे आदर सहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज के ही भवसागर को तर जायेंगे।

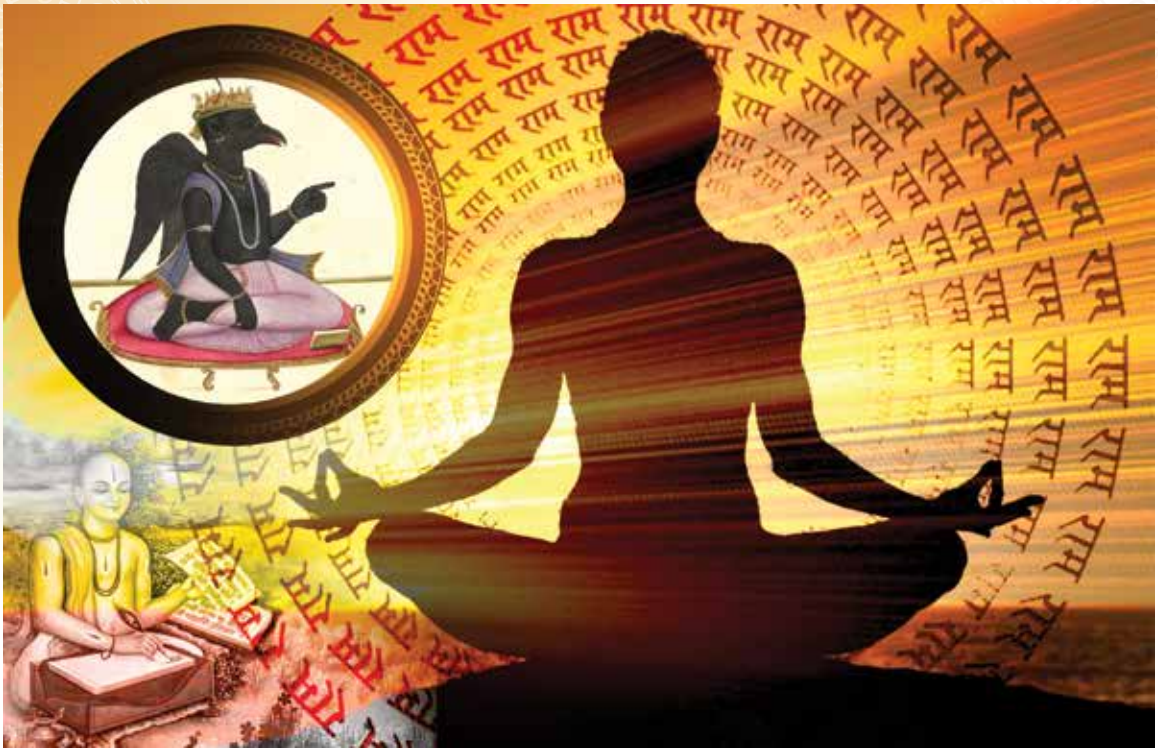

मानसिक रोगों का राम-रसायन

मानस के दोहों से मानसिक समस्याओं का निदान

संजय राय
ब्यूरो चीफ दैनिक 'आज'

'अक्षर' का अर्थ है जो कभी नष्ट न हो। अक्षर को हमारे मनीषियों ने ब्रह्म कहा है। जिसका क्षरण न हो वह ब्रह्म है। अक्षर ध्वनि के माध्यम से प्रकट होते हैं। ये ध्वनियाँ पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल और वायु से उत्पन हुई हैं। हमारा शरीर इन्हीं पंच महाभूतों से बना है। इसलिये हम सब भाषा और बोली के माध्यम से ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इसके अलावा बिना बोले भी शरीर से ध्वनि उत्पन्न होती है। सरल शब्दों में कहें तो ये ध्वनियाँ हमारे शरीर पर प्रभाव डालकर रसायन उत्पन्न करती हैं।

हिंदी साहित्य के आकाश में चंद्रमा की तरह प्रतिष्ठित भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने इस तथ्य का वर्णन श्रीरामचरितमानस और हनुमान चालीसा में विशुद्ध वैज्ञानिक तरीके से किया है। **इस लेख में हम मानव मस्तिष्क में पैदा होने वाले रोगों के मूल कारणों और उन रोगों के समूल नाश के लिये उपयोग में आने वाली औषधि के बारे में गोस्वामीजी की वैज्ञानिक और विशेष रूप से मनौवज्ञानिक दृष्टि को समझने का प्रयास करेंगे। इसमें हम मानसिक रोगों के कारण और उसके निवारण की चर्चा विस्तार से करेंगे।**

ध्वनि उत्पन्न करने में विचार हमारा प्रेरक बनता है। विचार की उत्पत्ति हमारे 'मानस' अर्थात् मस्तिष्क से होती है। हमारे मनीषियों ने हजारों साल पहले गहन चिंतन, अन्वेषण और वैज्ञानिक शोध से इन ध्वनियों के स्रोत और प्रभाव का अध्ययन किया और उन्हें अक्षर नाम दिया। अक्षर में स्वर और व्यंजन का समावेश होता है। हमारे मनीषियों ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि प्रत्येक

ध्वनि एक मंत्र होता है। निरंतर अभ्यास से शरीर पर इसके प्रभाव को साक्षात् देखा और अनुभव किया जा सकता है।

जब हम बोलते हैं तो अलग-अलग अक्षरों के लिये जीभ, दांत, नाक, मुँह, गला आदि की सहायता ली जाती है। इसके अलावा हमारे शरीर के कई अंग भी इसमें सहायता प्रदान करते हैं, जिसका अनुभव सूक्ष्म अवलोकन से सम्भव है। संस्कृत में एक श्लोक है-

अमंत्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्। अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः। इसका अर्थ है, 'इस जगत में सभी अक्षर मंत्र हैं। सभी वृक्षों की जड़ी औषधि है। सभी मनुष्य उपयोगी हैं। इन सभी चीजों को जोड़ने वाला दुर्लभ है'।

श्रीरामचरितमानस के उत्तर कांड में कागभुसुंडि और गरुण संवाद है। इस संवाद में गरुण ने कागभुसुंडि से सात प्रश्न किये, जिसमें से एक प्रश्न मानस रोग के बारे में है।

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई।।
उ.कां./120ख/7।।

इस प्रश्न के उत्तर में कागभुसुंडि जी कहते हैं कि-

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।।
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई।।
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।।
ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई।।
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।।
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी।।
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।।
उ.कां./120ख/29-37।।

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हि संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।।
उ.कां./121क।।

कागभुसंडि के अनुसार, मोह (अज्ञान) सभी प्रकार के व्याधियों की जड़ है। व्याधि का अर्थ है मानसिक और शारीरिक बीमारियाँ। इन व्याधियों से कई प्रकार के शूल अर्थात् कष्ट उत्पन्न होते हैं। काम, लोभ और क्रोध क्रमशः वात, कफ और पित्त हैं, जो छाती को जला देते हैं। अगर ये तीनों एक साथ मिल जायें तो दुखदायक सन्निपात रोग उत्पन्न करते हैं।

कागभुसुंडि आगे विषयों के मनोरथ के बारे में बताते हैं। मनोरथ शब्द मन और रथ से बना है। मन का रथ हमारी दस इंद्रियाँ हैं। इंद्रियों से हमें संसार के सुख-दुख की अनुभूति होती है। इंद्रियों से ही कामना उत्पन्न होती है। बड़ी कठिनाई से पूर्ण होने वाले हमारे जो मनोरथ हैं, वास्तव में वे ही सब प्रकार के शूल अर्थात् कष्टदायक रोग हैं। मनोरथ के बारे में कागभुसुंडि का कहना है कि इनकी संख्या कितनी है, कोई बता ही नहीं सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इनकी संख्या अनगिनत है और अपार है।

आगे कागभुशुंडि ने ममता की तुलना दाद, ईर्ष्या की खुजली, हर्ष और विषाद की गलगंड, कंठमाला और घेंघा आदि गले के रोगों से की है। वह कहते हैं कि दूसरों के सुख को देखकर जो जलन उत्पन्न होती है, वह क्षय रोग अर्थात् ट्यूबरक्युलोसिस है। दुष्टता और मन की कुटिलता कोढ़ अर्थात लेप्रसी है। अहंकार गाँठ का रोग अर्थात् ट्यूमर है। दंभ, कपट, मद और मान नसों का रोग 'नहरुआ' है। तृष्णा बड़ा भारी जलोदर रोग है। पुत्र, धन और मान ये तीन प्रकार की इच्छाएँ तिजरा (एक प्रकार का ज्वर, जिसमें शरीर का तापमान बढ़ जाता है और हर तीसरे दिन शरीर में कंपकंपी के साथ बड़ी ठंड लगती है) हैं।

कागभुशुंडि आगे कहते हैं कि मत्सर (द्वेष, ईर्ष्या, जलन और कुढ़न) और अविवेक अर्थात् सही और गलत की अज्ञानता ये दो प्रकार के ज्वर हैं। फिर वह बताते हैं कि इस प्रकार के अनेक बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ। एक ही बीमारी से मनुष्य मर जाता है, फिर तो ये बहुत सारे असाध्य रोग हैं। ये जीव को निरंतर कष्ट देते रहते हैं।

फिर कागभुसुंडि स्वयं प्रश्न करते हैं कि ऐसी अवस्था में मनुष्य को शांति कैसे मिले? वह कहते हैं कि नियम, धर्म, उत्तम आचरण, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान जैसी करोड़ों औषधियाँ हैं, लेकिन हे गरुड़ जी! उनसे ये रोग नहीं जाते हैं। वह आगे कहते हैं-

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी।
मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए।।
जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी।।
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे।।
उ.कां./121ख/1-4।।

इस प्रकार संसार में सभी जीव रोगी हैं। ये शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग के दुःख से और भी दुखी हो जाते हैं। ये हैं तो सबको, लेकिन इनके बारे में जानने वाले बहुत कम लोग हैं। जिन्हें

इनका पता चल जाता है, उनके ये रोग कुछ कमजोर तो हो जाते हैं, लेकिन पूरी तरह नष्ट नहीं होते हैं। यहाँ तक कि विषय रूपी कुपथ्य पाकर ये रोग मुनियों के भी हृदय में अंकुरित हो जाते हैं, ऐसे में साधारण मनुष्य क्या चीज हैं।

स्वाभाविक रूप से इन 'मानस' रोगों की बात सुनकर गरुण के मन में यह प्रश्न उठा कि आखिर इनसे पूरी तरह मुक्ति कैसे मिल सकती है?

कागभुसुंडिजी आगे इसका उपाय बताते हैं-

सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा।।
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।।
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं।।
उ.कां./121ख/6-8।।

इसका इलाज करने वाला एक वैद्य है। वह है सद्गुरु। यदि श्रीरामजी की कृपा से ऐसा संयोग बन जाये कि कोई सद्गुरु रूपी वैद्य मिल जाये और उसकी बातों पर आपका विश्वास बैठ जाये। साथ ही आप विषयों की आशा न करें, यही परहेज है। प्रभु 'श्रीराम' की भक्ति ही इन रोगों के समूल नाश की संजीवनी जड़ी है। श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवा के साथ लिये जाने अन्य पदार्थ जैसे दूध, शहद आदि) है। इस प्रकार का संयोग हो तो उक्त सभी रोग भले ही नष्ट हो जायें, अन्यथा करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते।

अब गरुड़ के मन में स्वाभाविक सवाल यह उठा कि आखिर 'मन' को निरोग कब माना जाये? इसका जवाब देते हुए कागभुसुंडिजी कहते हैं-

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई।।
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई।।
बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई।।
सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद।।
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा।।
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।।
उ.कां./121ख/9-14।।

जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाये, उत्तम बुद्धि रूपी भूख हर दिन लगातार बढ़ती रहे और विषयों की आशा रूपी कमजोरी मिट जाये, तब समझिये कि मन निरोगी हो गया है और मानस रोगों से मुक्ति मिल गयी। सब रोगों से मुक्ति मिलने के बाद मनुष्य को 'निर्मल ज्ञान' रूपी 'जल' में स्नान करना चाहिये। इस स्नान के बाद उसके हृदय में 'राम भक्ति' छा जाती है। वह कहते हैं कि शिवजी, ब्रह्माजी, शुकदेवजी, सनकादि ऋषियों, नारद की तरह ब्रह्म विचार में परम निपुण मुनि, इन सभी का यही मत है कि श्रीरामजी के चरण-कमलों से प्रेम करना चाहिए। वेद, पुराण और सभी ग्रंथ भी यही कहते हैं कि श्रीरामजी की भक्ति के बिना सुख नहीं है।

उत्तर कांड में ही गरुड़-कागभुसुंडि संवाद के एक प्रसंग में तुलसीदास ने लिखा है-

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा।।
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।।
यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा।।
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं।।
उ.कां/70ख/5-8।।

मनोरथ कीड़ा है। शरीर लकड़ी है। ऐसा कोई धैर्यवान नहीं है, जिसके शरीर में यह कीड़ा न लगा हो? पुत्र, धन और लोक-प्रतिष्ठा की-इन तीन प्रबल इच्छाओं ने किसकी बुद्धि को मलिन नहीं कर दिया है अर्थात् इनके प्रभाव से कोई भी नहीं बच पाया है। यह सब माया का बड़ा शक्तिशाली परिवार है। इनकी संख्या गिनी नहीं जा सकती। शिवजी और ब्रह्माजी भी इससे डरते हैं, तो साधारण जीव की बात ही क्या कहनी।

गोस्वामी तुलसीदास ने समस्त सृष्टि को सीता-राममय स्वीकार करते हुए कहा है-

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।
बा.कां./7घ/2।।

मैं समस्त चर-अचर अर्थात जड़-चेतन को सीता-राम से युक्त मानकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। तुलसी की यह विलक्षण दृष्टि मानव को स्व से बाहर निकालकर समष्टि से जोड़ती है। उनके राम 'दशरथ-पुत्र' ही नहीं बल्कि 'अनंत' हैं। इसीलिए वह डंके की चोट पर घोषणा करते हैं-

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार।।
बा.कां./33।।
हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता।।
बा.कां./139/5।।
राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी।।
उ.कां./51/3।।

श्रीरामचंद्रजी अनंत हैं। उनके गुण भी अनंत हैं। उनकी

कथाओं का विस्तार भी असीम है। इसे समझने के लिए विचार को निर्मल करने की जरूरत है। जिनके विचार निर्मल हैं, वे इस कथा को सुनकर आश्चर्य नहीं करेंगे। ईश्वर अनंत है, उसकी कथा अनंत है। संत प्रवृत्ति के मनुष्य इसे कई प्रकार से कहते-सुनते हैं। राम अनंत हैं, उनके गुण अनंत हैं। उनके जन्म, कर्म और नाम भी अनंत हैं।

इस संसार में मनुष्य का जन्म बड़े भाग्य से मिलता है। सभी जीव अनंत की संतान है। लेकिन मनुष्य उस अनंत को सबसे प्रिय है और वह अनंत भी प्रेम से ही मिलता है।

रामहि केवल प्रेमु पियारा। जानि लेउ सो जाननिहारा।।
अयो.कां./136/1।।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना।।
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।।
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।
बा.का./184/5-7।।

राम को केवल प्रेम प्रिय है। जो जानना चाहता है, वह इसे जान ले। ईश्वर सर्वव्यापी है और वह प्रेम से ही प्रकट होता है। देश, काल, दिशा और विदिशा में बताओ, ऐसी कौन सी जगह है, जहाँ वह नहीं है। वह चर-अचर यानी जड़-चेतन सबमें व्याप्त होते हुए भी सबसे रहित और विरक्त है। वह प्रेम से उसी तरह प्रकट होते हैं जैसे अव्यक्त रूप से हर जगह उपस्थित रहने वाली आग अरणिमंथन और घर्षण आदि साधनों से प्रकट की जाती है।

स्पष्ट है तुलसी के राम प्रेम से प्रकट होते हैं। राम को देखना है तो समस्त सृष्टि को प्रेम की दृष्टि से देखना पड़ेगा। आपको समझना होगा कि राम आपके अंदर और बाहर सब जगह हैं। इसीलिए तुलसी ने राम के बारे में कहा है-

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
सुं.कां./श्लोक 2।।

हे रघुनाथजी! मैं सत्य कहता हूँ और फिर आप सबके 'अंतरात्मा' ही हैं।

यह समझने वाली बात है। तुलसी कहते हैं, 'राम' सबके अंतरात्मा हैं। आप दुनिया से झूठ बोलकर बच सकते हो, लेकिन अपनी अंतरात्मा अर्थात् 'अनंत' अर्थात् 'राम' से कैसे झूठ बोलकर बचोगे। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि 'राम' ही सत्य हैं और 'सत्य' ही 'राम' हैं। लेकिन 'राम नाम सत्य है' की याद हमें तब आती है, जब किसी का अंतिम संस्कार करना होता है। यदि हम तुलसी के राम-रसायन को अपने हृदय में उपस्थित जानकर जीवन जीने का प्रयास करें तो हम अपने धर्म का पालन कर सकते हैं। इसी से हमारा कल्याण संभव है। तुलसीदास की इस वाणी को याद रखिये-

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।।
अयो.कां./94/5।।

वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म ही नहीं है।

तुलसीदासजी ने मनोविज्ञान की कसौटी पर रखकर श्रीरामचरितमानस की 'रामकथा' जैसे महाकाव्य को घर-घर में पूजनीय धर्मग्रंथ बना दिया है। उन्होंने इस कथा के माध्यम से 'राम' को समस्त मानसिक विकारों को जड़ से नष्ट करने वाला 'रसायन' बताया है। वह कहते हैं नाम से ही किसी वस्तु की पहचान संभव है। जैसे किसी वस्तु के नाम से हमें उसके रूप और गुणधर्म का पता चल जाता है, ठीक उसी प्रकार किसी व्यक्ति के नाम से उसके समस्त व्यक्तित्व और कृतित्व का पता चलता है। महान आत्माओं के नाम से हमें प्रेरणा मिलती है। यदि नाम का ज्ञान नहीं है तो समस्त ब्रह्माण्ड भी आपकी हथेली पर रख दिया जाये तो आप उसे पहचान नहीं सकते। स्वाभाविक रूप से दशरथ-पुत्र राम की समस्त शक्ति उनके नाम में समाहित है। इसीलिये तुलसीदास कहते हैं-

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।
बा.कां./25/8।।

तुलसीदास को अपने समाज को देख-समझकर अनुभव से यह पता था कि कलियुग में लोग सांसारिक प्रपंच में इतने अधिक डूबे रहेंगे कि योग, यज्ञ, जप, तप, पूजा और और पाठ उनके वश की बात नहीं होगी। **इसीलिए उन्होंने सबसे सुगम और पूर्ण वैज्ञानिक तरीके से बता दिया कि केवल 'राम' का नाम जपो। नाम जपने से राम के गुणों की याद स्वाभाविक रूप से आयेगी और उनके नाम के जप के बल पर इस प्रपंच से मुक्त होकर मनुष्य उस अनंत का साक्षात्कार करके अपने जीवन को सार्थक बना सकता है।** समाज में स्वयं को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करके मनुष्य अन्य लोगों को जीवन जीने की कला बता सकता है। इस प्रकार यदि पूरा समाज 'राम' नाम से ऊर्जा ग्रहण करेगा तो समस्त सृष्टि 'राम-मय' रहेगी और धरती पर आदर्श रामराज उतरेगा।

दीनता-दरिद्रता से उबरने का मार्ग है मानस

अस मानस मानस चख चाही

योगक्षेम की चक्की में पड़े लोक को उबारते गोस्वामी तुलसीदास इसी लोक में मानव जाति को कुण्ठाओं से मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं, ब्रह्मविद्या होते हुए भी अपनी संरचना में लोकविद्या है तुलसी की भक्ति

आचार्य मिथिलेशनन्दिनीशरण
सिद्धपीठ श्री हनुमन्निवास पीठाधीश्वर, श्री अयोध्याजी

मानव-जीवन प्रायः अपने ही रचे हुए प्रमेयों से ग्रस्त, उनसे उबरने के संघर्षों की गाथा है। इन संघर्षों को पीढ़ियों में जीते हुए मनुष्य ने इन्हें योगक्षेम के सैद्धान्तिक ढाँचे में मढ़ लिया है। अप्राप्त को प्राप्त करने और प्राप्त को चिरकाल-पर्यन्त संरक्षित रखने की स्पृहा ने उसे अनवरत व्यस्त कर रखा है। यह व्यस्तता इतनी रूढ़ और सघन है कि कभी ठहरकर इसकी सार्थकता पर विचार करने अथवा इसे उपरत होने की चिन्ता नहीं जगती है। राजा परीक्षित ने इस चिन्ता का सामना किया है, श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रारम्भ में उनकी इस चिन्ता पर अपनी टिप्पणी देते हुए परमहंस शुकदेव जी ने कहा है-

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुंबभरणेन वा।।
3।।
देहापत्यकलत्रादिषु आत्मसैन्येष्वसत्स्वपि।
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति।।
4।।
भा.महा.स्क.1 अ.1।।

अर्थात् नींद के द्वारा रातों का, घर-परिवार का पोषण करने हेतु

धन की कामना से दिवसों का और इसी प्रकार ऐन्द्रिक सुखों के भोग में सम्पूर्ण आयु का हरण होता जाता है। शरीर सम्बन्धी आदि अपनेपन का भ्रम उत्पन्न करने वाले नश्वर विषयों की आसक्ति में प्रमत्त हुआ मनुष्य अपना नाश देखते हुए भी नहीं देखता, जगता नहीं। 'देखते हुए न देखना' एक महत्त्वपूर्ण युक्ति है। **'पश्यन्नपि न पश्यति'** अर्थात् अपने स्वरूप को, उसके कल्याण को यथार्थतः न पहचानने के कारण मनुष्य प्रायः उन चिन्ताओं पर अपना जीवन खर्च करता है, जो उसकी चिन्तायें हैं ही नहीं। ये वह विडम्बना है, जिसको प्रत्येक काल में मानव-कल्याण का कार्य करने वाले मनीषियों ने पहचाना है।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज मध्यकालीन भारत के वे प्रतिनिधि महापुरुष हैं, जिन्होंने तत्कालीन समाज की सभी चिन्ताओं को न केवल पहचाना है बल्कि उनको स्पष्टतया निरूपित करते हुए समाधान की दिशा भी दिखायी है।

व्यक्ति, परिवार और समाज की इकाइयों के अन्तर-सम्बन्धों को, उनकी पारस्परिकता को सामंजस्यपूर्ण बनाने, उनके माध्यम से लौकिक जीवन का निर्वाह करते हुए पारलौकिक लक्ष्य तक पहुँचने की स्वस्थ दृष्टि गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज के यहाँ स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

बल, बुद्धि एवं विद्या-विरहित समाज के दैन्य-दुःख, अपनी सहज आकांक्षाओं में दिनानुदिन असहज होते जाते जीवन की हीनताओं तथा विपन्नता के अनेक स्तरों को गोस्वामीजी ने डूबकर जिया है, उसकी पीड़ा को स्वर दिया है और उससे बाहर निकलने का मार्ग प्रतिपादित किया है। उनके द्वारा निरूपित किये गये चरित्र अपनी लौकिकता के दबावों के बीच लोकोत्तर आचरण करते हैं।

कदाचित् यही कारण है कि सन्त-विरक्त होते हुए भी गोस्वामी तुलसीदासजी उन प्रसंगों मे सर्वाधिक रमे हुए प्रतीत होते हैं, जो सहज मानवीय परिस्थितियों के प्रसंग हैं। केवट का उदाहरण द्रष्टव्य है। दारिद्र्य की असह्य अवस्थाओं में भी मूल्यबोध को जीने की सुन्दर बानगी है श्रीराम का गंगा पार करना। वनगमन करते श्रीराम-जानकी एवं लक्ष्मण को गंगा-पार कराता केवट उनसे अपना पारिश्रमिक नहीं लेता। वह निर्धन है, खाने-पहनने के साधनों का भी अभाव है। उसने स्वयं अनेक प्रकार से अपनी दशा का संकेत भी श्रीराम को किया है-

पात भरी सहरी सकल सुत बारे-बारे केवट की जाति कछु बेद न पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो एही लागि राजा जू हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।।
कवितावली।।

इतना ही नहीं, वह यहाँ तक कह देता है कि -

तुलसी अवलंब न और कछू लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिअ मोहिं बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू।।
कवितावली।।

परन्तु यही विपन्न केवट अपना पारिश्रमिक छोड़ते हुए किंचित् मात्र भी दीन नहीं है। उसकी आत्मवत्ता, उसका कर्तव्यबोध जरा भी विचलित नहीं। यही भक्ति का वह महत्तर अवदान है, जो मनुष्य को उदात्त बनाता है। देश और काल के प्रभाव में अपने नाम और रूप की सीमाओं को जीता हुआ व्यक्ति, भक्ति सूत्र के माध्यम से भगवत्ता के साथ जुड़ जाता है। भगवान्, **जो अखिलहेयप्रत्यनीक और अनन्तकल्याणगुणगणनिलय हैं।** मानसकार कहते हैं -

ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर।।
जौं सब कें रह ग्यान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस।।
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी।।
परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता।।
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।।
उ.का./77ख/4-8।।

माया के बल से जिसका ज्ञान तिरोहित हो गया है, जो दीन-हीन और पामर हो चला है, वही जीव भक्ति का आश्रय लेकर भगवान् से सहज सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। वनमार्ग में श्रीराम, लक्ष्मण एवं जानकीजी को देखकर उत्कण्ठा से भरी वनवासिनी स्त्रियाँ

श्रीजानकीजी से संवाद करती हैं। **सर्वलक्षणसम्पन्ना, नारीणामुत्तमा, विदेहवंशवैजयन्ती वैदेही** से कोल-भील नारियाँ सहज अपनत्व जोड़ लेती हैं। वे बड़ी विनम्रता से कहती हैं कि देवि! अविनय क्षमा हो, हम गँवार हैं परन्तु आपसे पराई नहीं हैं। स्त्री होने के कारण हम आपको समझ सकती हैं। श्रीजानकी उनकी विदग्धता पर मुस्कुराती हैं, उनकी जिज्ञासा का समाधान करती हैं। वे वनवासिनी स्त्रियाँ श्रीराम-जानकी का परस्पर संवाद सुनने हेतु लोक-लाज त्यागकर उनका अनुगमन करना चाहती हैं। पेट की ज्वाला में जलते वनवासी, जो स्वभावतः अपराध-निरत हैं, वे श्रीराम के लिये अपनी अपराधवृत्ति का दमन करते हैं। वे स्वीकारते हैं कि हम दिन-रात पाप करते जाते हैं, यद्यपि उससे भी हमारा यथायोग्य पोषण नहीं हो पाता तथापि हमारी यही प्रवृत्ति बन गयी है। परन्तु, आपको पाकर हमारा स्वभाव बदल रहा है। आपका अप्रिय करने की हमारी वृत्ति शिथिल हो गयी है-

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं।।
सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ।।
अयो.का./250/5,6।।

भक्ति के अनेक आयाम हैं, उनके अपने शास्त्रीय प्रतिपादन हैं-फलश्रुतियाँ हैं। गोस्वामीजी महाराज भक्ति की उस पद्धति का असाधारण उपयोग करते हैं। वे मनुष्य को उसकी क्षुद्रताओं के पार ले जाने का अनुष्ठान करते हैं। श्रीरामचरितमानस में, विनय पत्रिका में और सबसे बढ़कर कवितावली में लोक के उत्थान का प्रयोग चलता है। भक्ति से प्राप्त होने वाला जो कोई वैकुण्ठ लोक हो तो वह मिले, किन्तु गोस्वामीजी इस लोक में ही मानव जाति को उसकी कुण्ठाओं से मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। वे एक अमोघ उपाय देते हैं -

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।
बा.का./7घ/2।।

सब भगवान् से प्रकट हैं और उन्हीं का स्वरूप हैं। अतः किसी से वैमनस्य का कोई औचित्य ही नहीं। श्रीहनुमानजी को अपने अनन्य भक्त के लक्षण बताते हुए भगवान् श्रीराम कहते हैं कि हनुमान्! मेरा सर्वाधिक प्रिय भक्त वह है, जो अपने को सेवक मानता हुआ इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को मेरा ही स्वरूप मानता है और इसकी सेवा के लिये तत्पर रहता है-

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।
कि.का./3।।

हिन्दी आलोचना में गोस्वामीजी को 'कृषक-जीवन का कवि' कहा गया है। यह साहित्यिक आलोचना-दृष्टि की अपनी सीमा भी हो सकती है। तथापि इसमें एक संकेत तो निहित है। अपना सर्वस्व खपाते जाना और बदले में केवल पेट की आग बुझाने से अधिक कुछ न पाना एक ऐसी दारुण परिस्थिति है, जिसमें भक्ति-ज्ञान के सूत्र बेमानी हो जाते हैं। बारम्बार इनसे सम्बद्ध दृश्य तुलसी-साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसी कराल विपन्नता, जिसमें सोने का पहाड़ भी मिल जाये तो मन की दरिद्रता जाने वाली नहीं। उस अवस्था में गोस्वामीजी ने भक्ति को सम्बल बनाया है। श्रीराम का अनुग्रह हो, उनमें मन लगे तो यह दरिद्रता मिट जाती है। वे समस्त लोक में इस आश्वासन का डंका बजाते फिरते हैं कि श्रीराम की कृपा से सबका दुःख-द्वन्द्व मिट जायेगा।

ऐसे लोक में गोस्वामीजी के द्वारा प्रतिपादित भक्ति, व्यक्ति जीवन के दुखों का तत्क्षण समाधान है। यह मनोवैज्ञानिक है, आध्यात्मिक

है और परम व्यावहारिक भौतिक भी। श्रीराम की भक्ति, उनकी अनन्यता सम्पूर्ण जगत् को आराध्य मानने-उसकी सेवा करने में निहित है। इस विचार के साथ, जो कुछ प्राप्त है, उसे सबके हित में समर्पित करने की प्रवृत्ति विकसित होती है और तब दुःख का भारीपन घट जाता है, वह सहनीय हो जाता है। अकेले-अकेले जो पीड़ा व्यक्ति को कुण्ठित कर देती है-तोड़ देती है, वही साझे में सरल हो जाती है। यह साझेदारी श्रीराम के स्मरण से आती है, उनके सम्बन्ध से आती है। श्रीराम का स्मरण व्यक्ति को उदात्त बनाता है, सौमनस्यपूर्ण बनाता है। जो भी श्रीराम की भक्ति-प्रीति का आकांक्षी बनता है, वह किसी का भी अप्रिय नहीं कर सकता। वह ऐसा चाहता ही नहीं-

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।।
उ.का./112ख।।

यह परस्पर अविरोध लौकिक दुःख को निर्मूल करने की औषधि है। परस्पर विरोध कलियुग का स्वभाव है।

कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा।।
उ.का./103ख/5।।

इस कलिमल का मंथन हो जाय, यही तो श्रीराम भक्ति का परम फल है।

श्रीराम नाम के बल से पत्थर भी तिर गये हैं, मनुष्य डूबने से क्यों न बचेगा। श्रीराम का सतत स्मरण उसे उसकी जड़ता से उबार लेगा। मन्थरा को दण्डित करने को उद्यत शत्रुघ्न को श्रीराम का स्मरण ऐसा करने से रोकता है। भरत से असहमत होते लक्ष्मण को श्रीराम का उपदेश शान्त करता है। रावण की अन्त्येष्टि करने में संकुचित विभीषण को श्रीराम प्रेरित करते हैं।

वन से लौटे हुए श्रीराम पहले माता कैकेयी से मिलने जाते हैं-

प्रभु जानी कैकेयी लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी।
उ.का./9ख/1।।

इतना ही नहीं वे अयोध्यावासियों से भी पहले-पीछे करके नहीं मिलते, बल्कि सबसे एक साथ मिलते हैं-

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला।।
उ.का./5/5।।

कोई वंचित नहीं, कोई हेय नहीं। सभी स्नेहास्पद हैं, सभी आदरास्पद हैं, सबका सम्मान-सबका स्वागत इस भक्ति का चरित्र है। यहाँ वैमनस्य-विरोध नहीं है, यहाँ सद्भाव है, सहकार है, सत्कार है। गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति ब्रह्मविद्या होते हुए भी अपनी लोकविद्या है। लोक को स्वीकार करती हुई, उसका संस्कार करते हुए, उसको समुन्नत बनाते हुए। भक्ति की यही लोकोन्मुखी विधा भगवान् शिव के मानस में सुरक्षित श्रीरामचरित को लोक मानस में प्रतिष्ठित करने का अनुष्ठान करती है।

शिवत्व की आकांक्षा करने वाले लोक को शिव-संकल्प से समृद्ध करती है। शिव-संकल्प है श्रीराम का ध्यान, श्रीराम का गान और श्रीराम की प्रसन्नता के लिये लोक के हिस्से का विषपान। अपना हित, अपनी प्राप्तियाँ, अपने-अपने की व्याकुलता से बाहर निकलकर विशाल अन्तःकरण से सबके हित, सबकी प्राप्तियों का चिन्तन। यही तो श्रीराम का सन्देश है।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज भारतवर्ष के वह अद्वितीय आचार्य पथप्रदर्शक हैं, जो किसी का खण्डन नहीं करते। वे सबके मत में अपने कल्याण के तत्त्व पा लेते हैं और सबका अनुमोदन करते हैं। इसीलिये उन्हें समन्वय का पुरोधा माना गया। उनकी भक्ति-पद्धति उनके श्रीरामचरितमानस में उद्घोषित है-

सुरसरि सम सब कहँ हित होई।
बा.का./13/9।।

परन्तु ऐसा होगा तभी, जब बुद्धि निर्मल हो जाय और वह निर्मलता आयेगी श्रीसीताराम के विमल जल से भरे हुए मानस सरोवर में अवगाहन करने से। नेत्र भर इस सरोवर की सुन्दरता का निरीक्षण करके, इसकी दिव्यता को चित्त में धारण कर इसमें डुबकी लगाने से बुद्धि निर्मल हो जायेगी। हृदय आनन्द और उत्साह से भर जायेगा और सर्वत्र श्रीराम की कृपा का साम्राज्य दिखाई देने लगेगा।

राजनीति बिनु धन, बिनु धरमा

रामराज्य में 'नीति' और 'अर्थ' का महत्व
लोकप्रशासन की चरम अवस्था है रामराज्य
छल-प्रपंच और पाप बुद्धि का पर्याय बन गयी है दुनिया की राजनीति

प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

भारतीय संस्कृति में राजनय व्यवस्था को बहुत महत्व दिया गया है। यहाँ ऐसी मान्यता रही है कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है। वह प्रजा की रक्षा करता है, सबके साथ न्याय करता है, दण्ड विधान का सम्यक् परिपालन करता है और सबका कल्याण सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी निभाता है। इसके बावजूद राजा एकाधिकारी यानी तानाशाह नहीं होता है। इसीलिए, भारतीय समाज में राजतंत्र के ऊपर धर्मतंत्र को, अर्थात् राजा के ऊपर पुरोहित को प्रतिष्ठित किया गया।

राज्याधिकारी का निर्णय धर्मसभा करती थी। कभी भी यहाँ न तो किसी आक्रामक विजेता को और न ही अनिवार्यतः राजवंश के परिजनों को शासक की मान्यता मिली। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि रामायण में श्रीराम को और महाभारत में युधिष्ठिर को उत्तराधिकारी घोषित करने का अधिकार मंत्रिपरिषद् एवं जनप्रतिनिधियों को दिया गया था। शासक अनिवार्य रूप से गुरुकुलों से 'पंचतंत्र' की दीक्षा लेकर आते थे। अत्याचार करने पर उन्हें निरस्त कर दिया जाता था। इसके प्रमाण हमारे पुराख्यानों में भरे पड़े हैं। इसी क्रम में गांधीजी ने राजनीति के अध्यात्मीकरण का प्रयास किया था, किन्तु उनके बाद राष्ट्रनायकों ने पाश्चात्य आधुनिकता तथा धर्म निरपेक्षता के नाम पर राजनीति को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

राजनीति और धर्म यदि एक दूसरे के पूरक हो जायें तो राज्य

में स्वार्थ-त्याग, लोकमंगल, जनसेवा, दान, दया, परोपकार, बाल विकास, नारी कल्याण आदि से जुड़े कार्यक्रम कई गुना बढ़ जाएँ। आज की राजनीति छल, छंद, प्रपंच, लूट-खसोट, भ्रष्टाचार, शोषण, जातीय, साम्प्रदायिक, क्षेत्रीय कुदृष्टि अर्थात् पाप-बुद्धि का पर्याय बन गयी है। इसका एक सही समाधान खोजना बहुत आवश्यक है।

राजा का धर्म है- प्रकृति (प्रजा) का रंजन करने वाला। इसलिए, कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर गोस्वामी तुलसीदास द्वारा बहुत गहन मनन किया गया है। राज्य को लेकर गोस्वामीजी की कुछ नितान्त निजी धारणाएं रही हैं। वे मानते हैं कि प्रजा के सौभाग्य से ही अच्छा राजा और अच्छा राज्य मिलता है। यह विचारणीय है कि राजा को उन्होंने 'दिल्लीश्वरा वा जगदीश्वरा वा ...' की तर्ज पर ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं माना है, बल्कि सामान्यतः राजाओं को 'भूमि-चोर' यानि भू-माफिया या दस्युवृत्ति का प्रतिनिधि घोषित किया है। उनके शब्दों में-'**भूप भूमि चोर भये।**' उनके अनुसार समकालीन राजा कैसे थे, उसे इस चौपाई से समझा जा सकता है-

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।।

उ.कां./ 97ख/2।।

ब्राह्मण वेदों के बेचने वाले और राजा प्रजा को खा डालने वाले होते हैं। वेद की आज्ञा कोई नहीं मानता।

'कुराज' का उल्लेख करते हुए उन्होंने इन्द्र तक की खबर ली है। उनके शब्दों में-

कपट कुचालि सीवँ सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू।।

अयो.कां/ 301/1।।

देवराज इंद्र कपट और कुचाल की सीमा है। उसे पराई हानि और अपना लाभ ही प्रिय है।

इंद्र को सूखी हड्डी के लिये लड़ते-झगड़ते कुत्ते की उपमा दी गयी है। राक्षसराज रावण को और खर-दूषण, त्रिशिरा, विराध आदि को उन्होंने अत्याचारी, कपटी, आतंकवादी एवं आदमखोर सिद्ध किया है। अन्य राक्षसों ने ऋषियों-मुनियों को आतंकित कर रखा था। दण्डकारण्य में उन्हें खा-खाकर अस्थियों का ढेर लगा दिया था।

ज्ञातव्य है कि दण्ड राम के पूर्वज थे। जिन्हें दुष्कर्मवश शाप दिया गया था। तबसे दण्डक वन और दण्ड शब्द रूढ़ हो गये। इसी उद्देश्य से राम ने वनवास हेतु दण्डकारण्य का चयन किया था।

गोस्वामीजी ने यदा-कदा समकालीन मुगल सत्ता पर भी प्रहार किया है। उनके अनुसार कलियुग में यवन महामहिपाल बनेंगे और वे अमानुषिक दण्ड विधान सबको संत्रस्त करके राजकाज चलायेंगे-

साम न दाम न भेद कलि केवल दण्ड कराल।।

दोहावली।।

स्पष्टतः यहां जहांगीरी न्याय व्यवस्था पर व्यंग्य है।

इसके ठीक विपरीत उन्होंने रामराज्य की परिकल्पना की है, जहां राज्य-विहीन सत्ता (स्टेटलेस सोसाइटी) है। तुलसीदास के अनुसार-

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज। जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज।।

उ.कां./22।।

श्रीरामचंद्रजी के राज्य में दंड केवल संन्यासियों के हाथों में है, भेद नाचने वालों के नृत्य समाज में है और जीतो शब्द केवल मन के जीतने के लिये ही सुनायी पड़ता है।

रामराज्य पूर्णतः स्वचालित है, विकेंद्रित है और इसलिए स्वयं में एक परिपूर्ण व्यवस्था (परफेक्ट सिस्टम) है। गोस्वामीजी के अनुसार कोसलराज की सीमाएं बहुव्याप्त रही हैं। अयोध्या आक्रमणकारियों से पूर्णतः सुरक्षित रही है। वह सप्तपुरियों में गणमान्य है। नवद्वार युक्त है। उसकी समस्त इकाइयां-न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका, प्रतिरक्षा आदि सुगठित हैं। यही कारण है कि राम के वनवास, दशरथ की मृत्यु और भरत की उदासीनता के बावजूद कोई उस पर आक्रमण करने का दुस्साहस नहीं कर सका।

जबकि, श्रीकृष्ण की मथुरा पर शिशुपाल, जरासंध आदि बराबर कहर ढाते रहे। अयोध्या के सुराज का एक मुख्य कारण था-राजा-प्रजा का समन्वय। तुलसीदास के अनुसार-

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।

उ.कां./ 20/2।।

सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बतायी हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

जब राज्य-व्यवस्था श्रुतिसम्मत यानी विधि-विहित पद्धति से चलती है तो समाज भी अपने आदर्श रूप में निखरकर सामने आता है। तुलसीदास के शब्दों में-

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।

उ.कां. 20/1,6।।

अर्थात् राम-राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। न कोई दरिद्र है, न दुःखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणों से हीन ही है।

तुलसी के राम-राज्य में

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।।
उ.कां./ 20।।

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज।।
उ.कां./ 23।।

सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेद मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है। चंद्रमा अपनी अमृतमयी किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं। रामचंद्र के राज्य में सूर्य उतना ही तपते हैं, जितने की आवश्यकता होती है और बादल मांगने से जब जहां जितना चाहिये, उतना ही जल देते हैं।

इस सुराज का मूल कारण यह है कि राम गरीबनवाज हैं, दीनबन्धु हैं, दीनानाथ हैं। खिन्न (दुखी) जन उन्हें परम प्रिय हैं। वे धर्मशील शासक हैं। गोस्वामीजी का निष्कर्ष है-

कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू।।
अयो.कां./178/1।।

मैं सत्य कहता हूं, आप सब सुनकर विश्वास करें, धर्मशील को ही राजा होना चाहिये।

रामराज्य में राजतंत्र मूलतः धर्मतंत्र और लोकतंत्र द्वारा नियन्त्रित है। भरत को राज्य-संचालन का प्रबोध देते हुए राम कहते हैं-

तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।।
अयो.कां. /314/8।।

तुम मुनि वशिष्ठजी, माताओं और मंत्रियों की शिक्षा मानकर उसके अनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन (रक्षा) करते रहना।

तुलसी के 'राम' आदर्श राजा हैं। उनके राम मात्र कर्तव्य-परायण हैं, भोगपरायण कदापि नहीं। वे आरण्यक राम हैं। उन्होंने रीछ, वानर, कोल, किरात, शबर, निषाद- सभी प्रजातियों के सरदारों से सामंजस्य स्थापित किया। सब उन्हें अपना साम्राज्य अर्पित करने को आतुर हैं, किंतु राज्य-लिप्सा से राम कोसों दूर हैं।

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ।।
सुं.कां./49ख।।

शिवजी ने जो सम्पत्ति रावण को दसों सिरों की बलि देने पर दी थी, वही सम्पत्ति श्रीरामजी ने विभीषण को बहुत सकुचाते हुए दी।

यहां तक कि उन्हें अयोध्या में जब अपने राज्याभिषेक की सूचना मिलती है तो वे यह कहते हुए प्रतिवाद करते हैं-

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।।
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा।।
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।
अयो.कां./9/5-7।।

उन्हें राज्य पाने की न तो खुशी है, न खोने का दुःख है। इसलिये गोस्वामीजी भावविभोर होकर उनकी वन्दना करते हैं-

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा त मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा।।
अयो.कां./मंगलाचरण श्लोक 2।।

रघुकुल को आनंद देने वाले श्रीरामचंद्रजी के मुखारविन्द की जो शोभा राज्याभिषेक की बात सुनकर न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दुःख से मलिन ही हुई, वह (मुखकमल की छवि) मेरे लिये सदा सुन्दर मंगलों की देने वाली हो।

गोस्वामीजी का रामराज्य चाहे यथार्थ हो, चाहे मिथकीय यूटोपिया हो या फैन्टेसी हो, किन्तु है वह लोक-प्रशासन की चरम अवस्था। इसलिये वह गांधी जी को अभीष्ट था। उसे सुराज का प्रतीक माना गया। ऐसे राज्य की कामना तुलसी ने बारम्बार की है।

भौतिक जीवन में वह नहीं सुलभ हुआ तो विनयपत्रिका में उन्होंने राम-दरबार का रूपक रचा और अपने उद्धार की अपील की। हनुमान-जानकी तथा अन्य, पार्षदों से इसकी संस्तुति करवाई। फलतः उनकी प्रार्थना को संस्वीकृति मिली। ऐसे राजाराम और ऐसी राजधानी अयोध्या को पाकर गोस्वामीजी फिर किसका राज्याश्रय ग्रहण करते। जनश्रुति है कि उनके समकालीन मुगले आजम जहांगीर ने जब उन्हें मनसबसदारी का निमंत्रण भेजा तो उन्होंने पूरी अनासक्ति एवं निर्भीकता के साथ उत्तर दिया।

"हम चाकर रघुबीर के लिख्यो पढ़्यो दरबार।
तुलसी अब का होयंगे नर को मनसबदार।।
दोहावली।।

उनका संकल्प था कि प्राकृत जन का गुणगान करके भगवती भारती को आहत नहीं करेंगे। एक संदर्भ में उनका आत्मकथ्य है

जांचत नरेस देस देस के अचेत रे।।
कवितावली 304।।

याचक होकर दरबारों के चक्कर लगाना तथा जय-जयकार करना एक जघन्यकर्म है। वे पूरी तितिक्षा के साथ कहते हैं-

जानकी जीवन को जनु है।
जरि जाउ सो जीह जो जांचत औरहिं।।
तीनि टूक कौपीन के, अरु भाजी बिनु नोन।
रघुबर जाके उर बसे, इन्द्र बापुरो कोन।।
कवितावली 26।।

स्पष्ट है कि राज्याश्रय को गोस्वामीजी ने महत्व नहीं दिया। दरबारी कवि बनने की यदि कोई सुप्त लालसा उनके अवचेतन में थी भी तो उसका उन्होंने उदात्तीकरण कर लिया था, जिसका प्रमाण है 'विनयपत्रिका' का रूपक। वस्तुतः राजाओं का राजमद अपने मनोराज्य में रहने वाले सत्ता साधक को कैसे सह्य होता? उन्होंने अपनी 'रहनि' बना ली थी-''**जथा लाभ संतोष सदा काहू सो कछु न चहौगो।**' उनकी दृढ़ मान्यता थी कि

जग बौराइ राज पदु पाएँ।।
अयो.कां /227/8।।

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।।
उ.कां./ 70ख।।

सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।।
अयो.कां./228/1।।

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदयँ तब आवा।।
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।।
बा.कां./59/7,8।।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ।।
बा.कां/88/3।।

अर्थात् राजपद पा जाने पर सारा जगत ही पागल (मतवाला) हो जाता है। लक्ष्मी के मद ने किसको टेढ़ा नहीं किया और प्रभुता ने किसको बहरा नहीं कर दिया। सहस्रबाहु, देवराज इंद्र और त्रिशंकु आदि किसको राजमद ने कलंक नहीं दिया। जब दक्ष ने बड़ा अधिकार पाया तब उनके हृदय में अत्यंत अभिमान आ गया। जगत में ऐसा कोई पैदा नहीं हुआ जिसको प्रभुता पाकर मद न हो। स्वामियों का यह सहज स्वभाव ही है कि वे पहले दंड देकर फिर कृपा किया करते हैं।

तुलसी नैतिकता-विहीन राजनीति को नहीं स्वीकारते। उनका स्पष्ट निर्णय है-

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।।
अयो.कां./171/4।।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी।।
अयो.कां./70/6।।

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं।।
अयो.कां./125/3।।

उस राजा का सोच करना चाहिये जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणों के समान प्रिय नहीं है। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है। जिनसे मुनि और तपस्वी दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अग्नि के ही (अपने दुष्ट कर्मों से) जलकर भस्म हो जाते हैं।

गोस्वामीजी का यह मन्तव्य है कि-

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।।
अर.कां./ 20ख/8।।

अर्थात् नीति के बिना राज्य, धन के बिना धर्म और ईश्वर को समर्पित किये बिना सत्कर्म का कोई मतलब ही नहीं होता है।

धन से तात्पर्य है संसाधन और धर्म से आशय है राजधर्म। राजा का धर्म है- प्रजा रक्षण, अभयदान, सामाजिक न्याय और प्रजा वात्सल्य।

श्रीराम ने इसलिये अधर्म-प्रेरित बालि का वध किया। बालि ने अपनी अनुज-वधु को बलात अधिग्रहण किया था, जो आर्य संस्कृति के विपरीत है। बालि का आरोप था-

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं।।
कि.कां./8/5।।

हे गोसाईं! आपने धर्म की रक्षा के लिये अवतार लिया है और मुझे व्याध की तरह छिपकर मारा?

इसके निराकरण-स्पष्टीकरण में राम उत्तर देते हैं-

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।
कि.कां. /8/7,8।।

हे मूर्ख! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहन, पुत्र की स्त्री और कन्या-ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता।

यह ज्ञातव्य है कि बालि एक सन्धि के अधीन रावण का मित्र था। उससे प्रकट युद्ध करते हुए उन्हें राक्षसों का प्रतिरोध झेलना पड़ता। तब रीछराज जामवंत भी उसके पक्ष में होते। नीति कहती है कि शत्रु का मित्र अपना शत्रु होता है, अतः रावण-वध के पूर्व बालि-वध आवश्यक था। उसे मार देने से पहले श्रीराम ने यह संकल्प किया था-

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।।
अर.कां./ 9।।

श्रीराम ने दोनों भुजाओं को उठाकर प्रतिज्ञा की कि पृथ्वी को राक्षसों से मुक्त करूँगा। इसके बाद उन्होंने सभी मुनियों के आश्रमों में जाकर उन्हें सुख दिया।

राजधर्म का निरूपण करते हुए गोस्वामीजी ने यह व्यवस्था दी-

गुर सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा।
बा.कां./154/4।।

राजा गुरु, देवता, पितृ और ब्राह्मण- इन सबकी सदा सेवा करता रहता था।

आतंक और अराजकता समाप्त करना सुराज का मूल लक्षण है-

जस सुराज खल उद्यम गयऊ।
कि.कां./14/3।।

श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों का उद्यम जाता रहा अर्थात उनकी एक भी नहीं चलती।

आतंक और अराजकता समाप्त करने के लिये राजदण्ड की व्यवस्था की गयी है। गोस्वामीजी के अनुसार सुधार के लिये दण्ड आवश्यक है-

काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच।।
सुं. कां./58।।

चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटने पर ही फलता है। नीच विनय से नहीं मानता, वह डांटने पर ही झुकता है अर्थात् सही रास्ते पर आता है।

इसी क्रम में महाकवि ने कराधान (टैक्स) पर विचार किया है। उनके अनुसार जनता से कर ऐश्वर्य-भोग के लिये नहीं, विकास कार्य के लिये वसूला जाये और इस प्रकार उगाहा जाय कि किसी को खले नहीं। वे सूर्य का दृष्टांत देते हुए कहते हैं-

बरसत हरसत सब लखै, करसत लखै न कोय।
तुलसी प्रजा सुभाग तें, भूप भानु सम होय।।
दोहावली 508।।

हमें प्रजा से कर ऐसे लेना चाहिए, जैसे सूर्य लेता है। सूर्य समुद्र, नदी, तालाब सभी जगहों से पानी लेता है, लेकिन किसी को पता नहीं चलता। जब वह बादलों के रूप में जरूरत की जगहों पर पानी बरसाता है तो सबको पता चलता है, सभी खुश हो जाते हैं। यानी सरकार को टैक्स इस तरह से लेना चाहिए कि किसी को पता न चले, लेकिन जब उसी टैक्स का इस्तेमाल जनता के हित में खर्च हो, जैसे हाइवे बनें, पुल बनें, स्कूल-कालेज अस्पताल बनें तो सबको पता चले।

आदर्श राज्य के लिये राजा-प्रजा का सामंजस्य जरूरी होता है। प्रजा को भी राजा के प्रति निष्ठावान होना चाहिये-

राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा।।
अयो.कां./249/8।।

कृपालु श्रीरामचन्द्रजी ने निषाद पर कैसी कृपा की है। जैसे राजा हैं, वैसा ही उनके परिवार और प्रजा को होना चाहिये।

रघुवंश में यही परम्परा रही है। महाराज दशरथ को जब वृद्धावस्था की प्रतीति होती है और वे राम के राज्याभिषेक का मन बनाते हैं, तो प्रजा पद्धति से सबसे परामर्श लेते हैं-

जौ पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका।
अयो.कां./4/3।।

यदि पंचों को (आप सबको) यह मत अच्छा लगे, तो हृदय में हर्षित होकर आप लोग श्रीरामचन्द्र का राजतिलक कीजिये।

वे उत्तराधिकार का निर्णय सर्वसम्मति से लेते हैं। इसी प्रकार एक प्रसंग में श्रीराम अपनी प्रजा से विचार-विमर्श करते हुए कहते हैं-

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी।।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई।।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।
उ.कां./ 42/3-6।।

अर्थात् हे समस्त नगरनिवासियों! मेरी बात सुनिये। यह बात मैं हृदय में कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूं। न अनीति की बात कहता हूं और न इसमें कुछ प्रभुता ही है। इसलिये (संकोच और भय छोड़कर, ध्यान देकर) मेरी बातों को सुन लो और फिर तुम्हें अच्छी लगे, तो उसके अनुसार करो। वही मेरा सेवक है और प्रियतम है, जो मेरी आज्ञा माने। हे भाई! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूं तो भय भुलाकर बेखटके मुझे रोक देना।

स्पष्ट है तुलसी चाहते हैं कि राजा और प्रजा के बीच संवाद निर्भीकतापूर्वक होना चाहिये और व्यक्ति पूजा कतई नहीं होनी चाहिये। इसके विपरीत स्वेच्छाचारी रावण किसी की सलाह को बर्दाश्त नहीं करता। सबको डांटता-डपटता रहता है। गोस्वामीजी ने तो आम जनता को प्रतिवाद करते हुए दिखाया है।

गोस्वामीजी मानते हैं कि राजा का आचरण प्रायः संदिग्ध एवं अनियंत्रित होता है-

सास्त्र सुचिंचित पुनि पुनि देखिअ।
भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ।।
अर.कां./36/8।।

भलीभांति चिन्तन किये हुए शास्त्र को भी बार-बार देखते रहना चाहिये। अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजा को वश में नहीं समझना चाहिये।

किन्तु आदर्श राज्य में पारदर्शिता होती है। राजा को समत्वदर्शी होना होता है। कवि के शब्दों में-

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।।
अयो.कां./315।।
सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ।।
अयो.कां./306।।

मुखिया मुख के समान होना चाहिये, जो खाने-पीने को तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है। सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक-स्वामी की प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं।

यही राजा-प्रजा की समानधर्मिता है। राम, जनक आदि इसी के प्रतीक हैं। इसी भाव से प्रेरित होकर विश्वामित्र ने अवध नरेश और मिथिला नरेश को परस्पर जोड़ा था। इसी उत्सर्ग-भाव से परशुराम ने परीक्षोपरान्त राम को अपना उत्तराधिकार सौंपा था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काल-दोष से बचते हुए प्रत्यक्ष रूप से अपनी समकालीन राज व्यवस्था पर आक्षेप न करते हुए भी गोस्वामीजी ने प्रकारान्तर से रामराज्य की परिकल्पना देकर छोटी रेखा के सामने बड़ी रेखा खींच दी और मुगलसत्ता को बौना सिद्ध कर दिया। वस्तुतः उनका रामराज्य स्वचालित अर्थात राज्य-विहीन राज्य का आदर्श है।

तुलसी डंके की चोट पर कहते हैं-

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।।
अयो.कां./171/4।।

उस राजा का सोच करना चाहिये जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणों के समान प्रिय नहीं है।

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी।।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं।।
बा.कां. 230/7,8।।

रण में शत्रु जिसकी पीठ नहीं देख पाते अर्थात् जो लड़ाई के मैदान से भागते नहीं, परायी स्त्रियां जिनके मन और दृष्टि को नहीं खींच पातीं और भिखारी जिनके यहां से 'नाहीं' नहीं पाते अर्थात् खाली हाथ नहीं लौटते, ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसार में थोड़े हैं।

तुलसीदास यह भी मानते हैं कि-

संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा।।
अर.कां./20ख/10।।

जो राजा गलत सलाहकारों में फंस जाता है, वह नष्ट हो जाता है। जो अहंकार से ग्रस्त हो जाता है, वह विवेक-वंचित हो जाता है और जो मदिरापान का आदी हो जाता है, वह लोक-लाज गंवा बैठता है।

गोस्वामीजी का मत है कि धूर्त राजा निरंतर दुःखदायी होता है। दूसरे, चापलूसी या लोभवश राजतंत्र के तीनों स्तंभ उसे प्रिय, किंतु गलत सलाह देने लगते हैं-

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।।
सुं.कां./ 37।।

सचिव की गलत सलाह से राजा नष्ट हो जाता है, मूर्ख वैद्य के कारण स्वास्थ्य चौपट हो जाता है और गलत पुरोहित धर्म को नष्ट कर देता है।

गोस्वामी जी का मत है कि-

साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा।।
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए।।

लं.कां./37/9,10।।

वेद कहते हैं कि साम, दान, दंड और भेद- ये चारों राजा के हृदय में बसते हैं। ये नीति के चार सुंदर चरण हैं। किन्तु रावण में धर्म का अभाव है। ऐसा जी में जानकर ये नाथ के पास आ गये हैं।

तात्पर्य यह है कि तुलसी उसी राजा और राज्य को महत्व देते हैं, जो नीति पर टिका हुआ है-

धन्य सो भूपु नीति जो करई।।

उ.कां./126/6।।

अर्थात् वह राजा धन्य है, जो नीति का पालन करता है।

अस्तु, वे आजन्म राज्याश्रय से दूर रहे। बुलाने पर भी मनसबदारी नहीं स्वीकारी। सिद्ध है कि राजनय व्यवस्था के प्रति गोस्वामीजी प्रायः क्षुब्ध दिखाई देते हैं।

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं।।

उ.कां./100ख/6।।

राजा लोग पाप परायण हो गये, उनमें धर्म नहीं रहा। वे प्रजा को नित्य ही बिना अपराध दंड देकर उसकी दुर्दशा किया करते हैं।

राजनीति के नाम पर वे छल छद्म को मान्यता नहीं देते।

बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा।।

बा.कां./159ख/6।।

एक तो वैरी, फिर जाति का क्षत्रिय, फिर राजा। वह छल-बल से अपना काम बनाना चाहता था।

ऐसे अत्याचारियों को गोस्वामीजी ने राक्षस तुल्य माना है। उनका उद्घोष है-

जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी।।

बा.कां./183/3।।

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! जो लोग इस तरह का आचरण करते हैं, उन्हें राक्षस जैसा प्राणी समझना चाहिये।

वे बताते हैं कि जिसके राज्य में प्रजा दुखी रहती है, वह राजा नारकीय होता है। जो राजा केवल साम्राज्य-विस्तार में या सुन्दरियों के अपहरण में लगा रहता है, वह रावण की तरह सोने की लंका तो बना सकता है, किंतु सर्वसाधारण को सामाजिक न्याय एवं मानवाधिकार न देने के कारण अन्ततः पाप का भागीदार होता है। उनके शब्दों में-

भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र।।

बा.कां./182 क।।

अर्थात् रावण ने भुजाओं के बल से सारे विश्व को वश में कर लिया, किसी को स्वतंत्र नहीं रहने दिया। इस प्रकार मंडलीक राजाओं का सार्वभौम सम्राट रावण अपने इच्छानुसार राज्य करने लगा।

गोस्वामीजी का स्पष्ट मत है कि राजमद से अहंकार का संचार होता है। प्रभुता अंधा-बहरा बना देती है, मदांध कर देती है।

वहीं, भरत एक कैसे राज्य में शासन करते हैं, कवि के शब्दों में-

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी।।

अयो.कां./323/7,8।।

अयोध्यापुरी में भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं जैसे चम्पा के बाग में भौंरा। श्रीरामचन्द्रजी के प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मी के भोग-ऐश्वर्य को वमन (उल्टी) की भांति त्याग देते हैं, फिर उसकी ओर ताकते भी नहीं। इसलिये भरत जैसे तपस्वी राजा, जनक जैसे विदेह और राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम का उन्होंने स्तवन किया है। ध्यान रहे, अच्छी शासन व्यवस्था के लिये सेवकों को अनुशासित होना अत्यावश्यक होता है। इसलिये उनके राजा राम कहते हैं-

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।

उ.कां./42/5

इस प्रकार स्पष्ट है कि समतामूलक सुराज (प्रकारान्तर से रामराज्य) का सत्संकल्प गोस्वामीजी के काव्य में प्रतिफलित हुआ है, जो युग-युग से हमारा दिशा-दर्शक बना हुआ है और आज भी प्रासंगिक है। ये सूत्र भी तुलसी मत के अविच्छिन्न अंग हैं।

वर्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था में निर्णय मूड़ी (सिर) गिनकर लिया जा रहा है, नागरिकों को तोलकर नहीं। इसलिये जाति, वर्ग, लिंग, संप्रदाय, क्षेत्र का भेदभाव बढ़ गया है। आज जो व्यक्ति बदखर्ची, दुर्व्यसन, अकर्मण्यता, अविवेक आदि के कारण गरीब हो गया है तो वह सबकी सहानुभूति का पात्र हो गया है। दूसरी ओर जो अपनी कर्मठता, दूरदर्शिता, जोखिम, मितव्यय, बचतवृत्ति आदि के कारण अमीर बन गया, वह सबको अप्रिय हुआ जा रहा है।

अध्यात्म से समस्त वर्गों के प्रति समत्व का भाव बढ़ता है। अध्यात्मपरक राजनीति **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** का मंत्र देती है। सच्चा रामराज तभी आयेगा, जब 'राम प्रताप विषमता खोई।'

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।

उ.कां./19ग/7,8।।

श्रीरामचंद्रजी के राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर तीनों लोक हर्षित हो गये, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसी से वैर नहीं करता। श्रीरामचंद्रजी के प्रताप से सबकी विषमता मिट गयी।

श्रीरामचरितमानस में प्रबंधन के सूत्र

परिवार, समाज एवं कार्यस्थल में रोजमर्रा के प्रबंधन का मानस में है भरपूर ज्ञान

रजनीश खरे, सहायक प्राध्यापक
जीएल बजाज इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट, ग्रेटर नोएडा

श्री रामचरितमानस को जिस भी दृष्टि से देखा जाये, वह उसी दृष्टि से दिखाई पड़ता है। इस महान ग्रन्थ ने समाज के प्रत्येक पथ को आलोकित किया है। मानस का अध्ययन करने से उसमें आधुनिक प्रबंधन के सूत्र प्राप्त किये जा सकते हैं। आज का प्रबंधन जिन सूत्रों पर आधारित है, मानस में वे सभी सूत्र उपस्थित हैं। रामचरितमानस का ज्ञान सार्वभौमिक एवं शाश्वत है। प्रबंधन के जिन सूत्रों के माध्यम से सुख और समृद्धि को प्राप्त किया जा सकता है, उन्हीं सूत्रों को हम मानस से इस लेख के माध्यम से ढूंढ़ने का प्रयास करेंगे।

समय सीमा का निर्धारण

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग। जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग।।
उ.का./श्लोक3/दोहा।।

श्रीरामजी के लौटने की अवधि का एक ही दिन बाकी रह गया, अतएव नगर के लोग बहुत आतुर (अधीर) हो रहे हैं। राम के वियोग में दुबले हुए स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ सोच (विचार) कर रहे हैं (कि क्या बात है, श्रीरामजी क्यों नहीं आए)।

मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा।।
सु.का./26/6।।

अशोक वाटिका में सीताजी हनुमानजी से कहती हैं कि हे तात! तुम जाकर प्रभु श्रीराम को इंद्रपुत्र जयंत की कथा (घटना) की याद दिलाकर उनके बाण के प्रताप का स्मरण कराना। यदि महीने भर में नाथ न आये तो फिर मुझे जीवित नहीं पाएँगे।

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई।।
राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा।।
कि.का./21/5,6।।

आज्ञा पाकर सब जहाँ-तहाँ खड़े हो गए। तब सुग्रीव ने सबको समझाकर कहा कि हे वानरों के समूहों! यह श्रीरामचंद्रजी का कार्य है और मेरा निहोरा (अनुरोध) है, तुम चारों ओर जाओ।।

जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई।।
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ।।
कि.का./21/7,8।।

जाकर जानकीजी को खोजो। हे भाई! महीने भर में वापस आ जाना। यदि अवधि बिताकर बिना पता लगाये ही लौटे तो मार डाला जायेगा।

मानस में प्रबंधन का प्रथम महत्वपूर्ण सूत्र है कि प्रत्येक कार्य एक निश्चित समय सीमा में ही होना चाहिए। वर्तमान समय में प्रत्येक संगठन के अपने लक्ष्य हैं और उनकी पूर्ति के लिए समय सीमा का निर्धारण है। कर्मचारियों को प्रत्येक लक्ष्य को पूरा करने के लिए एक समय सीमा दी जाती है और उस समय सीमा के भीतर ही उन्हें अपने लक्ष्य पूरे करने होते हैं और ऐसा करने का उन पर दबाब भी होता है। उनके कार्य की सफलता के मूल्यांकन में समय सीमा सबसे महत्वपूर्ण कारक है। मानस में भरत, श्रीराम से चौदह वर्ष की सीमा के अंदर ही अयोध्या वापस लौटने का वचन लेते हैं। वे कहते हैं कि अगर राम चौदह वर्ष के भीतर अयोध्या नहीं लौटे तो वे आत्मदाह कर लेंगे। सुग्रीव भी वानरों को एक माह का ही समय देते हैं, सीताजी की खोज के लिए। सीताजी ने भी हनुमानजी को बोला कि राम से कहना कि वे एक माह के अंदर उन्हें यहाँ से ले जायें अन्यथा राम सीता को जीवित नहीं पाएंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानस में प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य के लिए समय सीमा का निर्धारण किया गया। मानस सिखाता है कि समय सीमा विहीन लक्ष्य प्राप्ति का कोई महत्व नहीं है।

अनिश्चितता की स्वीकार्यता

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी।।
सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू।।
अयो.का./28/3,4।।

तपस्वियों के वेष में विशेष विरक्त भाव से राम चौदह वर्ष तक वन में निवास करें। कैकेयी के विनययुक्त वचन सुनकर राजा के हृदय में ऐसा शोक हुआ, जैसे चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चकवा विकल हो जाता है।।

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ।।
अर.का./28।।

फिर क्रोध में भरकर रावण ने सीताजी को रथ पर बैठा लिया और वह बड़ी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला, किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था।।

अनुज समेत गये प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ।।
आश्रम देखि जानकी हीना। भये बिकल जस प्राकृत दीना।।
अर.का./29ख/5,6।।

लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्रीरामजी वहाँ गये, जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था। आश्रम को जानकीजी से रहित देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल और दुःखी हो गये।

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता।।
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती।।
अर.का./29ख/7,8।।

(वे विलाप करने लगे-) हा गुणों की खान जानकी! हा रूप,

शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते! लक्ष्मणजी ने बहुत प्रकार से समझाया। तब श्रीरामजी लताओं और वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले।

जीवन चाहे व्यक्ति का हो, समाज का हो या संगठनों का हो, उसमें एक चीज़ निश्चित है और वो है अनिश्चितता। कल क्या होगा इसकी पूर्णतः भविष्यवाणी कोई नहीं कर सकता। किसी भी कार्य का परिणाम पूर्णतः क्या होगा, कोई भी नहीं बता सकता। वातावरण में इतने कारक मौजूद हैं कि उनके व्यवहार का सही-सही आकलन कर पाना लगभग असंभव है। अतः मानस बताता है कि मानव जीवन में अनिश्चितता अनिवार्य है और उसकी स्वीकार्यता ही उससे निपटने का एक मात्र उपाय है। श्रीराम का संपूर्ण जीवन ही अनिश्चितता में व्यतीत हुआ। लेकिन, जब भी ऐसा हुआ उन्होंने उसको बड़े ही धैर्य और हिम्मत के साथ स्वीकार किया। श्रीराम अभी महर्षि वशिष्ठ के आश्रम से लौटे ही थे कि महर्षि विश्वामित्र उनको लेने आ गये। अचानक उनको विश्वामित्र की रक्षा के लिए इस प्रकार वन में जाना पड़ जायेगा, ऐसा तो उन्होंने सोचा नहीं था। पर श्रीराम ने इस अनिश्चितता को स्वीकार किया और निकल पड़े, इस अनिश्चित स्थिति को सुलझाने के लिए। सीताजी से विवाह करके जब पुनः अयोध्या लौटे तो लगा कि अब एक निश्चिंत जीवन व्यतीत किया जायेगा। पर जिस दिन राजा होने वाले थे, उसी सुबह अयोध्या से चौदह वर्ष के लिए निष्काषित कर दिये गये। हाथ में कुछ भी नहीं रहा सिवाय भाई और पत्नी के। पर उन्होंने इसको भी सहर्ष स्वीकार किया और चौदह वर्ष के लिए अयोध्या से निकल गये। वन में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर ही रहे थे कि एक बार पुनः ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई, जिसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। रावण ने सीताजी का अपहरण कर लिया। श्रीराम ने इस संकटपूर्ण स्थिति को पुनः स्वीकार किया और निकल पड़े सीताजी की खोज में।

मानस कहता है कि जीवन में कुछ भी निश्चित नहीं है। जो सामने आये उसे धैर्यपूर्वक स्वीकार करो और हिम्मत के साथ उसका सामना करो।

स्वयं के उदाहरण से लोगों का नेतृत्व करना

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।
अयो.का./41/1,2।।

प्राणप्रिय भरत राज्य पावेंगे। इन सभी बातों को देखकर यह प्रतीत होता है कि आज विधाता सब प्रकार से मेरे अनुकूल हैं। यदि ऐसे काम के लिए भी मैं वन को न जाऊँ तो मूर्खों के समाज में सबसे पहले मेरी गिनती करनी चाहिए।

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।
अयो.का./40/8,9।।

हे माता! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है, जो पिता-माता के वचनों का पालन करने वाला है। आज्ञा पालन द्वारा माता-पिता को संतुष्ट करने वाला पुत्र, हे जननी! सारे संसार में दुर्लभ है।

पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन।।
बा.का./208ख।।

पुरुषों में सिंह रूप दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) मुनि का भय हरने के लिए प्रसन्न होकर चले। वे कृपा के समुद्र, धीर बुद्धि और सम्पूर्ण विश्व के कारण के भी कारण हैं।

आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं।।
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी।।
बा.का./209/11,12।।

मार्ग में एक आश्रम दिखाई पड़ा। वहाँ पशु-पक्षी कोई भी जीव-जन्तु नहीं था। पत्थर की एक शिला को देखकर प्रभु ने पूछा, तब मुनि ने विस्तारपूर्वक सब कथा कही।

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।
बा.का./210।।

गौतम मुनि की स्त्री अहिल्या शापवश पत्थर की देह धारण किए बड़े धीरज से आपके चरणकमलों की धूलि चाहती है। हे रघुवीर! इस पर कृपा कीजिए।

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई।।
धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा।।
अर.का./17/9,10।।

कोई कहता है दोनों भाइयों को जिन्दा ही पकड़ लो, पकड़कर मार डालो और स्त्री को छीन लो। आकाशमण्डल धूल से भर गया। तब श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी को बुलाकर उनसे कहा।

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर।।
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी।।
अर.का./17/11,12।।

राक्षसों की भयानक सेना आ गई है। जानकीजी को लेकर तुम पर्वत की कंदरा में चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्रीरामचंद्रजी के वचन सुनकर लक्ष्मणजी हाथ में धनुष-बाण लिए श्रीसीताजी सहित चले।

देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा।।
अर.का./17/13।।

शत्रुओं की सेना समीप चली आई है, यह देखकर श्रीरामजी ने हँसकर कठिन धनुष को चढ़ाया।।

कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी।।
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई।।
लं.का./66/7,8।।

कुंभकर्ण ने वानर सेना को तितर-बितर कर दिया। यह सुनकर राक्षस सेना भी दौड़ी। श्रीरामचंद्रजी ने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और शत्रु की नाना प्रकार की सेना आ गई है।

सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन।।
लं.का./67।।

तब कमलनयन श्रीरामजी बोले- हे सुग्रीव! हे विभीषण! और हे लक्ष्मण! सुनो, तुम सेना को संभालना। मैं इस दुष्ट के बल और सेना को देखता हूँ।

बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर।।
लं.का./89।।

फिर श्रीरामजी सबकी ओर देखकर गंभीर वचन बोले- हे वीरों! तुम सब बहुत ही थक गए हो, इसलिए अब (मेरा और रावण का) द्वंद्व युद्ध देखो।

श्रीराम अपने चरित्र और कौशल को अपने लोगों के सामने रखते हैं और उन्हें प्रेरित करते हैं।

उन्होंने अपने भाई के लिए राज्य का त्याग कर दिया, अपने पिता के वचनों के लिए चौदह वर्ष का वनवास सहर्ष स्वीकार किया। ऐसा करके उन्होंने बताया कि संबंधों के लिए सुविधाओं का त्याग किया जाना चाहिए। श्रीराम ने एक आदर्श भाई और एक आदर्श पुत्र का उदाहरण प्रस्तुत कर समाज को ऐसा करने के लिए प्रेरित किया। विश्वामित्र के साथ जाकर उन्होंने सन्देश दिया कि निर्बल लोगों की सुरक्षा और न्याय के लिए युद्ध करना अनिवार्य है। अहिल्या और सबरी के आश्रम में जाकर उन्होंने पीड़ित और वंचित लोगों को आश्वस्त किया कि उनके हितों की रक्षा की जायेगी। खर-दूषण से युद्ध के लिए उन्होंने स्वयं को आगे रख लक्ष्मण और सीताजी को पीछे रखा। इसी प्रकार जब कुम्भकरण और रावण जैसे योद्धा युद्ध के लिए आये, जिनका सामना करना सभी के लिए मुश्किल था, श्रीराम ने आगे बढ़ कर उनका सामना किया और उनको पराजित किया।

मुश्किल क्षणों में लोग नेतृत्व की तरफ ही देखते हैं। ऐसे समय में नेतृत्व को अपने लोगों के लिए खड़ा होना ही चाहिए और स्वयं के उदाहरण से लोगों को प्रेरित करना चाहिए।

लोगों के प्रति कृतज्ञता का भाव

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता।।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।।
अयो.का./101/1,2।।

निषादराज और लक्ष्मणजी सहित श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी (नाव से) उतरकर गंगाजी की रेत (बालू) में खड़े हो गये। तब केवट ने उतरकर दण्डवत की। (उसको दण्डवत करते देखकर) प्रभु को संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं।

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी।।
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई।।
अयो.का./101/3,4।।

पति के हृदय को जानने वाली सीताजी ने आनंद भरे मन से अपनी रत्न जड़ित अँगूठी अँगुली से उतारी। कृपालु श्रीरामचन्द्रजी ने केवट से कहा, नाव की उतराई लो। केवट ने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिए।

पूरनकाम राम सुख रासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी।।
आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा।।
अर.का./29ख/17,18।।

पूर्णकाम, आनंद की राशि, अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्यों के चरित्र कर रहे हैं। आगे जाने पर उन्होंने गृध्रपति जटायु

को पड़ा देखा। वह श्रीरामजी के चरणों का स्मरण कर रहा था (जिनमें ध्वजा, कुलिश आदि के चिन्ह हैं।)

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर।।
अर.का./30।।

कृपा सागर श्रीरघुवीर ने अपने करकमल से उसके सिर का स्पर्श किया। शोभाधाम श्रीरामजी का परम सुंदर मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही।

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा।।
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए।।
अर.का./33/5,6।।

उदार श्रीरामजी उसे गति देकर शबरीजी के आश्रम में पधारे। शबरीजी ने श्रीरामचंद्रजी को घर में आए देखा, तब मुनि मतंगजी के वचनों को याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया।

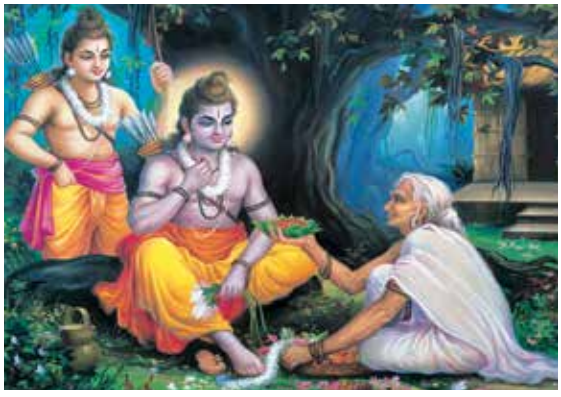

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।। अर.का./34।।

उन्होंने अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्रीरामजी को दिए। प्रभु ने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सु.का./31/5,6।।

(भगवान् कहने लगे-) हे हनुमान! सुनो, तुम्हारे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं बदले में तुम्हारा उपकार तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता।।

कोई भी काम अकेले नहीं होता उसके पीछे बहुत से लोगों का सहयोग होता है। अतः उनके प्रति कृतज्ञता का भाव होना अनिवार्य है। लोगों के किये गये कार्यों को पहचानना और उनको स्वीकार करके उन्हें सम्मानित करना अच्छे प्रबंधन की पहचान है। अगर संगठन ऐसा करते हैं तो उनकी उन्नति को कोई नहीं रोक सकता। अगर वो ऐसा करते हैं तो उन्हें लोगों का सहयोग प्राप्त होता ही रहता है। और ऐसे संगठनों से लोग स्वयं ही जुड़ना चाहते हैं।

मानस में श्रीराम हर एक उस व्यक्ति के लिए अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जिसने कुछ भी उनके लिए किया होता है।

श्रीराम केवट, जटायु, शबरी, हनुमान सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। इस तरह से राम अपने साथ सभी को बाँध लेते हैं। उनको सभी का सहयोग प्राप्त होता है और वे भी सभी के सहयोगी होते हैं। श्रीराम की सफलता में उनके कृतज्ञता के भाव का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

सहकर्मियों के प्रयास का उचित मूल्यांकन

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी।।
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए।।
सु.का./29/5,6।।

हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान ने जो करनी की, उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। तब जाम्बवान् ने हनुमानजी के सुंदर चरित्र (कार्य) श्रीरघुनाथजी को सुनाये।

चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया।।
तुम्हरें बल मैं रावनु मार्‌यो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो।।
लं.का./117ख/3,4।।

श्रीरघुनाथजी ने कृपा दृष्टि से देखकर सब पर दया की। फिर वे कोमल वचन बोले-हे भाइयों! तुम्हारे ही बल से मैंने रावण को मारा और फिर विभीषण का राजतिलक किया।

संगठनों की सफलता में सहयोगियों के सही मूल्यांकन की महत्वपूर्ण भूमिका है। अगर व्यक्तियों के प्रयासों का सही मूल्यांकन नहीं किया जाये तो उनमें निराशा आती है और उन्हें आगे के कामों के लिए प्रेरित करना बहुत मुश्किल हो जाता है। मानस में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ पर वरिष्ठ सहयोगी अपने साथ काम करने वाले कनिष्ठ सहयोगियों के कार्यों का उचित मूल्यांकन करते हैं। जामवंत हनुमानजी के कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि ये हनुमान ही हैं, जिन्होंने न केवल सीताजी का पता लगाया, बल्कि लंका को भी जला कर निसाचरों को भयभीत कर दिया। इस प्रकार जामवंत, हनुमानजी के कार्यों का उचित मूल्यांकन करके उन्हें श्रीराम के सामने रखते हैं। लंका युद्ध के पश्चात श्रीराम वानर-भालुओं को कहते हैं कि मैंने आपके बल से ही रावण को मारा है, अगर आपका साथ नहीं होता तो मुझे ये सफलता कभी नहीं मिलती।

मानस हमें सिखाता है कि हम अपने सहयोगियों के कार्यों का उचित मूल्यांकन करें और उनको, उनके कार्यों का श्रेय दें।

सहयोगी प्रथम

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।
अयो.का./41/1,2।।

प्राणप्रिय भरत राज्य पायेंगे। इन सभी बातों को देखकर यह प्रतीत होता है कि आज विधाता सब प्रकार से मेरे अनुकूल हैं। यदि ऐसे काम के लिए भी मैं वन को न जाऊँ तो मूर्खों के समाज में सबसे पहले मेरी गिनती करनी चाहिए॥1॥

अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल।।
लं.का./113।।

हे कृपालु! अब मेरे ऊपर कृपा करके देखकर आज्ञा दीजिए कि मैं क्या सेवा करूँ! इंद्र के ये प्रिय वचन सुनकर दीनदयालु श्रीरामजी बोले।

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे।।
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना।।
लं.का.113/1,2।।

हे देवराज! सुनो, हमारे वानर-भालू, जिन्हें निशाचरों ने मार डाला है, पृथ्वी पर पड़े हैं। इन्होंने मेरे हित के लिए अपने प्राण त्याग दिये। हे सुजान देवराज! इन सबको जिला दो।

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल घन गहन भुलाने।।
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना।।
कि.का./23/3,4।।

इतने में ही सबको अत्यंत प्यास लगी, जिससे सब अत्यंत ही व्याकुल हो गए, किंतु जल कहीं नहीं मिला। घने जंगल में सब भुला गये। हनुमानजी ने मन में अनुमान किया कि जल पिये बिना सब लोग मरना ही चाहते हैं।

चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पेखा।।
चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं।।
कि.का./23/5,6।।

उन्होंने पहाड़ की चोटी पर चढ़कर चारों ओर देखा तो पृथ्वी के अंदर एक गुफा में उन्हें एक आश्चर्य दिखाई दिया। उसके ऊपर चकवे, बगुले और हंस उड़ रहे हैं और बहुत से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे हैं।

गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा।।
आगें कै हनुमंतहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा।।
कि.का./23/7,8।।

पवन कुमार हनुमानजी पर्वत से उतर आए और सबको ले जाकर उन्होंने वह गुफा दिखलाई। सबने हनुमानजी को आगे कर लिया और वे गुफा में घुस गये, देर नहीं की।

पूरनकाम राम सुख रासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी।।
आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा।।
अर.का./29ख/17,18।।

पूर्णकाम, आनंद की राशि, अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्यों के चरित्र कर रहे हैं। आगे जाने पर उन्होंने गिद्धराज जटायु को पड़ा देखा। वह श्रीरामजी के चरणों का स्मरण कर रहा था (जिनमें ध्वजा, कुलिश आदि की रेखाएँ हैं)।

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर।।
अर.का./30।।

कृपा सागर श्रीरघुवीर ने अपने करकमल से उसके सिर का स्पर्श किया (उसके सिर पर करकमल फेर दिया)। शोभाधाम श्रीरामजी का परम सुंदर मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही।

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता।।
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा।।
अर.का./30/5,6।।

श्रीरामचंद्रजी ने कहा- हे तात! शरीर को बनाए रखिये। तब उसने मुस्कुराते हुए मुँह से यह बात कही-मरते समय जिनका नाम मुख में आ जाने से अधम (महान् पापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं।

अगर हमें लोगों को अपने साथ रखना है और उनके माध्यम से सफलता प्राप्त करनी है तो अपने हितों से पहले उनके हितों की चिंता करनी चाहिए। मानस की शिक्षा यही है सहयोगी प्रथम और उसके बाद में स्वयं। श्रीराम, भरत के लिए राज्य त्याग देते हैं जिसका अर्थ है कि भरत प्रथम। लंका युद्ध के पश्चात् जब इन्द्र, श्रीराम से मिलने आते हैं और उनसे पूछते हैं कि वे उनके लिए

क्या कर सकते हैं, इस पर श्रीराम, इन्द्र को कहते हैं कि अमृत वर्षा करके उनके वानर-भालुओं को स्वस्थ कर दें। श्रीराम, इन्द्र से अपने लिए कुछ न मांग कर अपने सहयोगियों के लिए जीवन मांग लेते हैं। इसी प्रकार विभीषण से कहकर बानर-भालुओं को लंका की संपत्ति दिलवा देते हैं। हनुमानजी जब सीताजी की खोज में जाते हुए अपनी टोली को भूख और प्यास से परेशान देखते हैं तो व्याकुल हो जाते हैं और उनके लिए भोजन और जल का प्रबंध करते हैं। श्रीराम जब सीताजी की खोज में पंचवटी से चले तो मार्ग में उन्हें घायल अवस्था में जटायु दिखाई देते हैं और वो जटायु की चिंता में लग जाते हैं। उनका इलाज करने की कोशिश करते हैं। जब जटायु प्राण त्याग देते हैं तो उनका दाह-कर्म करके ही सीताजी की खोज में निकलते हैं। वहीं रावण मारीच की चिंता नहीं करता।

श्रीराम अपनी चिंता करने से पहले अपने लोगों की चिंता कर लेते हैं। संगठनों को अगर सफल होना है तो उनके प्रबंधकों को भी अपने हितों की चिंता करने से पहले अपने सहयोगियों की चिंता करनी चाहिए। यही उनकी सफलता का मूलमंत्र होगा।

चुनौतियों का सामना

पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन।।
बा.का./208ख।।

पुरुषों में सिंह रूप दोनों भाई राम-लक्ष्मण, मुनि का भय हरने के लिए प्रसन्न होकर चले। वे कृपा के समुद्र, धीर बुद्धि और सम्पूर्ण विश्व के कारण के भी कारण हैं।

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी।।
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा।।
बा.का./253/5,6।।

विश्वामित्रजी शुभ समय जानकर अत्यन्त प्रेमभरी वाणी बोले- हे राम! उठो, शिवजी का धनुष तोड़ो और हे तात! जनक का संताप मिटाओ।

जीवन में हर क्षण चुनौतियाँ आती ही रहती हैं। हमारे सामने दो ही विकल्प रहते हैं या तो हम उनका सामना करें या फिर उनसे डर कर भाग जाएँ। सामना करने से विजय मिलती है और श्रेय तथा यश प्राप्त होता है। भाग जाने से पराजय और अपयश प्राप्त होता है।

मानस सिखाता है कि चुनौतियों का सामना हिम्मत के साथ किया जाये।

आज के प्रबंधकों का जीवन चुनौतियों से परिपूर्ण है। उनकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उन्होंने किस तरह से उसका सामना किया। प्रत्येक चुनौती एक अनुभव देकर जाती है जो कि भविष्य में काम आता है। विश्वामित्र जब श्रीराम को लेने आये तो श्रीराम ने इसको एक चुनौती की तरह लिया और उसको स्वीकार किया। इस चुनौती की वजह से श्रीराम के जीवन में बहुत से अनुभव आये, जिसका लाभ उन्हें चौदह वर्ष के वनवास के समय मिला। वन जीवन का अनुभव, निशाचरों का अनुभव उन्हें उसी यात्रा से मिला। विश्वामित्र से उन्हें जो अस्त्र-शस्त्र और शिक्षा प्राप्त हुई वो बाद के जीवन में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। सीताजी के स्वयंवर में धनुष उठाने की चुनौती उन्होंने स्वीकार की, जिससे उन्हें श्री की प्राप्ति हुई। श्रीराम ने निशाचरों की चुनौती स्वीकार की और विश्वविजयी रावण को हरा कर संपूर्ण जगत मे कीर्ति प्राप्त की।

सहयोगियों की क्षमताओं पर विश्वास

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
कि.का./22/9,10।।

सबके पीछे पवनसुत श्रीहनुमानजी ने सिर नवाया। कार्य का विचार करके प्रभु ने उन्हें अपने पास बुलाया। उन्होंने अपने करकमल से उनके सिर का स्पर्श किया तथा अपना सेवक जानकर उन्हें अपने हाथ की अँगूठी उतारकर दी।

नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना।।
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा।।
लं.का./16ख/5,6।।

यह अच्छी सलाह सबके मन में जँच गई। कृपा के निधान श्रीरामजी ने अंगद से कहा- हे बल, बुद्धि और गुणों के धाम बालिपुत्र! हे तात! तुम मेरे काम के लिए लंका जाओ।।

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ।।
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई।।
लं.का./16ख/7,8।।

तुमको बहुत समझाकर क्या कहूँ! मैं जानता हूँ, तुम परम चतुर हो। शत्रु से वही बातचीत करना, जिससे हमारा काम हो और उसका कल्याण हो।

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई।।
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं।।
लं.का./श्लोक3/5,6।।

जाम्बवान् ने नल-नील दोनों भाइयों को बुलाकर उन्हें सारी कथा कह सुनाई और कहा- मन में श्रीरामजी के प्रताप को स्मरण करके सेतु तैयार करो, रामजी के प्रताप से कुछ भी परिश्रम नहीं होगा।

उत्तम प्रबंधन के लिए एक महत्वपूर्ण सूत्र है-अपने सहयोगियों की क्षमताओं पर विश्वास करना और उन्हें कार्य करने के लिए स्वतंत्रता देना।

जब सहयोगियों की क्षमताओं पर विश्वास करके उन्हें स्वतंत्रता प्रदान की जाती है, तो इससे चमत्कारी परिणाम प्राप्त होते हैं। जब सहयोगियों पर विश्वास किया जाता है तो उनकी क्षमताओं का विकास होता है और साथ ही साथ संगठन का भी विकास होता है। श्रीराम ने हनुमानजी पर विश्वास किया कि वे सीताजी का पता लगा सकते हैं। इसी कारण अपनी मुद्रिका उन्हें दी। श्रीराम ने अंगद की योग्यता पर विश्वास करके उन्हें अपना दूत बना कर लंका भेजा। नल-नील पर विश्वास करके उन्हें सेतु बनाने की जिम्मेदारी दी। श्रीराम ने इनकी क्षमताओं पर विश्वास किया, इनको कार्य करने की जिम्मेदारी दी पर साथ ही साथ कार्य करने की स्वतंत्रता भी दी। उनको कहा कि ये कार्य करना है, पर कैसे होगा, ये उनके विवेक पर छोड़ दिया। इसके कारण इन सभी में भी नेतृत्वशीलता विकसित हुई, जिसका लाभ श्रीराम को भी मिला।

संवाद की कला

सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू।।
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं।।
अयो.का./107/3,4।।

उन्होंने कहा हे मुनीश्वर! जिसको आप आदर दें, वही बड़ा है और वही सब गुण समूहों का घर है। इस प्रकार श्रीरामजी और मुनि भरद्वाजजी दोनों परस्पर विनम्र हो रहे हैं और अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर रहे हैं।

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी।।
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू।।
अयो.का./125/7,8।।

श्रीरामजी की सहज ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि वाल्मीकि बोले- धन्य! धन्य! हे रघुकुल के ध्वजास्वरूप! आप ऐसा क्यों न कहेंगे? आप सदैव वेद की मर्यादा का पालन (रक्षण) करते हैं।।

बिनय न मानत जलधि जड़ गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।
सु.का./57।।

इधर तीन दिन बीत गये, किंतु जड़ समुद्र विनय नहीं मानता। तब श्रीरामजी क्रोध सहित बोले- बिना भय के प्रीति नहीं होती।

अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं।
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई। बिस्वरूप ब्यापक रघुराई।।
कि.का./21/3,4।।

सेना में एक भी वानर ऐसा नहीं था जिससे श्रीरामजी ने कुशल न पूछी हो, प्रभु के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि श्रीरघुनाथजी विश्वरूप तथा सर्वव्यापक हैं। सारे रूपों और सब स्थानों में हैं।

अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी।।
बा.का./278/1

श्रीरामचन्द्रजी दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त विनय के साथ कोमल और शीतल वाणी बोले।

प्रबंधन के प्रमुख सूत्रों में संवाद करने की कला एक महत्वपूर्ण सूत्र है। किसी भी संगठन या व्यक्ति की सफलता या असफलता में संवाद एक महत्वपूर्ण कारक है। संवाद की कला विकसित करना अनिवार्य है। मानस कहता है कि संवाद ऐसा होना चाहिए जो कि सहज हो और सरल हो, समय के अनुकूल हो, सम्मानजनक हो और सामने वाले की समझ में आये। संवाद मे शारीरिक भाव-भंगिमा की बहुत उपयोगिता है। उनके संवाद में उनकी शारीरिक भाव-भंगिमा उनके शब्दों के अनुकूल होती थी। जहाँ मुस्कान की जरूरत होती, वे मुस्कराते और जहाँ

क्रोध की अभिव्यक्ति करनी होती वहां उनके चेहरे पर क्रोध दिखाई देता।

श्रीराम के संवाद में प्रत्येक के लिए सम्मान होता था। उनके शब्द समय और परिस्थिति के अनुकूल ही होते थे। उनकी सफलता में उनके संवाद की कला का महत्वपूर्ण योगदान था। परशुराम के साथ उनका संवाद, उनकी संवाद की कुशलता और योग्यता दिखाता है।

समानता की दृष्टि

मुखिआ मुखु सो चाहिये खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।।
अयो.का./315।।

श्रीरामजी ने कहा कि मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक अकेला है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।

अगर संगठनों को सफल होना है तो नेतृत्व को सभी को समानता की दृष्टि से देखना चाहिए। नेतृत्व को सभी का पालन-पोषण इस प्रकार करना चाहिए कि किसी को भी शिकायत न हो। प्रायः प्रबंधक लाभ का बंटवारा स्वयं के हित में करना चाहते हैं, दूसरों को कुछ भी नहीं देना चाहते हैं। इस कारण संगठनों में असंतोष उत्पन्न होने लगता है। अंततः उनका पतन हो जाता है।

नेतृत्व को मुख के समान होना चाहिए जो कि स्वयं भोजन और उसके रस को अपने पास न रखकर संपूर्ण अंगों को उनकी आवश्यकतानुसार बांट देता है।

प्रशंसा और संपत्ति का महत्व

राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई।।
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा।।
कि.का./10/9,10।।

तब श्रीरामचंद्रजी ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो। श्रीरघुनाथजी की प्रेरणा से सब लोग उनके चरणों में मस्तक नवाकर चले।

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं।।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा।।
सु.का./48/9,10।।

हे सखा! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत् में मेरा दर्शन अमोघ है। वह निष्फल नहीं जाता। ऐसा कहकर श्रीरामजी ने उनका राजतिलक कर दिया। आकाश से पुष्पों की अपार वृष्टि हुई।

बहुरि बिभीषन भवन सिधायो। मनि गन बसन बिमान भरायो।।
लै पुष्पक प्रभु आगें राखा। हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा।।
लं.का./116घ/3,4।।

फिर विभीषणजी महल को गये और उन्होंने मणियों के समूहों (रत्नों) से और वस्त्रों से विमान को भर लिया। फिर उस पुष्पक विमान को लाकर प्रभु के सामने रखा। तब कृपासागर श्रीरामजी ने हँसकर कहा-

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन।।
नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही।।
लं.का./116घ/5,6।।

हे सखा विभीषण! सुनो, विमान पर चढ़कर, आकाश में जाकर वस्त्रों और गहनों को बरसा दो। तब आज्ञा सुनते ही विभीषणजी ने आकाश में जाकर सब मणियों और वस्त्रों को बरसा दिया।

श्रीराम जानते हैं कि मानव जीवन केवल बातों से नहीं चलता है। मौखिक प्रशंसा एक बात है और संपत्ति का अपना अलग महत्व है। प्रशंसा के अतिरिक्त धन-सम्पत्ति भी लोगों को काम करने के लिए प्रेरित करती है। इसलिए श्रीराम सुग्रीव और विभीषण की प्रशंसा तो करते ही हैं, साथ ही उन्हें किष्किंधा और लंका का राजा बनाकर उनको अतुलित सम्पत्ति का स्वामी भी बना देते हैं। इसलिए, श्रीराम अपने लोगों की मौखिक प्रशंसा तो करते ही हैं, पर युद्ध के बाद विभीषण को आज्ञा देते हैं कि लंका की सम्पत्ति वानर-भालुओं में बांट दी जाये।

संगठनों को चाहिए कि जो लोग उनके लिए अपने जीवन को समर्पित करें, उनके जीवन के लिए धन-सम्पत्ति की व्यवस्था करें और उनके भौतिक हितों की चिंता करें। तभी लोग उनके लिए काम करने को तैयार होंगे। अन्यथा उन्हें लोगों का मिलना मुश्किल होगा।

कर्मों की जिम्मेदारी

बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी।।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।
अयो.का./91/3,4।।

तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस से सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले- हे भाई! कोई किसी को सुख-दुःख का देने वाला नहीं है। सब अपने ही किए हुए कर्मों का फल भोगते हैं।

मानस कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में जो भी सुख-दुःख आते हैं, उनके लिये वह स्वयं ही उत्तरदायी होता है। जीवन में जब सुख आता है तब तो हम यह स्वीकार करते हैं कि ये हमारे प्रयासों का फल है, पर जब भी दुःख आता है तो हम किसी और

को जिम्मेदार बनाने लगते हैं। हम असफलता के लिये स्वयं को जिम्मेदार न मानकर उसे दूसरों पर आरोपित कर देते हैं और अपने लिये बचने का रास्ता खोज लेते हैं। पर तुलसीदास कहते हैं कि

संगठनों की असफलता के लिये नेतृत्व को स्वयं को जिम्मेदार मानना चाहिए। उन्हें स्वीकार करना चाहिए कि ये उनके निर्णय ही थे, जिनके कारण ऐसी परिस्थिति बनी।

निर्णयों में सहयोगियों की सहभागिता

इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई।।
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई।।
लं.का./16ख/1,2।।

यहाँ यानी सुबेल पर्वत पर प्रातःकाल श्रीरघुनाथजी जागे और उन्होंने सब मंत्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि शीघ्र बताइए, अब क्या उपाय करना चाहिए? जाम्बवान् ने श्रीरामजी के चरणों में सिर नवाकर कहा-

बिना सहयोगियों की सहभागिता के कोई भी संगठन सफल नहीं हो सकता। आधुनिक प्रबंधन की नवीन अवधारणाओं में से एक सहभागी प्रबंधन है। इससे आशय ऐसे प्रबंध से है जो संगठन में कार्मिकों को एक अंतर्निहित तत्व मानता है तथा उन्हें नीति निर्माण से लेकर उनके क्रियान्वयन तक में सक्रिय भागीदार के रूप में शामिल करता है। जब सहयोगियों के विचारों को नीति निर्माण और अन्य कार्यों में शामिल किया जाता है तो उनको भी संगठन अपना सा लगता है तथा वे और भी सक्रिय होकर अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। श्रीराम कोई भी निर्णय अकेले नहीं करते। वे सभी के साथ समस्या को साझा करते हैं और उसे हल करने के लिये सभी से सहयोग मांगते हैं।

राम जानते हैं कि निरंकुश या एकतंत्रीय शासन बहुत अधिक समय तक नहीं चल सकता है। जब निर्णयों में सहयोगियों को भी शामिल किया जाता है, तब उनमें भी नेतृत्व क्षमता का विकास होता है।

इससे संगठन को भविष्य के लिये नेता (लीडर्स) मिलते हैं और संगठनों के सफल होने की संभावना बढ़ती है।

वरिष्ठ और विद्वान लोगों का सम्मान

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।।
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता।।
उ.का./92ख/5,6।।

गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्माजी और शंकरजी के समान ही क्यों न हो। गरुड़जी ने कहा- हे तात! मुझे संदेह रूपी सर्प ने डस लिया था और साँप के डसने पर जैसे विष चढ़ने से लहरें आती हैं, वैसे ही बहुत सी कुतर्क रूपी दुःख देने वाली लहरें आ रही थीं।

संगठनों के अंदर बहुत से वरिष्ठ और विद्वान् लोग होते हैं। उनके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाना अति आवश्यक है। उनके पास अनुभव और कौशल दोनों होते हैं। आदर और सम्मान देकर उनके अनुभव और कौशल दोनों का लाभ लिया जा सकता है। भगवान राम अपने सभी वरिष्ठ लोगों को अत्यंत सम्मान देते हैं। चाहे वो वशिष्ठ हों, विश्वामित्र हों या फिर जाम्बवान हों। तुलसीदासजी कहते हैं कि

आप चाहे कितने भी विद्वान क्यों न हों, अगर आपके जीवन में कोई अनुभवी व्यक्ति नहीं है तो आप सफल नहीं हो सकते।

संगठन की सफलता की कसौटी

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
उ.का./20/1,2।।

'रामराज्य' में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
उ.का./20/6।।

न कोई दरिद्र है, न दुःखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणों से हीन ही है।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।
उ.का./20/7,8।।

सभी दम्भरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी दूसरे के किए हुए उपकार को मानने वाले हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसी में नहीं है।

मानस कहता है कि कोई संगठन सफल है, ये तभी तक माना जा सकता है जब उस संगठन में सभी लोग शारीरिक, मानसिक और भौतिक रूप से सुखी हों। सभी लोग एक-दूसरे के साथ प्रेमपूर्वक रहते हुए आपस में सहयोग करते हों। सभी को अपना कर्तव्य पता हो और उसके अनुरूप व्यवहार करते हों। सभी ज्ञानवान और चरित्रवान हों तथा सभी कार्य और व्यवहार के कौशल से युक्त हों। किसी में अभिमान न हो और एक दूसरे के साथ कपट का व्यवहार न करते हों तथा एक दूसरे के प्रति कृतज्ञता की भावना से भरे हों।

अगर किसी संगठन में ये लक्षण हों तभी उसे हम सुखी और समृद्ध मान सकते हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और रामचरितमानस

आज के विज्ञान की सबसे बड़ी उपलब्धि कृत्रिम बुद्धिमत्ता (अर्टिफिशयल इंटेलिजेंस) के तुलसी के मानस में है अनेकों प्रसंग

प्रो. सत्यकेतु सांकृत
अधिष्ठाता, साहित्य अध्ययन पीठ एवं कुलानुशासक, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

इन दिनों अकादमिक जगत के साथ-साथ सभी बुद्धिजीवी वर्ग के बीच 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' (आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस) की धूम मची हुई है। 1955 में 'जॉन मैकार्थी' ने कम्प्यूटर विज्ञान की शाखा के रूप में विकसित इस विधि को कृत्रिम बुद्धिमत्ता का नाम दिया और इसके पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत किया कि यह एक तरह से मानवीय बुद्धि की जगह मानव निर्मित मशीनों द्वारा प्रदर्शित कृत्रिम बुद्धि है। 21वीं सदी के आरम्भिक दशकों में जिस तरह से अत्यधिक गणितीय और सांख्यिकीय मशीन लर्निंग ने अपना दबदबा बनाया उसमें, यह तकनीक अपेक्षाकृत अधिक सफल साबित हुई और इसने विशेषकर औद्योगिक और शिक्षा जगत में कई चुनौतीपूर्ण समस्याओं को हल करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अब इसे लेकर सभी प्रमुख शिक्षण संस्थानों में इसके व्यापक प्रयोग पर विचार विमर्श चल रहे हैं। अपने आरंभिक रूप में कंप्यूटर विज्ञान की शाखा के रूप में गणितीय और सांख्यिकीय गणना को सरल और सहज तरीके से अत्यंत अल्प समय में अत्यंत सटीक रुप में पूर्ण करने की इस विधि को किस तरह अन्य क्षेत्रों में भी समाजोपयोगी बनाया जाये, इसके सन्दर्भ में विचार मंथन चालू है।

इस परिप्रेक्ष्य में यह ध्यातव्य है कि इस अत्याधुनिक विधि को इस तरह से पेश करने की कोशिश की जा रही है मानो कोई ऐसी जादू की छड़ी हमें मिल गई है जो हमारी हर समस्या का समाधान पलक झपकते ही कर देगी। अभी हाल ही में एक प्रमुख दैनिक अंग्रेजी अखबार में एक खबर छपी थी कि इस विधि के उपयोग से समाज में बढ़ती आपराधिक घटनाओं पर क्षण में ही नकेल कसी जा सकती है। इसकी परिकल्पना के अनुसार अगर कोई अपराधी किसी व्यक्ति का मोबाइल फ़ोन छीन रहा होगा तो उस अपराध को अंजाम देते ही पुलिस वहाँ पहुँच जायेगी और 'चट मंगनी पट ब्याह' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए उस

अपराधी को पकड़ लेगी। हालांकि भारतीय पुलिस, जिसके कि किसी घटना के घटित होने के घंटों बाद घटना स्थल पर पहुँचने का सर्वविदित इतिहास रहा है, के सन्दर्भ में इस विधि की सफलता संदेह से परे नहीं है।

विज्ञान ने प्रायः हर असम्भव दिखने वाली चीज को संभव कर दिखाया है फिर कोई कारण नहीं कि पुलिस तंत्र को अत्याधुनिक तरीकों से लैस कर उसमें आमूलचूल परिवर्तन करते हुए उसके समाजोपयोगी बना दिये जाने की विधि को जुगुप्सापूर्ण नजरिये से देखा जाये। लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि अगर यह अपनी इस कार्यविधि को सुचारु रूप से संपन्न कर भारतीय पुलिस की परम्परावादी सिनेमाई छवि को सुधारने में सफल हो जाती है तो निश्चित ही इसकी 'जादू की छड़ी' वाली अर्थवत्ता रूपाइत हो जायेगी।

बीसवीं सदी के मध्य में बुद्धिजीवी मानसिकता से निःसृत 'कृत्रिम बौद्धिकता' की जो अनुगूँज सुनाई पडती है, उसके सन्दर्भ में प्रमाण सहित यह बात कही जा सकती है कि यह बिजली की चमक के समान अचानक से कोई दिखने वाली चीज न होकर मानव जीवन के सतत् चिंतन की एक सहज विकास यात्रा थी। जहाँ तक इस कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रश्न है यह निश्चित ही मानवीय सोच और सतत् चिंतन का एक मुकम्मल प्रयास सा दिखाई पड़ता है।

इस सन्दर्भ में भारतीय चिंतन परम्परा इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। 'रामचरितमानस' के कुछेक प्रसंगो को इस कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सन्दर्भ में देखना काफी दिलचस्प होगा। वैसे तो बाबा तुलसीदास की इस अमर कृति में इस तरह के प्रसंगों की भरमार है, पर मैं विशेष रूप से दो प्रसंगों के माध्यम से अपनी बात स्पष्ट करना चाहूँगा। इसमें पहला प्रसंग रानी कैकेयी की चेरी मंथरा से सम्बंधित है और दूसरा सीता हरण से पूर्व वन में राम सीता संवाद के उस प्रसंग से सम्बद्ध है जिसमें प्रभु श्रीराम राक्षसों के नाश किये जाने की अपनी रणनीति की चर्चा माता सीता से करते हैं।

भारतीय चिंतन धारा में प्रमुख स्थान पर विराजमान बाबा तुलसीदास ने अपनी अमर रचना में स्त्री पात्रों का किस तरह बचाव किया है, वह न केवल न्यायोचित दृष्टि की मांग ही करता है, बल्कि उनकी संवेदना की मटकी को भी उड़ेलता-सा प्रतीत होता है। बस जरूरत है उस बारीक दृष्टि की जिसकी मांग 'मानस' बड़ी संजीदगी से करता प्रतीत होता है। मानस में 'मंथरा प्रसंग' इसका ज्वलंत उदाहरण है। अपने प्रारम्भिक रूप में मंथरा प्रायः निकृष्टतम पात्र के रूप में दिखाई पड़ती है, पर जब हम बारीक दृष्टि डालते हैं तब पाते हैं कि बाबा ने बड़ी चतुराई से अपनी अद्भुत बुद्धिमता का परिचय देते हुए न केवल उसका बचाव ही किया है, बल्कि उसके सन्दर्भ में ऐसा प्रतीत होता है मानो उन्होंने उसके प्रति अपनी संवेदना की कमंडली उड़ेल दी हो। ध्यातव्य है राम का राज्याभिषेक होने वाला है। चारों तरफ बधावे बजाए जा रहे हैं। तभी देवताओं को यह चिंता होती है कि अगर राम का राज्याभिषेक हो जायेगा तो उनका वन गमन कैसे होगा और वे राक्षसों का संहार कैसे करेंगे? यहाँ वे एक रणनीति के तहत विद्या और बुद्धि की देवी सरस्वतीजी के पास जाते हैं और विनती करते हैं कि अब आप ही हमारी सहायक हो सकती हैं। आप कुछ ऐसा कीजिये कि रामचन्द्रजी राज्य त्यागकर वन को चले जायें और पूरे वन प्रांत को आततायी असुरों से मुक्ति दिलायें, ताकि देवताओं के सब कार्य सिद्ध हो सकें। सरस्वती सुरों की स्वार्थमयी बात सुनकर बहुत निराश होती हैं और कहती हैं-

ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती।।
अयो.का./11/6।।

इनका निवास तो ऊँचा है, पर इनकी करनी नीची है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते।

पर समाज कल्याण हेतु ज्ञान की देवी माता सरस्वती अयोध्या जाने का निर्णय करती हैं और वहाँ पहुँचकर अपनी योजना के क्रियान्वयन हेतु मंथरा नामक एक मंदबुद्धि पात्र का चयन करती हैं और उसे अपयश का हेतु बनाकर वहाँ से चली जाती हैं। बाबा तुलसीदास इस स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं-

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।।
अयो.का./12।।

मंथरा नाम की कैकेयी की एक मंदबुद्धि दासी थी, उसे अपयश की पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को फेरकर चली गयीं।

ध्यातव्य है कि यहाँ से माता कैकेयी की प्रिय दासी जो स्वभाव से सीधी सादी और थोड़ी कम बुद्धि की थी, उसे समाज कल्याण हेतु अपयश की पिटारी बनाकर ज्ञान की देवी चली गईं। बौद्धिक संपदा की देवी एक भोली-भाली मंथरा का ऐसा प्रतिरूप निर्मित करती हैं, जो संवेदनाशून्य होकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है और कृत्रिम बौद्धिकता की राह पर चलती हुई प्रतीत होती है। उस पर कैकेयी की डांट फटकार का भी कोई असर नहीं पड़ता है और वह ज्ञान की देवी द्वारा नियंत्रित होकर उनकी योजना अनुरूप माता कैकेयी से कुछ ऐसा कार्य करवा जाती है, जिसकी माता कैकेयी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी।

कृत्रिम बौद्धिकता द्वारा अकल्पनीय कार्य योजना की क्रियान्विति किस तरह से भारतीय ज्ञान परंपरा की थाती रही है, इसका यह जीवंत नमूना है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के तहत मशीनीवृत्ति के अनुरूप जिस तरह संवेदनाशून्य होकर अपने निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति अल्प समय में पूर्ण करने की योजना की जाती है, वह सब मंथरा के चरित्र परिवर्तन में सहज दिख पड़ता है। अपयश की पिटारी बनी मंथरा बुद्धि की देवी द्वारा इस तरह नियंत्रित होती है कि रात भर में ही सारी योजना धरी-की-धरी रह जाती है और प्रभु श्रीराम के राज्याभिषेक का कार्य त्याग कर समाज कल्याण हेतु माता सीता और अनुज लक्ष्मणजी के साथ वन को प्रस्थान कर जाते हैं। यह सब परिघटनाएँ इतनी तेजी से घटती हैं कि किसी को कुछ समझने का मौका ही नहीं मिलता है और विद्यादायिनी माँ शारदे द्वारा नियंत्रित तुलसीदास ने रामचरितमानस के इस प्रसंग की निर्मिती में बुद्धि की सामूहिकता के सन्दर्भ में अत्यंत समृद्ध बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए प्रभु श्रीराम की कथा को अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण कर नितांत समसामयिक बना दिया है।

मंथरा बिल्कुल संवेदनाशून्य होकर एक कृत्रिम मशीनी शिक्षण की तरह अत्यंत तीव्र गति से वह कार्य कर जाती है, जिसकी योजना देवताओं द्वारा बनायी गयी थी। निश्चित रूप से इसके पीछे एक ऐसी प्रज्ञता क्रियाशील थी, जिसे प्रज्ञा के समुच्चय की संज्ञा दी जा सकती है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता यंत्र अधिगम की एक ऐसी विधि है, जिसमें मनुष्य की जगह उसका प्रतिरूप, चाहे वह ज्ञान के समागम से निर्मित कोई मशीन ही क्यों न हो, के माध्यम से किसी कार्य-व्यापार की योजना पूर्ण परिशुद्धता के साथ की जा सकती है। इस अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में रामचरितमानस के प्रभु राम और माता सीता के बीच के उन संवादों को देखना कम दिलचस्प नहीं होगा, जिसमें प्रभु श्रीराम शूर्पणखा प्रसंगोपरांत सीता जी से कहते हैं कि मैं अब कुछ मनुष्य लीला करूंगा और जब तक मैं राक्षसों का समूल नाश न कर दूँ, तब तक आप अग्नि में निवास कीजिये। प्रभु श्रीराम के बोल हैं-

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला।।
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा।।
अर.का./23/1,2।।

हे प्रिये! हे सुन्दर पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली सुशीले! सुनो मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूंगा। इसलिये जब तक मैं राक्षसों का नाश करूं, तब तक तुम अग्नि में निवास करो।

प्रभु श्रीराम के मंतव्य को समझते हुए तद्नुरूप आचरण करती हुई सीताजी प्रभु के चरणों को हृदय में अंगीकार कर स्वयं को अग्नि को समर्पित करती हुई उसी में समा जाती हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि जब सीताजी अग्नि के संरक्षण में चली गईं तो कथा कैसे आगे बढ़ी और रावण ने सीताजी का हरण कैसे किया, जो अंततः प्रभु श्रीराम की अजेय अभिव्यक्ति के तहत दशानन और उसके कुनबे के नाश का कारण बना! यहाँ पर कवि ने पूरे तर्क के साथ एक ऐसा रहस्योद्घाटन किया है जो उसकी बौद्धिक प्रतिभा का सिंहावलोकन माना जा सकता है।

सीता माता की जगह उनकी प्रतिबिम्बाभिव्यक्ति की योजना के क्रियान्वयन के साये में इस प्रसंग का जैसा विषद् और चमत्कृत कर देने वाला चित्रण प्रभु श्रीराम के अनन्य भक्त गोस्वामी तुलसीदास ने किया है, वह न केवल आश्चर्यचकित करने वाला है, बल्कि भारतीय चिंतन धारा की उस ज्ञानात्मक परंपरा की विलक्षण अभिव्यक्ति भी है, जिसमें कृत्रिम बौद्धिकता के तनिक विकसित रूप की स्पष्ट झलक परिलक्षित होती है। तनिक विकसित इस परिप्रेक्ष्य में कि आज के एआई में जहां अनुभूति की संवेदना की अनुपस्थिति बुद्धिजीवियों के लिए चिंता का विषय बनी हुई है, वहीं इस ज्ञानात्मक परंपरा में इसकी उपस्थिति अपने विकसित रूप में गोचर होती है।

बौद्धिकता से लबरेज बाबा की यह अभिव्यक्ति साहित्य और विज्ञान के सामंजस्य की बेहतरीन प्रस्तुति मानी जा सकती है। बाबा के बोल द्रष्टव्य हैं-

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी।।
निज प्रतिबिंब राखी तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता।।
अर.का./23/3,4

सीताजी ने अग्निदेव के संरक्षण में जाने के पूर्व अपनी जगह अपनी ही छायामूर्ति वहां रख दी, जो उनके जैसी ही शीलवान, रूपवान और विनम्रता की प्रतिमूर्ति थी।

यह क्रिया व्यापार इतनी अगम्यता से संपन्न किया गया है कि इसकी भनक तक किसी को नहीं लगती है। गोस्वामीजी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते हुए सीता माता से उनकी छाया मूर्ति के बीच अवलोकन बिंदु का स्थानान्तारण इतनी सूक्ष्मता से किया है कि आगे की कथा कहीं बाधित भी नहीं होती है और इस परिघटना की रहस्यात्मकता भी बरकरार रहती है। अब कथा की बागडोर सीताजी से हटकर उनकी छायामूर्ति के हाथों में आ जाती है और इसके बाद जहां भी माता सीता की उपस्थिति दिखाई पड़ती है, वह दरअसल उनकी वास्तविक मौजूदगी न होकर उनके प्रतिरूप की वह छवि होती है जो आभासित होते हुए भी वास्तविकता का भ्रम पैदा करने में अद्भुत रूप से सफल होती दिखाई पड़ती है और कृत्रिम बौद्धिकता के मूलाधार का आश्चर्यजनक उदाहरण पेश करती है। जिस तरह कृत्रिम बौद्धिकता के तहत एक ऐसी मशीन का निर्माण किया जाता है कि वह मूल की जगह उसके प्रतिरूप की तरह कई मस्तिष्कों की निःसृति होकर कुछ ऐसे कार्य करे, जो न केवल समाजोन्मुख ही हो, बल्कि अपेक्षाकृत कम समय में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके, उसी तरह की आश्चर्यजनक प्रस्तुति इस प्रसंग में दिखलाई पड़ती है। सीता के अपने प्रतिबिम्ब को अपनी जगह स्थापित कर अपने-आपको अग्नि के संरक्षण में संरक्षित करने के उपरान्त मानस की कथा सीता के प्रतिरूप के माध्यम से आगे बढ़ती है। सीता हरण से लेकर रावण वध के साथ ही समस्त पृथ्वी को राक्षस विहीन करने की अपनी प्रतिज्ञा को परिणति देने वाले प्रभु श्रीराम द्वारा सीता माता की अग्नि परीक्षा का प्रसंग सीता के प्रतिबिम्ब के साथ आगे बढ़ता है। तथाकथित अग्नि परीक्षा के रूप में प्रभु श्रीराम सीता के प्रतिरूप को अग्नि को समर्पित कर उन के संरक्षण में ही सुरक्षित अपनी सीता को प्राप्त कर लेते हैं।

यह क्रियाविधि इतनी सूक्ष्मता से पूर्ण होती है कि इसका पता किसी को भी नहीं चलता है, यहाँ तक कि सदा प्रभु श्रीराम के साथ साये के रूप में रहने वाले लक्ष्मणजी को भी इसका आभास तक नही होता है। इस संदर्भ में बाबा कहते हैं-

लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।।
अर.का./23/5।।

भगवान ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्य को लक्ष्मणजी ने भी नहीं जाना।

मानस का रसिक पाठक भी इस परिवर्तन को नहीं पकड़ पाता है और लगातार इसी भ्रम में पड़कर बहुत कुछ इस प्रश्न पर विचार करने को बाध्य होता दिखायी पड़ता है कि आखिरकार ऐसी क्या परिस्थिति आ गई थी कि उनके आराध्य को, अपनी पतिव्रता पत्नी की अग्नि परीक्षा लेनी पड़ी, जबकि यथार्थ में ऐसा कुछ हुआ ही नहीं था। यह तो प्रभु श्रीराम की वह नरलीला थी, जिसके सहारे उन्होंने इस पृथ्वी को राक्षस विहीन करने की प्रतिज्ञा ली थी। बाबा तुलसीदास ने इस कथा प्रसंग के माध्यम से उस अद्भुत भौतिक ज्ञानात्मक क्षमता का परिचय दिया है जो निश्चित ही कृत्रिम बुद्धिमता की इस जटिल संरचना को उसकी परम्परागत परिणति की ओर ले जाता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता दरअसल एक ऐसी वैज्ञानिक तकनीक है, जिसमें मशीनों को इस तरह विकसित करने की कोशिश की जा रही है कि वे इंसानों द्वारा किये जाने वाले कार्य व्यापार को अपेक्षाकृत कम समय में तनिक अधिक पूर्णता के साथ संपन्न कर सकें। इन मशीनों में ऐसे कृत्रिम इंसानी दिमाग विकसित करने की कोशिश की जा रही है, जो इंसानों की तरह निर्णय ले सकें।

इसी के तहत मानवरहित गाड़ी या मानवरहित विमान की चर्चा भी इन दिनों कौतूहल का कारण बनी हुई है। मैं यहाँ एक बार पुनः 'रामचरितमानस' के उस प्रसंग की चर्चा कर भारतीय ज्ञान परम्परा और विज्ञान के अत्याधुनिक स्वरूप यानी आर्टिफीशियल इंटेलिजेंस के जुगुप्सापूर्ण अन्तःसम्बन्ध को रेखांकित कर आप सुधी जनों का ध्यान उस तरफ आकृष्ट करना चाहूँगा, जहाँ एक मानव रहित विमान की बखूबी चर्चा की गयी है। जी हाँ, मैं उस पुष्पक विमान की बात करना चाहता हूँ जिसका बाबा तुलसीदास ने 'मानस' में विविध प्रसंगों के सन्दर्भ में अत्यंत सजीव चित्रण किया है। यह वही पुष्पक विमान है, जिसे रावण ने कुबेर को परास्त कर अपने कब्जे में कर लिया था-

एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा।।
बा.का./178ख/8।।

प्रभु की बात सुनते ही विभीषण ने वही पुष्पक विमान प्रभु को उपलब्ध कराया जो लंका का राजसिंहासन प्राप्त करने के उपरान्त उनके नियंत्रण में आ गया था।

अयोध्या पहुँचकर प्रभु श्रीराम ने पुष्पक विमान से उतरकर उसे निर्देशित किया कि वह अपने स्वामी कुबेर के पास वापस लौट जाये। श्रीराम की प्रेरणा से वह सहर्ष अपने स्वामी के पास लौट आया।

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु।।
उ.का./4ख।।

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामीजी ने एक ऐसे चालक रहित विमान की चर्चा की है जो केवल दिशा-निर्देश का पालन करते हुए अविलम्ब अपने गंतव्य स्थान पर सुरक्षित पहुँच जाता है। ईश्वर प्रदत्त बुद्धि से निर्मित कृत्रिम बुद्धि का यह चमत्कृत कर देने वाला उदाहरण हमारी समृद्ध परम्परा का ही द्योतक है।

परम्परा की यह परिपूर्णता ही आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता के रूप में दिखलाई दे रही है। आधुनिक अर्थ में कृत्रिम बुद्धिमत्ता मशीन सीखने की एक ऐसी विधि है, जिसमें मशीनों की इस प्रकार से निर्मिती की जाती है कि वे मानव बुद्धि के समान काम करने लगें। इसके तहत उन्हें इस प्रकार की बुद्धि प्रदान की जा रही है कि वे इंसानों की तरह निर्णय लेने में तो सक्षम हों ही साथ ही अपेक्षाकृत कम समय में अपने लक्ष्य को भी प्राप्त कर लें। यहाँ परम्परा और आधुनिकता के सामंजस्य के रूप में कृत्रिम बुद्धिमत्ता को देखना लाजमी होगा। **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने अपने **'निबंध परम्परा और आधुनिकता'** में कहा है- 'परम्परा मनुष्य को उसके परिपूर्ण रूप में समझने में सहायता करती है। आधुनिकता उसके बिना संभव नहीं है। परम्परा आधुनिकता को आधार देती है, उसे शुष्क और नीरस बुद्धिविलास बनने से बचाती है, उसके प्रयासों को अर्थ देती है, उसे असंयत और विश्रृंखल और उन्माद से बचाती है। ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं, परस्पर पूरक हैं।' एक नीति वाक्य, **'चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान** का सहारा लेते हुए द्विवेदीजी ने यह स्पष्ट किया है कि बुद्धिमान आदमी एक पैर से खड़ा रहता है, दूसरे से चलता है। यह केवल व्यक्ति सत्य नहीं है, सामाजिक सन्दर्भ में भी यही सत्य है। खड़ा पैर परम्परा है, चलता पैर आधुनिकता। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध खोजना बहुत कठिन नहीं है। एक के बिना दूसरे की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आज का 'एआई' (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) किस तरह अपनी परम्परा का आँचल थाम अपने को और भी उपयोगी एवं मानव समाज हेतु कल्याणकारी बना सकता है, इसका स्पष्ट स्वरूप 'रामचरितमानस' में उभरकर सामने आया है।

साहित्य और विज्ञान का सबंध जुगुप्सापूर्ण है। साहित्य जिसकी कल्पना करता है, उसे ही विज्ञान पूर्णता प्रदान करता है। आज हम आर्टिफीशियल इन्टेलिजेंस के युग में जिस तरह से मानव निर्देशित विमान को साकार होते हुए देख रहे हैं, उसकी चर्चा बाबा तुलसीदास ने पुष्पक विमान के रूप में रामचरितमानस में लगभग 500 वर्ष पूर्व ही कर दी थी।

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सबु कोई।।
सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे ता पर।।
ल.का./118ग/3,4।।

विमान के चलते समय बड़ा शोर हो रहा है। सब कोई श्रीरघुबीर की जय कह रहे हैं। विमान में एक अत्यंत ऊँचा मनोहर सिंहासन है। उस पर सीताजी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हो गये।

साहित्य और विज्ञान का यह सम्बन्ध अनायास नहीं है, बल्कि सही अर्थों में कल्पना से यथार्थ की यात्रा ही साहित्य की विज्ञान में परिणति है।

श्रीरामचरितमानस में राजनय (डिप्लोमेसी)

मानस में है जीवन में सफलता यानि समझी-बूझी राजनय युक्तियाँ

डॉ प्रदीप कुमार सिंघल, राष्ट्रीय अध्यक्ष संस्कृति संज्ञान
बासुदेव गर्ग, वरिष्ठ सलाहकार, संस्कृति संज्ञान
प्रमोद कुमार मिश्रा, राष्ट्रीय कोषाध्यक्ष, संस्कृति संज्ञान

राजनय यानी सही समय पर सही निर्णय एवं विचारों द्वारा लोगों को अपने प्रभाव में लेना ताकि उनके द्वारा राज्य के नियम एवं सिद्धांतों के अनुसार कार्य कराया जा सके। रामचरितमानस में तुलसीदास ने अनेकों स्थान पर इस तरह के उदाहरण दिए हैं, जो लोगों को राजनय सिद्धांतों का बहुत अच्छी तरह से प्रशिक्षण देते हैं, इससे उनके चरित्र और विचारों में सुंदरता आएगी।

विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को जनकपुरी में सीताजी के स्वयंवर में ले जाते हैं, वहाँ पर राम परशुराम द्वारा स्थापित शिवजी के धनुष को तोड़ देते हैं। उस समय विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण ने परशुराम के आने के बाद जो संवाद की नीति बनाई वह बहुत ही अधिक प्रभावशाली है। इससे न केवल परशुरामजी का क्रोध शांत हुआ वरन अंत में वह राम और लक्ष्मण को आशीर्वाद देकर गए। लक्ष्मण ने सबसे छोटा होने के कारण उग्र लेकिन सुशील व्यवहार किया, विश्वामित्र और राम ने संयम और अनुशासित व्यवहार का उदाहरण दिया। बालकांड में वर्णित यह पूरा संवाद एक उत्तम श्रेणी के राजनय (डिप्लोमेसी) को प्रदर्शित करता है।

श्रीराम का शिवधनुष तोड़ना

धनुष टूटने के बाद परशुराम आते हैं और जनक से पूछते हैं।

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा।।
बा.का./269/3।।

अत्यंत क्रोध में भरकर वे कठोर वचन बोले-रे मूर्ख जनक! बता, धनुष किसने तोड़ा?

श्रीरामचंद्रजी सब लोगों को भयभीत देख कर और सीताजी को डरी हुई जानकर बोले-

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा।।
बा.का./270/1।।

हे नाथ! शिवजी के धनुष को तोड़ने वाला आपका कोई एक दास ही होगा।

तब परशुरामजी बोले-

राम-लक्ष्मण-परशुराम संवाद

सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।।
बा.का./270/4।।

हे राम! सुनो, जिसने शिवजी के धनुष को तोड़ा है, वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है।

तब लक्ष्मणजी मुस्कुराए और परशुरामजी का अपमान करते हुए बोले

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं।।
बा.का./270/7।।

हे गोसाईं! लड़कपन में बहुत-सी धनुहियाँ तोड़ डालीं। किन्तु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया।

तब परशुरामजी ने कुपित होकर कहा-

धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार।।
बा.का./दोहा 271।।

सारे संसार में विख्यात शिवजी का यह धनुष क्या धनुही के समान है?

लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा-

छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू।।
बा.का./271/3।।

फिर यह तो छूते ही टूट गया, इसमें रघुनाथजी का भी कोई दोष नहीं है। मुनि! आप बिना कारण के क्यों क्रोध करते हैं?

परशुरामजी ने कहा-

गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।।
बा.का./दोहा 272।।

मेरा फरसा बड़ा भयानक है, यह गर्भों के बच्चों का भी नाश करने वाला है।

लक्ष्मणजी हंसकर कोमल वाणी से बोले-

पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू।।
बा.का./272/2।।

बार बार मुझे कुल्हाड़ी दिखाते हैं। फूँक से पहाड़ उड़ाना चाहते हैं।

लक्ष्मणजी ने फिर कहा-

सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई।।
बधें पापु अपकीरति हारें। मारतहूँ पा परिअ तुम्हारें।।
बा.का./272/6,7।।

देवता, ब्राह्मण, भगवान के भक्त और गौ-इन पर हमारे कुल में वीरता नहीं दिखायी जाती। क्योंकि इन्हें मारने से पाप लगता है और इनसे हार जाने पर अपकीर्ति होती है।

परशुरामजी क्रोध में विश्वामित्र से कहते हैं-

कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु। कुटिल कालबस निज कुल घालकु।।
बा.का./273/1।।

हे विश्वामित्र! सुनो, यह बालक बड़ा कुबुद्धि और कुटिल है, काल के वश होकर यह अपने कुल का घातक बन रहा है।

लक्ष्मणजी ने कहा-

अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।।
बा.का./273/6।।

आपने अपने ही मुँह से अपनी करनी अनेकों बार बहुत प्रकार से वर्णन की है।

सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा।।
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बधजोगू।।
बा.का./274/2,3।।

लक्ष्मणजी के कठोर वचन सुनते ही परशुरामजी ने अपने भयानक फरसे को सुधारकर हाथ में ले लिया और बोले- अब लोग मुझे दोष न दें। यह कठोर बोलने वाला बालक मारे जाने के ही योग्य है।

विश्वामित्र ने कहा-

कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू।।
बा.का./274/5।।

अपराध क्षमा कीजिये। बालकों के दोष और गुण को साधु लोग नहीं गिनते।

परशुरामजी ने कहा-

उतर देत छोड़उँ बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें।।
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें।।

बा.का./274/7,8।।

उत्तर दे रहा है। इतने पर भी मैं इसे बिना मारे छोड़ रहा हूँ। सो हे विश्वामित्र! केवल तुम्हारे शील से। नहीं तो इसे इस कठोर कुठार से काटकर थोड़े ही परिश्रम से गुरु से उऋण हो जाता।

माता पितहि उरिन भए नीकें। गुर रिनु रहा सोचु बड़ जी कें।।
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा।।

बा.का./275/2,3।।

लक्ष्मणजी ने कहा-हे मुनि! आपके शील को कौन नहीं जानता? वह संसार भर में प्रसिद्ध है। आप माता-पिता से तो अच्छी तरह उऋण हो ही गये, अब गुरु का ऋण रहा, जिसका जी में बड़ा सोच लगा है। वह मानो हमारे ही मत्थे काढ़ा था। बहुत दिन बीत गये, इससे ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े।।
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे।।

बा.का./275/7,8।।

आपको कभी रणधीर बलवान वीर नहीं मिले। हे ब्राह्मण देवता! आप घर ही में बड़े हैं। यह सुनकर 'अनुचित है, अनुचित है' कहकर सब लोग पुकार उठे। तब श्रीरघुनाथजी ने इशारे से लक्ष्मणजी को रोक दिया।

परशुरामजी के क्रोध रूपी अग्नि को बढ़ते देखकर श्रीरामजी जल के समान शीतल वचन बोले-

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिअ न कोहू।।
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुर पितु मातु मोद मन भरहीं।।

बा.का./276/1,3।।

हे नाथ! बालक पर कृपा कीजिये। इस सीधे और दुधमुंहें बच्चे पर क्रोध न कीजिये। बालक यदि कुछ चपलता भी करते हैं, तो गुरु, पिता और माता मन में आनन्द से भर जाते हैं।

राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने।।

बा.का./276/5।।

श्रीरामचंद्रजी के वचन सुनकर परशुरामजी कुछ ठंडे पड़े। इतने में लक्ष्मणजी कुछ कहकर फिर मुसकरा दिये।

लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल।।

बा.का./277।।

लक्ष्मणजी ने हंसकर कहा- हे मुनि! सुनिये, क्रोध पाप का मूल है, जिसके वश में होकर मनुष्य अनुचित कर्म कर बैठते हैं और विश्वभर के प्रतिकूल चलते हैं।

भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी। रिस तन जरइ होइ बल हानी।।

बा.का./277/6।।

लक्ष्मणजी की निर्भय वाणी सुन-सुनकर परशुरामजी का शरीर क्रोध से जला जा रहा है और उनके बल की हानि हो रही है।

बोले रामहि देइ निहोरा। बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा।।

बा.का./277/7।।

तब श्रीरामचंद्रजी पर एहसान जनाकर परशुरामजी बोले-तेरा छोटा भाई समझकर मैं इसे बचा रहा हूँ।

श्रीराम दोनों हाथ जोड़कर अत्यंत विनय के साथ बोले-

सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचनु करिअ नहिं काना।।
बररै बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ।।

बा.का./278/2,3।।

सुनिये, आप तो स्वभाव से ही सुजान हैं। आप बालक के वचन पर कान न कीजिये। बर्रै और बालक का एक स्वभाव है। संतजन इन्हें कभी दोष नहीं लगाते।

परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु।।

बा.का./280।।

तब परशुरामजी हृदय में अत्यंत क्रोध भरकर श्रीरामजी से बोले-अरे शठ! तू शिवजी का धनुष तोड़कर उल्टा हमीं को ज्ञान सिखाता है।

छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारउँ तोही।।

बा.का./280/3।।

अरे शिवद्रोही! छल त्यागकर मुझसे युद्ध कर। नहीं तो भाई सहित तुझे मार डालूँगा।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगें यह सीसा।।
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी।।

बा.का./280/7,8।।

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-हे मुनीश्वर! क्रोध छोड़िये। आपके हाथ में कुठार है और मेरा यह सिर आगे है। जिस प्रकार आपका क्रोध जाय, हे स्वामी! वही कीजिये। मुझे अपना अनुचर जानिये।

नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा।।

बा.का./281/2।।

वह आपका नाम तो जानता था, पर उसने आपको पहचाना नहीं। अपने वंश के स्वभाव के अनुसार उसने उत्तर दिया।

जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं।।
बा.का./281/3।।

यदि आप मुनि की तरह आते, तो हे स्वामी! बालक आपके चरणों की धूलि सिर पर रखता।

परशुराम ने कहा-

भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा।।
बा.का./282/6।।

धनुष तोड़ डाला, इससे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया है। ऐसा अहंकार है, मानो संसार को जीतकर खड़ा है।

राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी।।
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना।।
बा.का./282/7,8।।

श्रीरामचंद्रजी ने कहा- हे मुनि! विचारकर, बोलिये। आपका क्रोध बहुत बड़ा है। और मेरी भूल बहुत छोटी है। पुराना धनुष था, छूते ही टूट गया। मैं किस कारण अभिमान करुँ?

जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ।।
बा.का./283।।

हे भृगुनाथ! यदि हम सचमुच ब्राह्मण कहकर निरादर करते हैं तो यह सत्य सुनिये, फिर संसार में ऐसा कौन योद्धा है जिसे हम डर के मारे मस्तक नवायें?

बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई।।
बा.का./283/5।।

ब्राह्मणवंश की ऐसी ही प्रभुता है कि जो आपसे डरता है, वह सबसे निर्भय हो जाता है। श्रीराम के कोमल और रहस्यपूर्ण वचन सुनकर परशुरामजी की बुद्धि के पर्दे खुल गए और वह बोले-

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू।।
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ।।
बा.का./283/7,8।।

परशुरामजी ने कहा-हे राम! हे लक्ष्मीपति! धनुष को हाथ में लीजिये और इसे खींचिये, जिससे मेरा संदेह मिट जाय। परशुरामजी धनुष देने लगे, तब वह आप ही चला गया। तब परशुरामजी के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ।

जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात।।
बा.का./284।।

तब उन्होंने श्रीरामजी का प्रभाव जाना, उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। वे हाथ जोड़कर वचन बोले-प्रेम उनके हृदय में समाता न था।

अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता।।
बा.का./284/6।।

मैंने अनजाने में बहुत से अनुचित वचन कहे। हे क्षमा के मंदिर दोनों भाई! मुझे क्षमा कीजिये।

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतु।।
बा.का./284/7।।

हे रघुकुल के पताकास्वरूप श्रीरामजी! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। ऐसा कहकर पशुरामजी तप के लिये वन को चले गये।

राजनीतिक सिद्धांतों को प्रभावशाली ढंग से अमल में लाकर विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण ने न केवल परशुरामजी को प्रभावित किया वरन दुनिया भर के सभी राजाओं एवं लोगों पर अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ी।

सुग्रीव से मित्रता

श्रीराम का सुग्रीव से मिलना, मित्रता करना, बालि का वध, सुग्रीव का राज्याभिषेक, अंगद का युवराज बनना राजनय का एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। किष्किंधाकांड में तुलसीदास ने इसे बहुत ही सुंदरता से प्रस्तुत किया है।

सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर अपने मंत्रियों के साथ रहते हैं, वहाँ पर श्रीराम को देखकर वह भयभीत होकर हनुमान से बोले-

अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना।।
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई।।
कि.का./श्लोक 2/3,4।।

सुग्रीव अत्यंत भयभीत होकर बोले-हे हनुमान! सुनो, ये दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके जाकर देखो। अपने हृदय में उनकी यथार्थ बात जानकर मुझे इशारे से समझाकर कह देना।।

हनुमानजी ने राम और लक्ष्मण से पूछा-

मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता।।
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ।।
कि.का./श्लोक 2/9,10।।

मन को हरण करने वाले आपके सुन्दर, कोमल अंग हैं, और आप वन के दुःसह धूप और वायु को सह रहे हैं। क्या आप ब्रह्मा,

विष्णु, महेश-इन तीन देवताओं में से कोई हैं, या आप दोनों नर और नारायण हैं।

श्रीराम ने कहा-

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए।।
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई।।
कि.का./1/1,2।।

श्रीरामचंद्रजी ने कहा-हम कोसलराज दशरथ के पुत्र हैं और पिता का वचन मानकर वन आये हैं। हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं, हम दोनों भाई हैं। हमारे साथ सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी।

इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।।
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई।।
कि.का./1/3,4।।

यहां राक्षस ने जानकी को हर लिया। हे ब्राह्मण! हम उसे ही खोजते फिरते हैं। हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया। अब हे ब्राह्मण! अपनी कथा समझाकर कहिये।

हनुमानजी ने मधुरता से बोला-

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।।
कि.का./1/5।।

प्रभु को पहचानकर हनुमानजी उनके चरण पकड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े।

तव माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना।।
कि.का./1/9।।

मैं तो आपकी माया के वश भूला फिरता हूँ, इसी से मैंने अपने स्वामी को नहीं पहचाना।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।।
कि.का./2/5।।

ऐसा कहकर हनुमानजी अकुलाकर प्रभु के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया।

श्रीराम ने कहा-

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना।।
कि.का./2/7।।

हे कपि! सुनो मन में ग्लानि मत मानना। तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो।

हनुमानजी ने कहा-

नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई।।
कि.का./3/2।।

हे नाथ! इस पर्वत पर वानरराज सुग्रीव रहता है, वह आपका दास है।

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे।।
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि।।
कि.का./3/3,4।।

हे नाथ! उससे मित्रता कीजिये और उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिये। वह सीताजी की खोज करावेगा और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानरों को भेजेगा।

हनुमानजी राम को सुग्रीव के पास ले गए।

सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा।।
कपि कर मन विचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती।।
कि.का./3/7,8।।

सुग्रीव चरणों में मस्तक नवाकर आदरसहित मिले। श्रीरघुनाथजी भी छोटे भाई सहित उनसे गले लगकर मिले। सुग्रीव मन में इस प्रकार सोच रहे हैं कि हे विधाता! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे?

हनुमानजी ने श्रीराम और सुग्रीव की मित्रता कराई।

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।।
कि.का./4।।

तब हनुमानजी ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि को साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी।

सुग्रीव ने श्रीराम को अपनी कथा सुनाई।

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई।।
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ।।
कि.का./5/1,2।।

हे नाथ! बालि और मैं दो भाई हैं। हम दोनों में ऐसी प्रीति थी कि वर्णन नहीं की जा सकती। हे प्रभु! मय दानव का एक पुत्र था, उसका नाम मायावी था। एक बार वह हमारे गांव में आया।

अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा।।
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा।।
कि.का./5/3,4।।

उसने आधी रात को नगर के फाटक पर आकर पुकारा। बालि शत्रु के बल (ललकार) को सह नहीं सका। वह दौड़ा, उसे देखकर मायावी भागा। मैं भी भाई के संग लगा चला गया।

गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई।।
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा।।
कि.का./5/5,6।।

वह मायावी एक पर्वत की गुफा में जा घुसा। तब बालि ने मुझे समझाकर कहा-तुम एक पखवाड़े तक मेरी बाट देखना। यदि मैं उतने दिनों में न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया।

बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई।।
कि.का./5/8।।

मैंने समझा उसने बालि को मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा। इसलिये मैं वहाँ एक शिला लगाकर भाग आया।

मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं।।
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा।।
कि.का./5/9,10।।

मंत्रियों ने नगर को बिना स्वामी का देखा, तो मुझको जबर्दस्ती राज्य दे दिया। बालि उसे मारकर घर आ गया। मुझे देखकर उसने जी में भेद बढ़ाया। उसने समझा कि यह राज्य के लोभ से गुफा के द्वार पर शिला दे आया था, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ और यहाँ आकर राजा बन बैठा।

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी।।
कि.का./5/11।।

उसने मुझे शत्रु के समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्री को भी छीन लिया।

राम ने कहा हे सुग्रीव मैं बाली को एक ही बाण से मार डालूँगा ।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।।
कि.का./6/1।।

जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है।

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें।।
कि.का./6/10।।

हे सखा! मेरे बल पर अब तुम चिन्ता छोड़ दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारे काम आऊँगा।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा।।
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए।।
कि.का./6/11,12।।

सुग्रीव ने कहा-हे रघुवीर! सुनिये, बालि महान बलवान और उत्यंत रणधीर है। फिर सुग्रीव ने श्रीरामजी को दुन्दुभि राक्षस की हड्डियां और ताल के वृक्ष दिखलाये। श्रीरघुनाथजी ने उन्हें बिना ही परिश्रम के ढहा दिया।

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती।।
कि.का./6/13।।

श्रीरामजी का अपरिमित बल देखकर सुग्रीव की प्रीति बढ़ गयी और उन्हें विश्वास हो गया कि ये बालि का वध अवश्य करेंगे।

तब श्रीराम ने कहा-

जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई।।
कि.का./6/23।।

तुमने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है, परंतु हे सखा! मेरा वचन मिथ्या नहीं होता।

तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा।।
कि.का./6/26।।

तब श्रीरघुनाथजी ने सुग्रीव को बालि के पास भेजा। वह श्रीरामजी का बल पाकर बालि के निकट जाकर गरजा।

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ।।
कि.का./7।।

बालि ने कहा-हे भीरु प्रिये! सुनो, श्रीरघुनाथजी समदर्शी हैं। जो कदाचित वे मुझे मारेंगे ही तो मैं सनाथ हो जाऊँगा।

भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा।।
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा।।
कि.का./7/2,3।।

बालि ने सुग्रीव को बहुत धमकाया और घूँसा मारकर बड़े जोर से गरजा। तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा। घूँसे की चोट उसे वज्र के समान लगी।

सुग्रीव श्रीराम से बोला-

मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला।।
कि.का./7/4।।

हे कृपालु रघुवीर! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं, काल है।

एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ।।
कि.का./7/5।।

तुम दोनों भाइयों का एक-सा ही रूप है। इसी भ्रम से मैंने उसको नहीं मारा।

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला।।
कि.का./7/7।।

तब श्रीरामजी ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर भेजा।

बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि।।
कि.का./8।।

सुग्रीव ने बहुत से छल-बल किये, किंतु भय मानकर हृदय से हार गया। तब श्रीरामजी ने तानकर बालि के हृदय में बाण मारा।

बालि ने राम से कहा-

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं।।
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।।
कि.का./8/5,6।।

हे गोसाईं! आपने धर्म की रक्षा के लिये अवतार लिया है और मुझे व्याध की तरह मारा? मैं बैरी और सुग्रीव प्यारा? हे नाथ! किस दोष से आपने मुझे मारा?

राम ने बालि से कहा-

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।।
कि.का./8/7,8।।

हे मूर्ख! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या, ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता।

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।।
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी।।
8/9,10।।

हे मूढ़! तुझे अत्यंत अभिमान है। तूने अपनी स्त्री की सीख पर भी कान नहीं दिया। सुग्रीव को मेरी भुजाओं के बल का आश्रित जानकर भी अरे अधम अभिमानी! तूने उसको मारना चाहा।

बालि राम से-

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।।
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिऐ।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिऐ।।
कि.का./9/छं.2।।

हे नाथ! अब मुझ पर दया दृष्टि कीजिये और मैं जो वर मांगता हूं उसे दीजिये। मैं कर्मवश जिस योनि में जन्म लूँ, वहीं श्रीरामजी के चरणों में प्रेम करूँ। हे कल्याणप्रद प्रभो। यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बल में मेरे ही समान है, इसे स्वीकार कीजिये और हे देवता और मनुष्यों के नाथ। बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइये।

नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा।।
कि.का./10/2।।

बालि की स्त्री तारा अनेक प्रकार से विलाप करने लगी। उसके बाल बिखरे हुए हैं और देह की सँभाल नहीं है।

राम तारा से-

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया।।
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।
कि.का./10/3,4।।

तारा को व्याकुल देखकर श्रीरघुनाथजी ने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया हर ली। पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पाँच तत्वों से यह अत्यंत अधम शरीर रचा गया है।

प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।।
उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी।।
कि.का./10/5,6।।

वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है और जीव नित्य है। फिर तुम किसके लिये रो रही हो? जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान के चरणों लगी और उसने परम भक्ति का वर माँग लिया।

लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज।।
कि.का./11।।

लक्ष्मणजी ने तुरंत ही सब नगरवासियों को और ब्राह्मणों के समाज को बुला लिया और सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज पद दिया।

सुग्रीव को किष्किंधा का राजा और अंगद को युवराज पद देकर पूरे किष्किंधा राज्य को अपने आधिपत्य में लिया। बालि रावण का मित्र था, उसके वध से रावण की शक्ति को कम किया और अपने सैन्य बल को बढ़ाया।

हनुमान का सीता की खोज में लंका प्रस्थान

हनुमानजी रामजी का दूत बनकर लंका जाते हैं। वहाँ योजनानुसार उन्हें रावण के ऐसे करीबी व्यक्ति की, जो उसके समस्त भेद जानता हो, तलाश करनी थी। रावण के महल में पहुँचकर उन्हें ज्ञात हुआ कि विभीषण ऐसा व्यक्ति हो सकता है, तब विभीषण को प्रेरित कर उन्होंने अपने विश्वास में लिया। सुन्दरकाण्ड में इसका बहुत ही सुंदर वर्णन मिलता है।

लंका पहुँचने पर हनुमानजी रावण के महल में जाते हैं, वहाँ उन्हें एक सुंदर महल दिखाई दिया। वहां भगवान का एक अलग मंदिर बना हुआ था।

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ।।
सु.का./5।।

वह महल श्रीरामजी के आयुध के चिन्हों से अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसी के वृक्ष समूहों को देखकर कपिराज श्रीहनुमानजी हर्षित हुए।

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
सु.का./5/1।।

लंका तो राक्षसों के समूह का निवासस्थान है। यहाँ सज्जन का निवास कहाँ?

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए।।
सु.का./5/5

ब्राह्मण का रूप धरकर हनुमानजी ने उन्हें वचन सुनाये। सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आये।

विभीषण ने प्रणाम करके कुशल पूछी हे, ब्राह्मण देव! अपनी कथा समझाकर कहिए।

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई।।
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी।।
सु.का./5/7,8।।

क्या आप हरिभक्तों में से कोई हैं? क्योंकि आपको देखकर मेरे हृदय में अत्यंत प्रेम उमड़ रहा है। अथवा क्या आप दीनों से प्रेम करने वाले स्वयं श्रीरामजी ही हैं, जो मुझे बड़भागी बनाने आये हैं?

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम।।
सु.का./6।।

तब हनुमानजी ने श्रीरामचंद्रजी की सारी कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनों के शरीर पुलकित हो गये और श्रीरामजी के गुण समूहों का स्मरण करके दोनों के मन मग्न हो गये।

विभीषण संवाद-

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर।।
सु.का./7।।

हे सखा! सुनिये, मैं ऐसा अधम हूँ, पर श्रीरामजी ने तो मुझ पर भी कृपा ही की है। भगवान के गुणों का स्मरण करके हनुमानजी के दोनों नेत्रों में जल भर आया।

हनुमान संवाद-

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता।।
सु.का./7/4।।

तब हनुमानजी ने कहा-हे भाई! सुनो, मैं जानकी माता को

देखना चाहता हूँ।

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई।।
करि सोई रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ।।
सु.का./7/5,6।।

विभीषणजी ने सब युक्तियाँ कह सुनायीं। तब हनुमानजी विदा लेकर चले। फिर वही रूप धरकर वहाँ गये, जहाँ अशोक वन में सीताजी रहती थीं।

इस तरह हनुमानजी ने विभीषण का विश्वास जीता। यह है राजनय का एक सिद्धांत।

हनुमानजी सीता से मिलने अशोक वाटिका पहुँचे और सीताजी से कहा-

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई।।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा।।
सु.का./15/3,4।।

हे माता मैं आपको अभी यहाँ से लिवा जाऊँ, पर श्रीरामचंद्रजी की शपथ है, मुझे प्रभु की आज्ञा नहीं है। हे माता! कुछ दिन और धीरज धरो। श्रीरामचंद्रजी वानरों सहित यहाँ आवेंगे।

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं।।
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना।।
सु.का./15/5,6।।

और राक्षसों को मारकर आपको ले जायेंगे। नारद आदि तीनों लोकों में उनका यश गावेंगे। हे पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान योद्धा हैं।

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा।।
सु.का./15/7।।

अतः मेरे हृदय में बड़ा भारी संदेह होता है। यह सुनकर हनुमानजी ने अपना शरीर प्रकट किया।

सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ।।
सु.का./15/9।।

तब सीताजी के मन में विश्वास हुआ। हनुमानजी ने फिर छोटा रूप धारण कर लिया।

इस तरह हनुमानजी ने सीताजी को प्रेरित किया और विश्वास दिलाया-यह भी राजनय का एक सिद्धांत है।

रावण दरबार में हनुमानजी को मारने का आदेश देता है तब विभीषण हनुमानजी का बचाव करते हुए कहते हैं-

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता।।
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई।।
सु.का./23/7,8।।

उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावण से कहा कि दूत को मारना नहीं चाहिये, यह नीति के विरूद्ध है। हे गोसाई! कोई दूसरा दण्ड दिया जाय। सबने कहा-भाई! यह सलाह उत्तम है।

हनुमानजी ने फिर विभीषण को अपने विश्वास में लिया।

जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं।।
सु.का./25/6।।

हनुमानजी ने एक ही क्षण में सारा नगर जला डाला। एक विभीषण का घर नहीं जलाया।

हनुमानजी ने लंका को जलाकर लंकावासियों में भय उत्पन्न कर उनका मनोबल तोड़ा।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका।।
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा।।
सु.का./35/1,2।।

वहाँ जबसे हनुमानजी लंका को जलाकर गये, तबसे राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने-अपने घरों में सब विचार करते हैं कि अब राक्षसकुल की रक्षा नहीं है।

हनुमानजी ने श्रेष्ठ राजनय नीति द्वारा विभीषण को अपने विश्वास में लिया, सीताजी का मनोबल बढ़ाया, रावण एवं लंका की प्रजा के दिलोदिमाग पर राम के बल एवं शौर्य का मनोवैज्ञानिक भय उत्पन्न किया।

विभीषण का राम की शरण में आना

विभीषण ने लंकाहित की बात रावण से कही-

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार।।
सु.का./40।।

हे तात! श्रीरामजी को सीताजी दे दीजिये, जिसमें आपका अहित न हो।

बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषण नीति बखानी।।
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई।।
सु.का./40/1,2।।

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।
सु.का./40/5,6।।

अब मृत्यु तेरे निकट आ गयी है। रावण क्रोधित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट! मेरे नगर में रहकर प्रेम करता है तपस्वियों पर।

विभीषण ने रावण से कहा-

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा।
रामु भजें हित नाथ तुम्हारा।।
सु.का./40/8।।

आप मेरे पिता के समान हैं, मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया, परन्तु हे नाथ! आपका भला श्रीरामजी को भजने में ही है।

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि।।
सु.का./41।।

श्रीरामजी सत्यसंकल्प एवं प्रभु हैं और तुम्हारी सभा काल के वश है। अतः मैं अब श्रीरघुवीर की शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना।

यह विभीषण की सोची समझी राजनीति थी, इस तरह वह रावण से अलग हो गया और राम की शरण में चला गया क्योंकि उसे पता था कि रावण की मृत्यु के बाद राम उसे लंका का राजा बनाएंगे।

विभीषण रामजी के पास पहुँचा। सुग्रीव राम के पास पहुँच कर सूचना देते हैं-

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई।।
सु.का./42/4।।

सुग्रीव ने रामजी के पास जाकर कहा-हे रघुनाथजी! सुनिये, रावण का भाई आपसे मिलने आया है।

राम ने सुग्रीव से कहा। हे मित्र तुम्हारी विभीषण के बारे में क्या राय है।

जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया।।
सु.का./42/6।।

वानरराज सुग्रीव ने कहा-हे महाराज! सुनिये, राक्षसों की माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलने वाला न जाने किस कारण आया है।

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा।।
सु.का./42/7।।

जान पड़ता है, यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है, इसलिये मुझे यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रखा जाय।

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी।।
सु.का./42/8।।

श्रीरामजी ने कहा-हे मित्र! तुमने नीति तो अच्छी विचारी! परन्तु मेरा प्रण तो है शरणागत के भय को हर लेना।

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि।।
सु.का./43।।

श्रीरामजी फिर बोले-जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग कर देते हैं, वे पामर (क्षुद्र) हैं, पाप से भरे हुए हैं, उन्हें देखने में भी पाप लगता है।

विभीषण ने कहा! हे नाथ मैं! दशमुख रावण का भाई हूँ। मेरा जन्म राक्षस कुल में हुआ है। हे दुखियों के दुःख दूर करने वाले और शरणागत को सुख देने वाले श्री रघुवीर! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। राम ने उन्हें ऐसा कहकर दंडवत करते देखा तो वे हर्षित होकर तुरन्त उठे।

दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा।।
सु.का./45/2।।

विभीषणजी के दीन वचन सुनने पर प्रभु के मन को बहुत ही भाये। उन्होंने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उनको हृदय से लगा लिया।

खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती।।
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।।
सु.का./45/5,6।।

दिन-रात दुष्टों की मण्डली में बसते हो। हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है? मैं तुम्हारी सब रीति जानता हूँ। तुम अत्यंत नीतिनिपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती।

राम संवाद

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें।।
सु.का./48/1।।

हे लंकापति! सुनो, तुम्हारे अंदर उपर्युक्त सब गुण हैं। इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय हो।

अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा।।
सु.का./48/10।।

ऐसा कहकर श्रीरामजी ने उनको राजतिलक कर दिया। आकाश से पुष्पों की अपार वृष्टि हुई।

राजनीति में शत्रु के निकटतम सहयोगी को अपने पक्ष में लेना एक बहुत बड़ी राजनयिक सफलता है। तुलसीदास ने इसे इस तरह वर्णित किया है।

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ।।
सु.का./49ख।।

शिवजी ने जो संपत्ति रावण को दसों सिरों की बलि देने पर दी थी, वही संपत्ति श्रीरघुनाथजी ने विभीषण को बहुत सकुचते हुए दी।

श्रीराम ने विभीषण का राजतिलक करके लंका में यह संदेश दे दिया कि रावण की मृत्यु के बाद विभीषण लंका का राजा बनेगा ताकि लंका में विभीषण के समर्थकों से उन्हें पूरी सहायता और सहयोग मिले, विभीषण को भी इससे पूरा विश्वास हो गया कि रावण की मृत्यु के बाद वह राजा बनेगा इसलिए उसने भी पूरे जी-जान से राम की सहायता की। यह है राजनय का अचूक सिद्धांत।

रामचरितमानस में राजनय के ऐसे बहुत से प्रसंग है, जो लोग इसमें दक्षता प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें रामचरितमानस अवश्य पढ़नी चाहिए ताकि वे अपने जीवन के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकें।

हर घर मानस को पहुंचाओ
रोग शोक भय दूर भगाओ

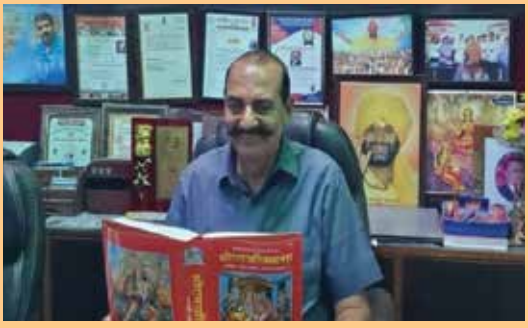

प्रवीण भंडारी

विनोद शर्मा

मानस में संतों और असंतों के लक्षणों का उल्लेख

श्रीरामचरितमानस में संत और असंत व्यक्तियों के लक्षण का सुन्दर विश्लेषण अच्छे व बुरे लोगों की पहचान करने में सक्षम - परिवार व समाज के उत्थान में अत्यंत सहायक

रजनीश खरे
सहायक प्राध्यापक, जीएल बजाज इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट, ग्रेटर नोएडा

समाज में संत और असंत दोनों ही प्रकृति के लोग रहते हैं। चेहरे देखकर उनको पहचानना असंभव है। मानस में जीवन के प्रत्येक पहलू पर चिंतन किया गया है। तुलसीदासजी ने समाज में मौजूद इन दोनों प्रकृति के लोगों को देखा, उनके चरित्र का अध्ययन किया और मानस में इनके चरित्रों को उजागर किया। उन्होंने बाल कांड, अरण्य कांड और उत्तर कांड में अनेक चौपाइयाँ इन दोनों के चरित्रों पर लिखी हैं। इनका अध्ययन हम लोगों को भी अपना और दूसरों का मूल्यांकन करने की दृष्टि देता है। ये चौपाइयाँ हमारे आकलन का आधार बनेंगी और हम अपने व्यवहार का निर्णय करेंगे।

बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं।।
बा.का./4/3,4।।

अब मैं संत और असंत दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ, दोनों ही दुःख देने वाले हैं, परन्तु उनमें कुछ अन्तर कहा गया है। वह अंतर यह है कि संत तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं और जब असंत मिलते हैं तो दारुण दुःख देते हैं। अर्थात् संतों का बिछुड़ना मरने के समान दुःखदायी होता है और असंतों का मिलना।

उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं।।
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।।
बा.का./4/5,6।।

दोनों (संत और असंत) जगत में एक साथ पैदा होते हैं, पर

(एक साथ पैदा होने वाले) कमल और जोंक की तरह उनके गुण अलग-अलग होते हैं। (कमल दर्शन और स्पर्श से सुख देता है, किन्तु जोंक शरीर का स्पर्श पाते ही रक्त चूसने लगती है।) साधु अमृत के समान (मृत्यु रूपी संसार से उबारने वाला) और असाधु मदिरा के समान (मोह, प्रमाद और जड़ता उत्पन्न करने वाला) है, दोनों को उत्पन्न करने वाला जगत रूपी अगाध समुद्र एक ही है। (शास्त्रों में समुद्रमन्थन से ही अमृत और मदिरा दोनों की उत्पत्ति बताई गई है।)

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा।।
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।।
बा.का./5/1,2।।

दुष्टों के पापों एवं अवगुणों की और साधुओं के गुणों की कथाएँ- दोनों ही अपार और अथाह समुद्र हैं। इसी से कुछ गुण और दोषों का वर्णन किया गया है, क्योंकि बिना पहचाने उनका ग्रहण या त्याग नहीं हो सकता।

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए।।
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना।।
बा.का./5/3,4।।

भले-बुरे सभी ब्रह्मा के पैदा किए हुए हैं, पर गुण और दोषों को विचार कर वेदों ने उनको अलग-अलग कर दिया है। वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा की यह सृष्टि गुण-अवगुणों से सनी हुई है।

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।।
बा.का./6।।

विधाता ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है, किन्तु संत रूपी हंस दोष रूपी जल को छोड़कर गुण रूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं।

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ।।
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें।।
बा.का./3ख/1,2।।

अब मैं सच्चे भाव से दुष्टों को प्रणाम करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन, अपना हित करने वाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों के हित की हानि ही जिनकी दृष्टि में लाभ है, जिनको दूसरों के उजड़ने में हर्ष और बसने में विषाद होता है।

हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।।
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी।।
बा.का./3ख/3,4।।

जो हरि और हर के यशरूपी पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिए राहु के समान है (अर्थात जहाँ कहीं भगवान विष्णु या शंकर के यश का वर्णन होता है, उसी में वे बाधा देते हैं) और दूसरों की बुराई करने में सहस्रबाहु के समान वीर हैं। जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखते हैं और दूसरों के हित रूपी घी के लिए जिनका मन मक्खी के समान है (अर्थात् जिस प्रकार मक्खी घी में गिरकर उसे खराब कर देती है और स्वयं भी मर जाती है, उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरों के बने-बनाए काम को अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं)।

बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा।।
बा.का./3ख/11।।

जिनको कठोर वचन रूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और जो हजार आँखों से दूसरों के दोषों को देखते हैं।

उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति।।
बा.का./4।।

दुष्टों की यह रीति है कि वे उदासीन, शत्रु अथवा मित्र, किसी का भी हित सुनकर जलते हैं। यह जानकर दोनों हाथ जोड़कर यह जन प्रेमपूर्वक उनसे विनय करता है।।

संतों के लक्षण

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा।।
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ।।
अर.का./44/5,6।।

हे रघुवीर! हे भव-भय (जन्म-मरण के भय) का नाश करने वाले मेरे नाथ! अब कृपा कर संतों के लक्षण कहिए! (श्रीरामजी ने कहा-) हे मुनि! सुनो, मैं संतों के गुणों को कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ।

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा।।
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी।।
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना।।
अर.का./44/7-9।।

गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह।।
अर.का./45।।

वे संत (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर-इन) छः विकारों (दोषों) को जीते हुए, पापरहित, कामनारहित, निश्चल (स्थिर बुद्धि), अकिंचन (सर्वत्यागी), बाहर-भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान, योगी, सावधान, दूसरों को मान देने वाले, अभिमानरहित,

धैर्यवान, धर्म के ज्ञान और आचरण में अत्यंत निपुण, गुणों के घर, संसार के दुःखों से रहित और संदेहों से सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरण कमलों को छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही।

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं।।
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीति।।
अर.का./45/1,2।।

कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं, दूसरों के गुण सुनने से विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं, न्याय का कभी त्याग नहीं करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा।।
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया।।
अर.का./45/3,4।।

वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम में रत रहते हैं और गुरु, गोविंद तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता (प्रसन्नता) और मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है।

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना।।
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।।
अर.का./45/5,6।।

तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्मा के तत्व का ज्ञान) और वेद-पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते।

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला।।
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते।।
अर.का./45/7,8।।

सदा मेरी लीलाओं को गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरों के हित में लगे रहने वाले होते हैं। हे मुनि! सुनो, संतों के जितने गुण हैं, उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते।

भरतजी का प्रश्न और श्रीरामजी का उपदेश

करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई।।
संतन्ह कै महिमा रघुराई। बहु बिधि बेद पुरानन्ह गाई।।
उ.का./36/1,2।।

हे कृपानिधान! मैं आप से एक धृष्टता करता हूँ। मैं सेवक हूँ और आप सेवक को सुख देने वाले हैं (इससे मेरी दृष्टता को क्षमा कीजिए और मेरे प्रश्न का उत्तर देकर सुख दीजिए)। हे रघुनाथजी! वेद-पुराणों ने संतों की महिमा बहुत प्रकार से गाई है।

श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई।।
सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन।।
उ.का./36/3,4।।

आपने भी अपने श्रीमुख से उनकी बड़ाई की है और उन पर प्रभु (आप) का प्रेम भी बहुत है। हे प्रभो! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ। आप कृपा के समुद्र हैं और गुण तथा ज्ञान में अत्यंत निपुण हैं।

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।।
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता।।
उ.का./36/5,6।।

हे शरणागत का पालन करने वाले! संत और असंत के भेद अलग-अलग करके मुझको समझाकर कहिए। (श्रीरामजी ने कहा-) हे भाई! संतों के लक्षण (गुण) असंख्य हैं, जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं।

संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई।।
उ.का./36/7,8।।

संत और असंतों की करनी ऐसी है जैसे कुल्हाड़ी और चंदन का आचरण होता है। हे भाई! सुनो, कुल्हाड़ी चंदन को काटती है (क्योंकि उसका स्वभाव या काम ही वृक्षों को काटना है), किंतु चंदन अपने स्वभाववश, अपना गुण देकर उसे (काटने वाली कुल्हाड़ी को) सुगंध से सुवासित कर देता है।

ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड।।
उ.का./37।।

इसी गुण के कारण चंदन देवताओं के सिरों पर चढ़ता है और जगत् का प्रिय हो रहा है और कुल्हाड़ी के मुख को यह दंड मिलता है कि उसको आग में जलाकर फिर घन से पीटते हैं।

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।।
उ.का./37/1,2।।

संत विषयों में लंपट (लिप्त) नहीं होते, शील और सद्गुणों की खान होते हैं, उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है। वे (सबमें, सर्वत्र, सब समय) समता रखते हैं, उनके मन में कोई उनका शत्रु नहीं है। वे मद से रहित

और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भय का त्याग किए हुए रहते हैं।

कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया।।
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी।।

उ.का./37/3,4।।

उनका चित्त बड़ा कोमल होता है। वे दीनों पर दया करते हैं तथा मन, वचन और कर्म से मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सबको सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणों के समान हैं।

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन।।
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।।

उ.का./37/5,6।।

उनको कोई कामना नहीं होती। वे मेरे नाम के परायण होते हैं। शांति, वैराग्य, विनय और प्रसन्नता के घर होते हैं। उनमें शीतलता, सरलता, सबके प्रति मित्रभाव और ब्राह्मण के चरणों में प्रीति होती है, जो धर्मों को उत्पन्न करने वाली है।

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।

उ.का./37/7,8।।

हे तात! ये सब लक्षण जिसके हृदय में बसते हों, उसको सदा सच्चा संत जानना। जो शम (मन के निग्रह), दम (इंद्रियों के निग्रह), नियम और नीति से कभी विचलित नहीं होते और मुख से कभी कठोर वचन नहीं बोलते।

निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज।।

उ.का./38।।

जिन्हें निंदा और स्तुति (बड़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरणकमलों में जिनकी ममता है, वे गुणों के धाम और सुख की राशि संतजन मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।

असंतों के लक्षण

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ।।
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई।।

उ.का./38/1,2।।

अब असंतों (दुष्टों) का स्वभाव सुनो, कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिए। उनका संग सदा दुःख देने वाला होता है। जैसे हरहाई (बुरी जाति की) गाय, कपिला (सीधी और दुधार) गाय को अपने संग से नष्ट कर डालती है।

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।

उ.का./38/3,4।।

दुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। वे पराई संपत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरे की निंदा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्ते में पड़ी निधि (खजाना) पा ली हो।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।।

उ.का./38/5,6।।

वे काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किसी से वैर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ भी बुराई करते हैं।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।

उ.का./38/7,8।।

उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है। अर्थात् वे लेने-देने के व्यवहार में झूठ का आश्रय लेकर दूसरों का हक मार लेते हैं अथवा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपये ले लिए, करोड़ों का दान कर दिया। इसी प्रकार खाते हैं चने की रोटी और कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आए। अथवा चबेना चबाकर रह जाते हैं और कहते हैं हमें बढ़िया भोजन से वैराग्य है, इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातों में झूठ ही बोला करते हैं। जैसे मोर बहुत मीठा बोलता है, परन्तु उसका हृदय ऐसा कठोर होता है कि महान विषैले साँपों को भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं, परंतु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद।।

उ.का./39।।

वे दूसरों से द्रोह करते हैं और पराई स्त्री, पराए धन तथा पराई निंदा में आसक्त रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर शरीर धारण किए हुए राक्षस ही हैं।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न।।
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई।।

उ.का./39/1,2।।

लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है (अर्थात् लोभ ही से वे सदा घिरे हुए रहते हैं)। वे पशुओं के समान आहार और मैथुन के ही परायण होते हैं, उन्हें यमपुर का भय नहीं लगता।

यदि किसी की बड़ाई सुन पाते हैं, तो वे ऐसी (दुःखभरी) साँस लेते हैं मानों उन्हें जूड़ी आ गई हो।

जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती।।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी।।
उ.का./39/3,4।।

और जब किसी की विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगतभर के राजा हो गए हों। वे स्वार्थपरायण, परिवार वालों के विरोधी, काम और लोभ के कारण लंपट और अत्यंत क्रोधी होते हैं।

मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं।।
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा।।
उ.का./39/5,6।।

वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसी को नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, (साथ ही अपने संग से) दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरों से द्रोह करते हैं। उन्हें न संतों का संग अच्छा लगता है, न भगवान् की कथा ही सुहाती है।

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी।।
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा।।
उ.का./39/7,8।।

वे अवगुणों के समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी (रागयुक्त), वेदों के निंदक और जबर्दस्ती पराए धन के स्वामी (लूटने वाले) होते हैं। वे दूसरों से द्रोह तो करते ही हैं, परंतु ब्राह्मण- द्रोह विशेषता से करते हैं। उनके हृदय में दम्भ और कपट भरा रहता है, परंतु वे ऊपर से सुंदर वेष धारण किए रहते हैं।

ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं।।
उ.का./40।।

ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में थोड़े से होंगे और कलियुग में तो इनके झुंड के झुंड होंगे।

गरुड़जी के प्रश्न तथा काकभुशुण्डि के उत्तर

संत और असंत का मर्म (भेद) आप जानते हैं, उनके सहज स्वभाव का वर्णन कीजिए।

संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु।।
उ.का./120ख/5।।

तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती।।
उ.का./120ख/8।।

(काकभुशुण्डिजी ने कहा-) हे तात अत्यंत आदर और प्रेम के साथ सुनिए। मैं यह नीति संक्षेप से कहता हूँ।

संत सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी।।
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। परहित निति सह बिपति बिसाला।।
उ.का./120ख/15,16।।

संत दूसरों की भलाई के लिए दुःख सहते हैं और अभागे असंत दूसरों को दुःख पहुँचाने के लिए। कृपालु संत भोज के वृक्ष के समान दूसरों के हित के लिए भारी विपत्ति सहते हैं (अपनी खाल तक उधड़वा लेते हैं)।

खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी।।
उ.का./120ख/18।।

किंतु दुष्ट लोग सन की भाँति दूसरों को बाँधते हैं और (उन्हें बाँधने के लिए) अपनी खाल खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं। हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! सुनिए, दुष्ट बिना किसी स्वार्थ के साँप और चूहे के समान अकारण ही दूसरों का अपकार करते हैं।

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।।
उ.का./120ख/21।।

और संतों का अभ्युदय सदा ही सुखकर होता है, जैसे चंद्रमा और सूर्य का उदय विश्वभर के लिए सुखदायक है।

जीवन में अच्छे और बुरे लोगों की पहचान मानस की इन चौपाइयों से की जा सकती है, इन चौपाइयों को ध्यानपूर्वक पढ़ने और समझने की आवश्यकता है। अच्छे और बुरे का अंतर जानकर ही जीवन में सफलता और यश प्राप्त किया जा सकता है।

श्रीरामचरितमानस का नियमित पाठ
परिवार में हो सुख शांति समृद्धि का वास

अरुण पाठक

राजेंद्र प्रसाद

संस्कृति का आधार है श्रीरामचरितमानस

राष्ट्र एवं सांस्कृतिक प्रेम जगाती है मानस

लीना मेहेंदले
सेवानिवृत्त आईएएस, भविष्यवेधी चिंतक, वक्ता, शिक्षक, प्रशासक

श्रीरामचरितमानस पर कुछ कहने से पहले यह उल्लेख आवश्यक हो जाता है कि आज भारत की राष्ट्रचेतना व भारतीय संस्कृति आत्मबोधह्रास के संकट से जूझ रही है। ऐसी परिस्थिति गोस्वामी तुलसीदास के जीवनकाल और अन्य कई कालखण्डों में थी। परन्तु, हर बार किसी न किसी ने हमारी संस्कृति के महत्तत्त्वों को समझाते हुए कुछ ऐसा किया कि उस संकट की तीव्रता या आवेग कम हो गये। आज यदि इस संकट से निकलना है, आत्मग्लानि के भाव से उबरना है, तो हमें पहले भारतीय संस्कृति को समझना होगा कि इसके परिचायक सिद्धान्त क्या हैं, मापदण्ड क्या हैं और कैसे वे मानस से पोषित हैं।

सबसे पहला सिद्धान्त जो भारतीय आस्था प्रणाली व संस्कृति को विश्व की सभी आस्थाओं से अलग करता है वह है उपास्यता। ईश्वर को सगुण कहें या निर्गुण, दोनों तत्त्व एक ही हैं और दोनों तरह से उपास्य हैं। अर्थात् जिसकी उपासना से ज्ञान प्राप्त करा जा सकता है। उपासना से ही परिपालन, योगक्षेम व सिद्धिप्राप्ति होती है। हमारी आस्था राम में हो या शिव में, ओंकार में हो या भगवती में, गणेश में हो या मारुति में, सूर्य में हो या गंगा में, कृष्ण में हो या राधा में, हर उपासना शुभफल देती है। परन्तु इसे गुरुमुख से सीखना आवश्यक है, इसी कारण गुरु को साक्षात परब्रह्म कहा गया है। इस उपासना की बड़ी महत्ता तुलसी ने बखानी है। वाल्मीकि से कहीं अधिक। अतएव मानस के राम यद्यपि मनुष्य देह में आने के कारण अन्य मनुष्यों की तरह सुख-दुःखादि भावनाओं से बद्ध हैं, फिर भी आवश्यकतानुसार अपनी प्रभुताई प्रकट करते हैं और उनसे जुड़े परिजनों को भी कहीं न कहीं यह भान है कि यह दृग्गोचर राम ही परम तत्त्व भी हैं।

मैं तीन मापदण्ड मानती हूँ- **राष्ट्र, धर्म व प्रज्ञान। राजते इति**

राष्ट्रः। धारयति इति धर्मः। प्रज्ञानं ब्रह्मः। जो ऐश्वर्य संपन्न होने से शोभित हो रहा है, वह भारत राष्ट्र है। सहस्र वर्षों से इस राष्ट्र की श्रद्धा रही है कि मनुष्य का अस्तित्व समष्टि के अभ्युदय व समृद्धि के लिये है न कि लूटपाट के लिये। मनुष्य-समूह को समाज या देश से ऊपर उठाकर राष्ट्र बनाने वाले दो कारक हैं, धर्म व प्रज्ञान। धर्म हमारे लिये समाज की धारणा हेतु आवश्यक नियमों की व्याख्या करता है और प्रज्ञान हमारी उपलब्धियों को विस्तार देता है। धर्म के अवयवों में सत्यनिष्ठा, अहिंसा, श्रद्धा, न्याय, अस्तेय, गुरुनिष्ठा, पराक्रम, शील, करुणा, अभ्यास, वैराग्य, शुचिता, समन्वय, कृतज्ञता, भक्ति, नियमबद्धता, त्याग, तप, राष्ट्रभावना, मातृशक्तिबोध, ईश्वरबोध, धीरता, प्रतिबद्धता, मेधा, निष्कपटता, कला, सौंदर्यबोध, कुशलता, निर्भयता, सद्भाव, निर्वैर आदि गुणों का समावेश है और इनकी पुष्टि हेतु बने नियम ही धर्म कहाते हैं।

प्रज्ञान हमें ईश्वर के समकक्ष ले जाने वाला दर्शन है और इसके अवयवों में वाणी, जिज्ञासा, बुद्धि, कला, स्मृति, धृति, मति, मेधा, प्रत्युत्पन्नमति, चातुर्य, विद्या, ज्ञान, विवेक, प्रज्ञा आदि अंतर्भूत हैं।

इनके अलावा हमारी संस्कृति के दो प्रमुख परिचायक सिद्धान्त कहे जा सकते हैं। एक है आत्मा की अविनाशिता व उससे जुड़ा पुनर्जन्म का सिद्धांत, जिसमें कर्मफल व प्रारब्ध का सिद्धांत अंतर्निहित है। तुलसी ने भी कहा है -

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।।

अयो.का./218/4।।

उन्होंने विश्व में कर्म को ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है।

दूसरा है ईश्वरी अवतार का सिद्धांत जो **संभवामि युगे युगे** के अभिवचन में व्याख्यायित है। तुलसी कहते हैं-

हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान।।

लं.का./48क।।

भाई हिरण्यकशिपु सहित हिरण्याक्ष को और बलवान मधु-कैटभ को जिन्होंने मारा था, वे ही कृपा के समुद्र भगवान अवतरित हुए हैं।

इन्हीं मापदण्डों के आधार पर रामचरितमानस की चर्चा यहाँ प्रस्तुत है। मानस के 7 काण्ड हैं। प्रचलित परंपरा में मानस के मासपारायण का विधान सर्वाधिक लोकानुकूल है, अतः मेरा विवेचन भी उसी के संदर्भ से किया है।

बालकाण्ड

मासपारायण 1

गोस्वामी तुलसीदास जब रामचरितमानस लिखने लगे तो आरंभ किया है प्रणामों से। भक्ति व कृतज्ञता का तकाजा है कि किसी भी उत्तम कार्य को आरंभ करने से पहले इष्टदेवताओं से व गुरुजनों से प्रणामपूर्वक आशीर्वाद लिया जाय। तुलसी सर्वप्रथम वाणी और विनायक को नमन करते हैं। अंतर्मन के गह्वर में घनीभूत होते भाव दूसरों तक प्रकट होने हेतु, वाग्देवी की कृपा से शब्दों का रूप धारण करते हैं और उस वाणी के प्रकट होने के बाद जो सामाजिक वातावरण बनता है, उसे गणेश मंगलमय बनाते हैं। अतः इन दोनों की एकत्रित वंदना करके तुलसीदास अपना ग्रंथ आरंभ करते हैं। प्रथमतः शंकर और पार्वती को नमन, जो जगत के माता-पिता हैं तथा समाज में श्रद्धा और विश्वास के प्रतीक हैं। श्रद्धा ही किसी व्यक्ति की या राष्ट्र की पहचान होती है-जैसी श्रद्धा वैसी राष्ट्रचेतना। तो यही श्रद्धा एवं विश्वास शंकर-पार्वती के प्रतीकरूप हैं। तुलसीदास ने श्रद्धा और विश्वास के सामर्थ्य को शिव-शक्ति बताया हैं।

इसके पश्चात् तुलसी गुरुवंदना गाते हैं जो चिरंतन काल से हमारी संस्कृति की सशक्त पहचान हैं। हम मानते हैं कि बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता है। विश्व के अन्य किसी भाग में या किसी संस्कृति ने गुरु की ऐसी महिमा नहीं बखानी, उलटे आज तो गुरु के प्रति अवहेलना का भाव अधिक दिखाई पड़ता है। कदाचित यही विश्व की अवनति का कारण है।

फिर तुलसी वाल्मीकि और हनुमान की एक साथ वंदना करते हैं, क्योंकि दोनों सदा ही राम का गुणवर्णन करने वाले और रामकथा को समाज के सामने रखने वाले विद्वान हैं।

पहले चार संस्कृत श्लोकों के बाद तुलसी ने इन सबका मंगलगान लोकभाषा अवधी में किया है- विशेषकर गुरुकृपा का उल्लेख करते हुए उपमा दी है कि जिस प्रकार सिद्ध अंजन आँखों में लगाने से गुप्त स्थान के खनिजों को देखा जा सकता है और उनका उपयोग किया जा सकता है, वैसे ही **'गुरु पद रज दोष विभंजन'** है, किरण के समान नयनों के दोष को समाप्त करती हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणों को प्रणाम जो अज्ञानजनित संशय को दूर करते हैं। फिर समाज में सुजनों का व संतों का होना अत्यावश्यक बताते हुए तुलसी कहते हैं-

सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी।।

बा.का./1/4।।

इनकी सत्संगति पाकर सठ भी सुधर जाते हैं। जैसे पारस किसी लोहे को सोना बना सकता है।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई।।
बा.का./2/9।।

तुलसी ने संतों को प्रयागराज की उपमा दी है, जो त्रिवेणी समान पापनाशक एवं तत्काल फल देने वाला है।

फिर तुलसी दार्शनिक हो जाते हैं और दुर्जनों का भी गुण बखानते हैं कि वे हजारों नेत्रों से दूसरों के दोष को निहार लेते हैं और हजारों मुखों से दूसरों के दोष का वर्णन करते हैं, जिससे उन्हें सुधारा जा सके। वास्तव में संत व दुर्जन दोनों को ईश्वर ने बनाया है तो ज्ञानी को चाहिये कि दोनों को झेले। और जो उतना ज्ञानी ना भी हो तो उसे भी समझना चाहिये कि एक बिछुरते हुए प्राण हर लेता है और दूसरा मिलते ही दुख देता है, तो दोनों ही दुखकारी हुए। इसलिये भी उन्हें धैर्य से झेलना चाहिये। दुर्जन और सज्जन वैसे ही हैं, जैसे दुःख-सुख, पाप-पुण्य, रात-दिन, असाधु-साधु, कुजाति-सुजाति, नरक-स्वर्ग, दानव-देव या माया-ब्रह्म।

यद्यपि विधाता ने जड़-चेतन, साधु-असाधु दोनों का निर्माण किया है लेकिन संत तो हंस के समान होते है-केवल अच्छी बातों को ही चुनते हैं और बुरी बातों का त्याग करते हैं। इसी कारण तुलसी जड़-चेतन समेत सारी सृष्टि को प्रभुमय जानकर देव, दानव, मनुष्य, नाग, खग, पितर, किन्नर, गंधर्व, और जल-थल-नभ वासी सभी जीवों को प्रणाम करते हैं।

फिर अपनी रचना की बड़ाई बताते हैं कि इसमें राम का नाम होने के कारण यह स्वयंसिद्ध रूप से स्वीकार्य व प्रिय हो जाती है। जो अरूप-अनाम विश्वरूप सच्चिदानंद हैं, वही लीला करने हेतु प्रकट हुए रघुनाथ हैं। यही सगुण-निर्गुण का अद्वैत राम को इतिहास पुरुष के साथ-साथ उपास्य देव भी बनाता है।

यह ऐसा तत्त्वदर्शन है, जो केवल भारतीय संस्कृति में वर्णित व अनुभवसिद्ध है। मानस में जितने भी चरित्रों का वर्णन हैं, उन सबने और उनके माध्यम से तुलसी ने राम को उपास्य देवता बताया है। ऐसे राम से तथा रामकथा कहने-सुनने वाले महेश-उमा से तुलसी आशीर्वाद माँगते हैं, ताकि संत समाज में उनका रचा यह काव्य सम्मान पावे।

मासपारायण 2

अब प्रत्यक्ष रामकथा पर आकर तुलसी कलियुग को, अयोध्यानगरी को, सरयू को, कौशल्या और तीनो रानियों समेत दशरथ को प्रणाम करते हैं। दशरथ की रामरति ऐसी है कि जैसे ही राम उनसे अलग हुए, वैसे ही उनके प्राण पखेरू उड़ गये। यद्यपि राम पहले भी विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षा हेतु गये, तब दशरथ ने राम वियोग सहा था, लेकिन दूसरी बार दशरथ को एक ग्लानि है कि उनके कारण राम को वनवास जाना पड़ा है। अस्तु।

प्रथम भरत की चरण वंदना क्योंकि माता के वर से जो राज्य मिला उसे राम के हेतु त्याग किया। त्याग को भारतीय संस्कृति ने सदा ही अति सम्मान दिया है। इसी से भरत प्रथम प्रणम्य हो जाते हैं, पश्चात् लक्ष्मण व शत्रुघ्न भी। आगे हनुमान, रीछ, कपिपति और रामके समकालीन जिस किसी को रामचरणों की उपासना का सौभाग्य मिला, उन्हें प्रणाम। जानकी को प्रणाम और आदि कवि को भी।

मासपारायण 2, 3, 4

रामचरितमानस में वर्णित रामकथा को एक बार महेश ने उमा को, एक बार काकभुशुण्डि ने गरुड़ को, एक बार मुनि **याज्ञवल्क्य** ने भरद्वाज को और एक बार तुलसीदास ने अपने श्रोताओं को सुनाया। इस प्रकार कथा-कीर्तन की परंपरा हमारी संस्कृति में कितनी प्राचीन है, यही तुलसी दिखाना चाहते हैं। याज्ञवल्क्य ने एक अद्भुत कथा बताई कि एक बार त्रेता युग में शिव और सती अगस्त्य मुनि से मिलने आये, तब अगस्त्य एवं शिव ने कई प्रकार से राम का गुणवर्णन किया। सती को आश्चर्य हुआ कि जो शिव स्वयं निर्गुण ब्रह्म के द्योतक हैं, वे भला राम को इस प्रकार हृदय में बसाये रखते हैं। तभी सती ने देखा कि सीता के वियोग में राम वन में भटकते हुए विलाप कर रहे थे, फिर भी शिव अपने को उनके सामने प्रकट किये बिना जाने लगे। इस पर सती की शंका बढ़ गई और उन्होंने राम की परीक्षा लेने हेतु शिव से अनुमति ली। फिर परीक्षा के लिये उन्होंने स्वयं को सीता के रूप में ढाला और राम के सम्मुख आ गईं। लक्ष्मण तो उन्हें देखकर सोच में पड़ गये परन्तु राम ने तत्काल उन्हें नमन किया और पूछा कि हे माते, इस निपट वन में शिव के बिना अकेली आप किस प्रयोजन से घूम रही हैं। तब जाकर सती समझ गईं कि मनुष्य वेश में लीला करने वाले यह राम वास्तव में सर्वज्ञ हैं और यही कारण वे शिव के भी हृदयस्थ हैं। वापस जाकर सती ने शिव को कहा कि वह बिना परीक्षा लिये ही लौट आई हैं परन्तु शिव भी सर्वज्ञ ठहरे। सारी बातों पर विचार कर शिव ने यही उचित समझा कि जिस देह में रहते हुए सती ने सीता का रूप धारण कर लिया, उससे शिव पत्नीभाव से नहीं बरत सकते। इसके बाद दक्ष यज्ञ के प्रसंग से सती स्वयं को योगाग्नि में भस्म कर लेती हैं। फिर वह शैलपुत्री पार्वती का जन्म लेकर शिव की आराधना से उन्हें पुनः प्राप्त करती हैं।

यह कथा अपने आप में भारतीय संस्कृति के मूल्यों को एक बहुत ऊँचे स्थान पर ले जाती है। तुलसीदास को ज्ञात हो या ना हो, परन्तु प्राचीन दंडकारण्य अर्थात् महाराष्ट्र के वर्तमान मराठवाडा.

में धाराशिव जिले में देवी का एक अति प्राचीन येडाई मंदिर है। आई का अर्थ है माँ और येडा का अर्थ है पगलाई या भटकी हुई। इसकी लोककथा कहती है कि राम ने कहा- माता क्या तुम पगलाई हो जो इस विचित्र वेष में इस भयावह जंगल में शिवजी के बिना अकेली घूम रही हो। इस प्रकार भेद खुलने पर सती ने अपना रूप तो प्रकट किया परन्तु उसी जगह पाषाणवत रहने लगीं।

मासपारायण 4, 5, 6

प्रश्न उठता है कि ईश्वर को अवतार लेने की क्या आवश्यकता है। इस विषय में गीता वचन प्रसिद्ध है। उसी के अनुरूप तुलसी राम के अवतार ग्रहण के विषय में कहते हैं -

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।
बा.का./120घ/6,8।।

यद्यपि यह भी है कि

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।।
बा.का/120घ/3।।

फिर भी सब अवतारों में उपरोक्त कारण कायम है। चाहे हिरण्यकशिपु या जलंधर या रावण के निमित्त क्यों न हो।

दूसरा प्रश्न उठता है कि शिव उपासना और हरि उपासना में क्या अन्तर है अथवा क्या अंतर्विरोध है। तुलसी और उनके पूर्व अनेकानेक समन्वयकारी संतों ने बारंबार कहा है कि हरि-हर में से एक से प्रीति और दूसरे से अप्रीति फलवती नहीं होती है।

मानस की भूमिका ही तुलसी ने ऐसी बांधी है कि राम के अतीव प्रेमवश होकर स्वयं महेश ने उमा से रामकथा कही और उस बहाने हरि की ईश्वरता समझाई। उधर नारद के अभिमान की कथा में उसी हरि ने कहा है -

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा।।
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें।।
बा.का./137/5,6।।

आगे सांख्यशास्त्र के उद्गाता कपिलमुनि को विष्णु अवतार बताकर शिव बखानते हैं-

हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता।।
बा.का./139/5।।

फिर याज्ञवल्क्य मुनि के द्वारा भरद्वाज को उमा-महेश संवाद का कथन और रावण के विगत जन्मकथा का प्रसंग बखाना है -

कैकेय देश के प्रतापी राजा प्रतापभानु और भाई अरिमर्दन ने दिग्विजय कर सामर्थ्य व कीर्ति कमाई। एक बार प्रतापभानु घोर वन में एक कपटी शत्रु की मीठी बातों में फँस गया। उसे सिद्धिप्राप्त मुनि समझकर और सतर्कता भुलाकर उससे यह वरदान चाहा-

जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ।।
बा.का./164।।

कपटी मुनि ने उससे गुप्त रूप से एक अधिष्ठान करवाने का सुझाव दिया। उसके द्वारा एक लाख ब्राह्मणों को भोजन के लिए बुलवाकर, उनके भोजन में ब्राह्मण माँस मिला दिया। इस पर क्रुद्ध ब्राह्मणों ने प्रतापभानु को कुल के सर्वनाश का शाप दिया। आगे शीघ्र ही युद्ध में उसके कुल का ध्वंस हुआ। वही अगले जन्म में रावण व कुंभकरण बने। इस पूरे कथानक में प्रतापभानु का बड़ा दोष उसकी लालसा दिखती है, क्योंकि दिग्विजयी राजा होते हुए भी उसने यह महत्ता चाही कि वह जरा-मरण-दुःख रहित होकर सौ कल्पों तक एकछत्र राजा बना रहे।

रावण जन्म में भी उसकी यह लालसा नहीं छूटती। घोर तप कर रावण ब्रह्मा को प्रसन्न कर लेता है और यही वर मांगता है कि उसे नर-वानर के सिवाय अन्य किसी से मृत्यु या पराजय का भय न रहे। इस प्रकार वह इंद्र-कुबेर सहित सारे देवताओं को परास्त कर उनका ऐश्वर्य छीन लेता है और विकट अत्याचारी बन जाता है-

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई।।
गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता।।
बा.का./176/1,2।।
बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति।।
बा.का./सो.183।।

मासपारायण 7

शिव उमा से संवाद, रावणराज में छाये दुष्टों के वर्णन से आरंभ करते हैं। दुष्ट, निशाचर, राक्षस, असुर, खल आदि संबोधन जिनके हैं, उनकी पहचान बताते हैं- चोर, जुआरी, माता-पिता-देवता का मान न रखने वाले और साधुओं से सेवा कराने वाले, इनके कारण धर्म की ग्लानि होती है। ऐसा जब-जब होता है, तब पृथ्वी स्वयं व्याकुल होती है और इनके निर्दालन (विनाश) की प्रार्थना करती है। इस प्रकार प्रकृति-रक्षा अथवा पर्यावरण की सोच हमारे ग्रंथों में आती है-वही परंपरा तुलसीदास ने निभाई है।

सो पृथ्वी स्वयं ब्रह्मा के पास, फिर सारे देवता शिव के पास और फिर हरि के पास जाकर दुष्टसंहार की प्रार्थना करते हैं। इसी प्रसंग का आधार ले तुलसी शिव के मुख से कहते हैं-

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना।।
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।।
बा.का./184/5,6।।

तब गंभीर भविष्यवाणी होती है।

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा।।
बा.का./186/2

मन्तव्य है कि हमारे इतिहास में महापुरुषों ने एक समन्वय की परंपरा निभाई है। भगवद्गीता में कृष्ण ने सांख्य और योग के बीच समन्वय स्थापित किया। शंकराचार्य ने पंचायतन मंदिरों के माध्यम से विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य व हनुमान की एकत्र पूजा पद्धति चलाई। तुलसी ने तो पूरी रामकथा में हरि-हर की परस्पर प्रीति को बारंबार बखाना है। मानस नाम भी इसलिये है कि यह रामचरित, शिव के मानस के अतिनिकट है। तो जैसे तीसरे पाठ में वैसे ही यहाँ भी शिव को हरि की महिमा बखानते देखा जा सकता है।

गीता में आश्वासित **यदा यदा ही धर्मस्य...** के कारण अवतार की परिकल्पना में हरि के साथ अन्य देवतागण भी हैं। इसी कारण जहाँ विष्णु राम का अवतार हैं तो लक्ष्मण शेषनाग के, हनुमान शिव के तथा अन्यान्य वानर देवताओं के अवतार हैं।

श्रृंगी ऋषि द्वारा किया गया पुत्रकाम यज्ञ और उसमें स्वयं अग्नि द्वारा दशरथ को पायस देने का इतिहास हमें उस काल की विज्ञान की प्रगति का परिचय कराते हैं।

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा।।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें।।
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई।।
बा.का./188/5,6,8।।
तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं।।
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा।।
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ।।
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि।।
बा.का./189/1-4।।

दूसरी ओर

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला।। बा.का./191छं.।।

यह चौपाई तुलसीकालीन भक्तिधारा का परिचय देती है।

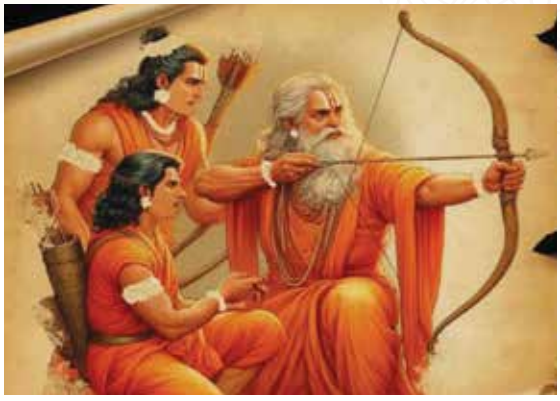

जैसे-जैसे राम बाल्यकाल से किशोर अवस्था में आते हैं, तुलसी इनके गुण गिनाते हैं-मृगया-निपुण, अनुजों को साथ ले चलते हैं, माता-पिता की आज्ञा का पालन, वेद-पुराण की पढ़ाई कर भाइयों को समझाते हैं और राज्य के काम भी ऐसे निपटाते हैं कि सारे पुरवासी प्रसन्न होते रहें। कीर्ति ऐसी फैलती है कि विश्वामित्र भी यज्ञरक्षा के हेतु राम को लाने की सोचते हैं।

भारत में एक परंपरा सदा रही कि ज्ञानियों को राजा से श्रेष्ठ माना जाता है। इसी से दशरथ द्वारा ज्ञानी मुनियों का समादर किया जाता है। राजा स्वयं वसिष्ठ की या विश्वामित्र की अगुआई करते हैं।

विश्वामित्र अपना यज्ञ निर्विघ्न करने हेतु दशरथ से राम व लक्ष्मण को माँग लाते हैं। वहाँ राम के वेगवान बाणों से ताड़का राक्षसी व सुबाहु राक्षस मारे जाते हैं और मारीच अति दूर विंध्यारण्य में जा गिरता है। फिर राम द्वारा शिला बनी गौतमी को शाप से उबारने का प्रसंग है, जिसके बाद वे जनकपुरी सीता स्वयंवर में आते हैं।

मासपारायण 8, 9

जनक के दरबार में एक ओर धनुष पर चाप चढ़ाने के प्रण को पूर्ण करने हेतु आये कई राजाओं के बीच राम व दूसरी ओर सुकुमारी जानकी को देख सभी नगरवासी कहते हैं कि जब सुमनोहर राम विराजमान हैं तो जनक ने व्यर्थ ही प्रण लगाया। फिर वे कामना करते हैं कि किसी अन्य से नहीं अपितु केवल राम से ही धनुष उठाया जा सके। यह समाज के सद्भावपूर्ण चरित्र को दर्शाता है।

मासपारायण 10, 11, 12

तुलसीदास विवाह वर्णन करते हुए राम, लक्ष्मण और सीता के गुण ऐसे गाते हैं। सीता ने अपनी सिद्धि के द्वारा सारे बारातियों का उत्तम पाहुनाचार कराया, इस रहस्य को केवल राम ही जान पाये। फिर पिता से मिलना चाहकर भी गुरु आज्ञा होने तक राम व लक्ष्मण ने धैर्य रखा। नगरवासियों ने जब चारों सुंदर, सुशील भाई देखे, तब वे कामना करने लगे कि इन चारों का विवाह जनकपुरी

में ही हो। यहाँ भी समाज की वही सद्भावना दिखती है। विवाह पश्चात् सभी अयोध्या आते हैं और एक सुअवसर देखकर राम को युवराज घोषित किया जाता है। फिर एक बार शत्रुघ्न को लेकर भरत ननिहाल गये तो उसी दौरान दशरथ ने राम का राज्याभिषेक घोषित कर दिया।

अयोध्याकाण्ड

मासपारायण 13,14,15

कैकेयी का वर माँगना तथा राम सीता लक्ष्मण का वनगमन

राम के राज्याभिषेक के आनंद में सब निमग्न थे, तभी मंथरा के पढ़ाये अनुसार कैकेयी ने राजा दशरथ को स्मरण दिलाया कि पूर्वकाल में राजा ने उसे दो वर देने का वचन दिया है। इस प्रसंग में तुलसीदास रघुकुल रीति बताते हैं-

प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई।।
अयो.का./27/4।।

यह सत्यनिष्ठा, भारतीय संस्कृति का परम बिंदु है, क्योंकि इसी नियम से आगे ज्ञान, कौशल, कला, समृद्धि व ऐश्वर्य की प्राप्ति संभव है। अपनी और अपने कुल की सत्यनिष्ठा के कारण ही भारत भर में राम आस्था का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं।

इसी प्रसंग से हमें अन्य चरित्रों का परिचय मिलता है। कैकेयी के पहले वर को दशरथ तुरंत मान लेते हैं और यह भी विश्वास दिलाते हैं कि इसमें राम को कोई आपत्ति नही होगी। राम को वन भेजने वाले दूसरे वर में बदलाव के लिये कैकेयी से बहुत प्रयत्न करते हैं, अपना अपयश लेने के लिये भी तैयार हैं। परन्तु राम ने जब ये दोनों इच्छाएँ सुनीं तब उन्हें तत्काल स्वीकार किया और कौशल्या से विदा लेने गये। कौशल्या भी अपना सारा शोक रोक कर राम को धर्म निभाने के लिये कहती हैं। सीता और लक्ष्मण का चरित्र भी ऐसा है कि वे तत्काल राम के साथ जाने का निश्चय करते हैं। सुमित्रा भी लक्ष्मण के निर्णय की प्रशंसा करती हैं। इन सब घटनाओं में हमें इनके व्यक्तित्व का प्रतिबिंब दिखता है।

हमारे ग्रंथों में दो वाक्य मिलते हैं- **ईश्वरेच्छा बलीयसी** और संसार की हर घटना में ईश्वर का कोई प्रयोजन होता है। तुलसी के अनुसार इस घटना में भी देवताओं का प्रयोजन था। राम के राज्याभिषेक की बात से वे अकुला गये कि अब रावणवध कैसे होगा। सबने बहुत प्रकार से सरस्वती की वंदना करते हुए आग्रह किया कि किसी की कुछ ऐसी मति फिरे कि राम वन को जायें। तो सरस्वती ने अयोध्या में कैकेई की दासी मंथरा को देखा और उसी के मन में ऐसी मति उपजाई। कैकेई ने कई बार राम को भरत से अधिक प्रिय कहा था, लेकिन मंथरा की सीख पर वह उपरोक्त दो वर माँग बैठी।

जब राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले, तब दशरथ ने इतना भान रखा कि मंत्रीवर सुमन्त को उन्हें रथ में बैठाकर, चार दिन वन विहार कर लौटा लाने की आज्ञा दी। यह भी कहा कि यदि राम-लक्ष्मण वापस ना भी आवें तो कम से कम सीता को वापस ले आयें। अर्थात् इतनी घोर विपदा में भी उनकी बुद्धि कार्यरत थी।

मासपारायण 16

रामवनगमन आरंभ

सुमन्त ने राम के रथ को हाँककर अयोध्या की सीमा तक पहुँचाया और सबने विश्राम किया। अगले दिन सुबह राम व लक्ष्मण ने विधिवत जटा धारण की। सुमंत के बार-बार आग्रह पर उन्हें पूर्वजों का स्मरण दिलाया -

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा।।
धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।।
अयो.का./94/3,5।।

तब सुमन्त ने एक विकल्प दिया कि कम से कम सीता को तो समझाओ और वनकष्टों से दूर रखो। इस पर सीता ने स्वयं ही आगे होकर सुमन्त से स्पष्ट कहा कि राम का साथ त्याग कर वह कहीं भी नहीं जायेंगी।

फिर केवट प्रसंग है। राम-सीता-लक्ष्मण को केवट गंगा पार कराता है। वह भी पार कराने का मूल्य नहीं लेता वरन प्रण लेता है कि लौटती बार आपसे मूल्य ले लूँगा।

फिर सीता ने गंगा नदी से मनौती माँगी कि सकुशल लौटने पर तुम्हारी पूजा करूँगी। पुरजन, सुमन्त, केवट, निषादराज गुह का सहज प्रेममय व्यवहार राम का बड़प्पन ही दिखाते हैं। फिर राम द्वारा लक्ष्मण-सीता को तीर्थराज प्रयाग का वर्णन करना और भरद्वाज के आश्रम में संत समागम। यहाँ से आगे अनजान नगरों में प्रवास, जिसमें उन्हें देखते ही लोगों का उमड़ना और अपरिचित होकर भी उनके लिये सुविधा देना, यह समाज के सद्भावपूर्ण चरित्र को दर्शाता है।

मासपारायण 17, 18, 19

राम तो वन में अगले पड़ावों पर चलते गये। इधर राम के वियोग में दशरथ ने प्राण त्याग दिये। गुरु बसिष्ठ ने भरत को ननिहाल से बुला भेजा। सारी घटना सुनाते हुए कौशल्या सहित सबने उन्हें राजतिलक का आग्रह किया। परंतु भरत का बंधु प्रेम व चरित्र ऐसा है कि अपना शोक संताप रोककर भरत ने अयोध्यावासियों से राम को लौटा लाने की बात कही। फिर तो भरत के साथ जाने

के लिये सभी नगरवासी, गुरुजन व माताएँ भी तैयार हुईं। तमसा, गोमती को पार कर प्रयाग राज आये। बीच में गुह का राज्य था। वह सेना देख सशंकित और सतर्क हुआ, परन्तु भरत के व्यवहार से उसने पहचान लिया कि यह परम रामभक्त है। इसी प्रकार त्रिवेणी के देवता और भरद्वाज ऋषि ने भी उनकी रामभक्ति पहचानकर साधुवाद दिया। भरद्वाज ने अपनी तपसिद्धि के बल से इतने सारे अतिथियों के भोजनादि की व्यवस्था की। यह एक प्रकार से हमारी सामाजिक व्यवस्थाओं को व अतिथिधर्म को दर्शाता है। वहाँ से सभी चित्रकूट चले। इंद्र को चिंता हुई कि कहीं भरत के कहने से राम लौट गये तो रावणवध का देवताओं का कार्य पूरा नहीं होगा। परन्तु देवगुरु ने समझाया-

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी।।
अयो.का./219/1।।

आर्य देवताओं के कार्य की हानि नहीं होगी।

मासपारायण 20

राम से मिलने निकले भरत की प्रयाग से चित्रकूट की यात्रा के निमित्त तुलसी ने सगुण भक्ति की अनन्यशरणता का चित्रण भरत के बरताव में किया है।

जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा।।
अयो.का./220/8।।

इसी कारण कवि कहते हैं -

जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत पेमु मनहुँ चहु पासा।।
अयो.का./219/6।।

यमुना तट पर आकर भरत के नेत्रों में पानी आ गया, क्योंकि यमुना जल का वर्ण भी राम के श्यामवर्ण का स्मरण दिलाता है। भरत का राम के प्रति प्रेम तथा त्यागवृत्ति के कारण सभी पुरवासी उन्हें धन्य मानते हैं और राम के लौटने की आशा करते हैं।

प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू।।
अयो.का./224/8।।

कवि समाज का चित्रण ऐसा करते हैं कि वनों में कोल किरात आदि वनवासी और वानप्रस्थी, बटु एवं यति भी रहा करते थे।

मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी।।
अयो.का./223/4।।

इनसे राम भी मिलते हैं और भरत भी। तब इनका प्रेम देखने को मिलता है।

मासपारायण 21

राम-भरत भेंट का प्रसंग

पूरी राम-भरत भेंट को आधी चौपाई में कहा जा सकता है--

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ।।
अयो.का./241/7।।

इस भाग में कवि ने एक सुंदर चित्र निर्माण किया है कि एक ओर तो भक्त शिरोमणि भरत का आग्रह रहेगा कि राम वापस चलें और दूसरी ओर देवताओं का भय कि यदि राम वापस गये तो रावणवध का कार्य कैसे पूरा होगा। अन्ततः देवता विचार करते हैं कि प्रभु से अधिक भक्त की महिमा है। इस कारण वे मन ही मन भरत की शरण लेते हैं कि वह राम को वापस अयोध्या न ले जायें। उपासना तत्त्व की पराकाष्ठा इस चौपाई में जान पड़ती है-

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई।।
अयो.का./265/1।।

भरत राम को वापस नहीं ले जाते परन्तु राम की खडाऊँ माँग लेते हैं कि सिंहासन पर वे ही विराजेंगी। वापस आकर भरत नंदीग्राम में तापस धर्म निभाते हुए वैसा ही वनवासी जीवन बिताते हैं, जैसा राम वन में कर रहे हों। भरत के साथ-साथ पूरी अयोध्यानगरी के सारे पुरजन भी तापसी हो जाते हैं।

अरण्यकाण्ड

मासपारायण 22

चित्रकूट में कुछ समय पश्चात् राम ने दक्षिण जाने का विचार किया और अत्रि व अनुसूया के आश्रम आये। अनुसूया-सीता के संवाद के माध्यम से स्त्रियों के हित तुलसी ने कई बातें कहीं। वहाँ से राम आगे चले तो बिराध राक्षस का वध, मुनि शरभंग से भेंट आदि के प्रसंग हैं। एक स्थान पर राम ने हड्डियों के अंबार देखकर प्रण किया कि ऐसे क्रूरकर्मा राक्षसों का वध करेंगे।

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।।
अर.का./9।।

फिर सुतीक्ष्ण मुनि से भेंट, जिनका यह वचन प्रसिद्ध है-

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम।।
अर.का./11।।

सुतीक्ष्ण ने राम की अगत्य से भेंट करवाई। उनके सुझाव पर राम ने गोदावरी तट पर पंचवटी में निवास किया, गीधराज जटायु से मैत्री की। लक्ष्मण को माया, अविद्या विद्या आदि विषयों का ज्ञान दिया जिसमें समदर्शिता एवं वैराग्य धारण करने को कहा। फिर धर्म के साथ भक्ति की आवश्यकता बताई। अपने भक्तों के प्रति राम ने कहा-

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।।

काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें।।
अर.का./15/11,12।।

पंचवटी में राम-लक्ष्मण को देखकर शूर्पणखा मोहित हुई। राम ने सीता को दिखाकर उसे टाल दिया और लक्ष्मण ने अपने सेवकव्रती होने की बात कहकर। दोनों से बार-बार ठुकराये जाने पर उसने अपना विकराल रूप प्रकट किया। तब लक्ष्मण ने उसके नाक-कान बिद्ध कर एक प्रकार से सभी राक्षसों को आह्वान दे दिया। इस पर दण्डकारण्य में बसे राक्षसों की महासेना चढ़ आई। तुलसी कहते हैं कि खर और दूषण ने राम को प्रस्ताव भिजवाया कि सीता उन्हें सौंपने पर दोनों भाइयों को छोड़ दिया जायेगा।

देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई।।
अर.कां./18/6।।

यह होती है राक्षसवृत्ति और संभवतः तुलसी के जीवनकाल की सामाजिक स्थिति यही थी। राम ने प्रस्ताव को ठुकराते हुए अपना विकट पौरुष दिखाया और सारे राक्षसों का वध किया। इस बहाने तुलसी लिखते हैं

रिपु पर कृपा परम कदराई।।
अर.का./18/13।।

अर्थात रिपु (शत्रु) पर दया दिखाना घोर मूर्खता है।

खर, दूषण एवं त्रिशिरा राक्षसों के वध होने पर शूर्पणखा ने लंका जाकर रावण को समझाया कि राक्षस राज्य का विध्वंस आरंभ हो चुका है और रावण शीघ्र उसे रोके। राम-लक्ष्मण के बल-पौरुष के साथ सीता की सुंदरता का भी वर्णन किया। रावण ने भी उन पर अपना बल दिखाने की जगह, सीता को हरने का मन बनाया।

इस प्रसंग पर तुलसी लिखते हैं कि आगामी संकट की भनक लगने के कारण राम ने सीता को कुछ काल अग्नि में निवास करवाया और उसका छायारूप बिंब अपने साथ रखा। आगे मारीच की सहायता व कपट से रावण उसी छायाबिंब को उठाकर अपने साथ ले गया। तुलसी कहते हैं कि यह सब राम ने लीला दिखाने हेतु किया। मारीच के मायामृग रूप को भी इसी कारण स्वीकार किया ताकि अन्ततः राक्षसों के वध का कार्य संपन्न हो।

रावण ने संन्यासी के वेष में आकर सीता का हरण किया और आकाशमार्ग से उड़ चला। जटायु ने उसे रोकने हेतु युद्ध किया पर जीत न सका। फिर सीता ने धैर्यपूर्वक अपने गहने उतारकर पोटली बनाई और एक जगह वानरों का झुंड बैठा देखकर, उनके बीच पोटली डाल दी। इस प्रकार उन्होंने बुद्धि का परिचय देते हुए हरण करने वाले रावण की दिशा का भान करा दिया।

राम और लक्ष्मण वापस आये और सीता को न पाकर खोजने निकले तो घायल जटायु ने रावण का कृत्य बताकर उन्हें दक्षिण दिशा में जाने को कहा।

राह में कबंध राक्षस को मारकर राम और लक्ष्मण मतंग ऋषि के आश्रम आये, जहाँ शबरी थी। अनन्यभक्ति का उत्तम रूप है शबरी, जिसके माध्यम से तुलसीदास सत्संग, नामस्मरण आदि प्रकार की नवधा भक्ति का वर्णन बताते हैं। फिर शबरी सलाह देती है कि पम्पा सरोवर के पास ऋष्यमूक पर्वत पर जो वानरदल हैं, उनसे राम को सहायता मिल सकेगी। यह प्रसंग बताता है कि कैसे राक्षस-समूहों के बीच रहते हुए ऋषि मुनि एक-दूसरे की उपयोगिता की जानकारी रखते थे।

किष्किंधाकाण्ड

मासपारायण 23

राम लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत के पास आये तो दूर से देखकर सुग्रीव डरा और जानकारी के लिये परम बुद्धिमान हनुमान को भेजा। हनुमान दोनों को ले आये और सुग्रीव से मैत्री कराई। तब सुग्रीव ने वे आभूषण दिखाये जो आकाशमार्ग से जाते हुए सीता ने फेंके थे। फिर सुग्रीव ने बालि के साथ बैर का कारण बताया और सहायता माँगी। राम ने एक ही बाण से बालि को मार गिराया।

बालि ने पूछा कि किस कारण उसे मारा गया, तब राम ने बताया कि छोटे भाई की स्त्री को बलपूर्वक ब्याहने का दोष उस पर है और अयोध्या नरेश भरत के प्रतिनिधि के रूप में राम ने उसे दण्ड दिया है।

भाई की स्त्री, बहन, कन्या एवं पुत्रवधू, इन पर कभी कुदृष्टि नहीं डालनी चाहिये। बालि ने राम को अंगद पर प्रीति रखने की विनती करते हुए प्राण त्यागे।

तदनंतर सुग्रीव राजा बना, उसने सीता की खोज में वानरसमूहों को सभी दिशाओं में पठाया। परन्तु दक्षिण में सबसे पराक्रमी जाम्बवंत, हनुमान और अंगद आदि भेजे। उन्हें जटायु के भाई सम्पाती ने रावण की लंका का पता बताया। राम ने विशेषरूप से हनुमान पर भरोसा रखते हुए अपनी मुद्रिका सौंपी थी कि यदि सीता का पता मिले तो उसे मुद्रिका दिखाकर विश्वास दिला सकें।

इस प्रकार राम अपने आपको एक उत्तम मित्र, पराक्रमी, न्यायसंगत, नेता, दूरदृष्टि के धनी एवं गुणों के पारखी के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

सुंदरकाण्ड

मासपारायण 24

इस भाग में हमारा परिचय होता है राम के धैर्य और पराक्रम से, हनुमान की प्रतिबद्धता, प्रत्युत्पन्नमति, पराक्रम, व विवेक से, विभीषण की भक्ति, विवेक, व सत्यनिष्ठा से तथा सीता की निर्भयता, प्रीति, व सतर्कता से।

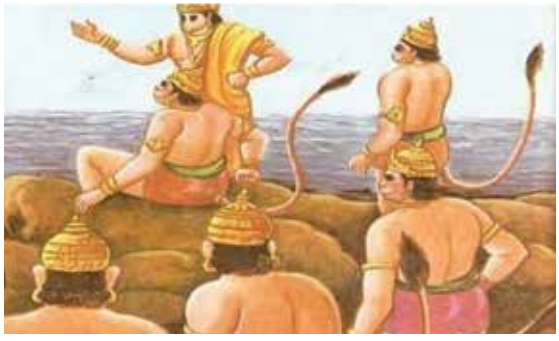

सम्पाती के कथनानुसार अब सीता की खोज में समुद्र लांघकर लंका जाना होगा। जाम्बवन्त सहित सबने असमर्थता जताई परन्तु उन्होंने हनुमान को स्मरण दिलाया कि उसके अद्भुत बल सामर्थ्य से वह समुद्र लाँघ सकते हैं। इस प्रकार हनुमान समुद्र के ऊपर उड़ चले। समुद्रतल में पड़ा हुआ मैनाक पर्वत ऊपर आया ताकि हनुमान तनिक विश्राम कर सकें। पर हनुमान का कथन था -

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।
सु.का./1।।

आगे राह में सुरसा उन्हें खाने दौड़ी। पहले तो उसकी विनती की कि मैं सीता को संदेश दे आऊँ तब खाना। पर जब सुरसा ने मुँह फाड़ा तो उसे चकमा दे दिया, क्योंकि हनुमान के पास अणिमा व गरिमा सिद्धियाँ हैं, साथ ही यह प्रत्युत्पन्नमति भी है कि कैसे उनका उपयोग करना है।

समाज में व्याप्त सदाचार का एक नियम यह भी था कि एक बार चकमा खाकर सुरसा ने हनुमान को छोड़ दिया।

हनुमान की बुद्धि, सरलभाव, आदरपूर्ण व्यवहार आदि का परिचय हमें यहाँ मिलता है। लंका पहुँच कर पहले विभीषण की रामभक्ति पहचान कर सीता का पता पाते हैं। अशोक वाटिका में पहले एक पेड़ पर छिपकर परिस्थिति देखते हैं। फिर राम की मुद्रिका गिराकर और छोटा रूप धरकर सीता के सम्मुख आये, सारी बातें बताई और आश्वासन दिया कि राम जल्दी ही वानर सेना के साथ आकर रावण का वध करेंगे।

सीता को संदेह हुआ कि ऐसे छोटे वानरों की सेना लेकर रावण को कैसे हराया जायेगा, तब अपना विराटकाय रूप भी दिखाया। सीता के प्रति मातृभाव रखते हुए फल खाने के लिये सीता की अनुमति माँगी। फल खाने के बहाने वाटिका उजाड़ी। पकड़ने जो राक्षस आये, उन्हें मार भगाया, रावण ने अपना पुत्र अक्षय कुमार भेजा, उसका भी वध किया। फिर रावण का बड़ा पुत्र मेघनाद आया, जिसने ब्रह्मास्त्र छोड़ा। उसका मान रखते हुए हनुमान बंध गये और आखिर लंका दहन कर रावण का मनोबल घटाने का पुण्यकाम करके ही लौटे।

विभीषण, मंदोदरी, सचिव प्रहस्त आदि ने रावण को समझाया परन्तु वह अहंकार में भरा था। अन्य सभी उसके अहंकार को बढ़ा रहे थे। इस पर तुलसी कहते हैं

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।।
सु.का./37।।

अर्थात् सचिव, वैद्य और गुरु को सत्य बताना चाहिये, भले ही वह प्रिय ना हो।

विभीषण को जब तक राम का पता नहीं था, रावण के दुर्वर्तन को जानकर भी उसे छोड़ नहीं सकता था। परन्तु हनुमान के निमित्त राम को आया जानने के पश्चात वह नहीं रुका और समझाने से परे होते रावण को छोड़ सत्शील राम के पक्ष में गया।

हनुमान से सीता का कुशल जानने के बाद राम के लिये लंका पहुँचने के लिए समुद्र को पार करना आवश्यक था। नीति का पालन करते हुए राम ने प्रथमतः समुद्र के समीप तीन दिवस रात्रि प्रतीक्षा की कि समुद्र उनके लिए रास्ता छोड़ेगा। परंतु तीन दिनों के बाद जब समुद्र नहीं माना तो राम ने अपना सामर्थ्य दिखाया। जैसे ही राम ने धनुष पर बाण चढ़ाया तो समुद्र ने जाना कि अब कुशल नहीं। स्वयं प्रकट होकर राम को युक्ति बताई कि राम की सेना के नल और नील सेतु बना सकते हैं। इस प्रकार रामसेतु बना।

लंका के लिये प्रस्थान से पहले भगवान शिव के लिंग की स्थापना करते हुए और शिव का आशीर्वाद लेने के बाद ही राम ने सेतु को पार किया और लंका पहुँचे। रामेश्वर के लिए राम का वचन है कि जो गंगाजल ला कर यहाँ चढ़ायेगा उसे मुक्ति मिलेगी।

हमारी समन्वयकारी संस्कृति का यह सुंदर उदाहरण है कि आज भी सुदूर उत्तर दिशा से गंगोत्री या हरिद्वार से गंगा जल लाकर दक्षिण के रामेश्वर लिंग पर चढ़ाया जाता है। यह ऐसी परंपरा है, जो देश की एकात्मता के लिए अत्यंत आवश्यक और उपयोगी थी और उनके लिये समग्र उत्तर है, जो कहते हैं कि अंग्रेज आने से पहले भारत कोई एकात्म देश नहीं था।

लंकाकाण्ड

मासपारायण 25

यह अंश मुख्यतः अंगद का पराक्रम व कूटनीति दर्शाता है। लंका पहुँचकर राम ने पहले रावण के पास दूत भेजना उचित समझा और इस काम के लिये अंगद को चुना।

दूत के रूप में अंगद ने रावण को पहले तो उसका बड़प्पन बताया कि तुम पुलस्त्य के नाती हो, तुमने शंभू और ब्रह्मदेव को प्रसन्न किया हुआ है, तुमने सभी लोकपाल जीते हैं, तुम मेरे पिता के मित्र थे इत्यादि। बस थोड़े से अभिमान के कारण तुमने सीता का हरण किया है। उसे वापस लौटा दो।

इसके बाद अंगद रावण को उकसाने वाली भी बात करता है। कहता है कि यदि तुम त्राहि-त्राहि पुकार लगाकर क्षमा माँगो तो राम तुम्हें अभय दे देंगे। एक तरह से उसका हेतु यही दीखता है कि युद्ध हो और रावण का वध हो। जब रावण अपने सामर्थ्य को बखानता है तो रावण को जलाने हेतु कहता है-बताओ कि रावण कितने कितने है- हमने तो एक रावण की बात सुनी जो पाताल गया था और जिसे बच्चों ने बहुत मार-मार कर सताया। दूसरा वह जिसे सहस्रबाहु ने बांधकर रखा और ऋषि पुलस्त्य ने छुड़ाया। तीसरा वह जिसे बालि ने काँख में दबाकर रखा। तो रावण, इनमे से तुम कौन से रावण हो।

फिर वह रावण की सभा में अपना पैर गाड़कर आह्वान करता है कि जो कोई बलवान हो तो मेरा पाँव उखाड़े कोई उसे डिगा नही पाता, जिस कारण रावण का मनोबल गिरता है।

मासपारायण 26

मेघनाद-लक्ष्मण युद्ध, संजीवनी आख्यान-यह भाग हनुमान के विभिन्न पराक्रमों से भरा है।

अन्ततः युद्ध आरंभ होता है। रावण को अहंकार था कि वानर राक्षसों के भक्ष्य हैं। लेकिन वानर तो राक्षसों पर भारी पड़ रहे थे। केवल मेघनाद था, जो राक्षसों की ओर से विकट युद्ध कर रहा था।

मेघनाद की छोड़ी गई शक्ति से लक्ष्मण मूर्छित होकर गिरते हैं। मेघनाद उठाकर ले जाना चाहता है, परन्तु पृथ्वी का भार उठाने वाले अनन्त को वह कैसे उठा पाता। पश्चात् हनुमान उन्हें उठाकर राम के पास लाते हैं। जाम्बवंत के निर्देश पर हनुमान सुषेण वैद्य को भी घर समेत उठा लाते हैं। फिर सुषेण के निर्देश पर संजीवनी लाने जाते हैं। राह में रावण के आदेश से कालनेमि ने माया बिछाई। एक सुंदर सरोवर, वाटिका और मुनिवेष में स्वयं। हनुमान को सरोवर स्नान करने को कहा, जिसमें एक महा भयंकर मगरी थी। जब वह हनुमान के हाथों मरने लगी, तब उसने भेद खोला कि यह मुनि नहीं राक्षस है। फिर उसे भी मारकर हनुमान आगे चले और उस पर्वत को ही उखाड़ लिया, जिस पर सुषेण की बताई जड़ी-बूटी थी। पर्वत लेकर उड़ते हुए अवधपुरी के ऊपर से जाने लगे तो निशिचर समझकर भरत ने तीर मारकर नीचे गिराया।

इस प्रसंग में हम उपासना तत्त्व की सिद्धि देख सकते हैं। गिरकर मूर्छित होते हनुमान के मुख से रामनाम सुनकर भरत व्याकुल हुए। किसी उपाय से मूर्छा दूर नहीं हो पाई। तुलसी बखानते हैं कि भरत ने क्या प्रतिज्ञा कही और क्या फल निकला-

जौं मोरें मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया।।
तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला।।
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा।।
ल.का./58/6-8।।

यह एक अच्छी बात हुई, क्योंकि इससे भरत को राम का समाचार मिला।

युद्ध में आगे राम ने कुंभकरण को मारा, परन्तु माया का अवलम्ब कर रावण सुत मेघनाद ने नागपाश में राम व लक्ष्मण को बाँध लिया।

शिव कहते हैं- हे पार्वती, जिसका नाम लेकर ज्ञानी मुनि अपना भवबंधन काट पाते हैं, वह श्रीराम मनुष्यरूप की लीला टिकाने हेतु नागपाश में बंदी हो गये और तभी छूटे जब गरुड़ ने आकर सारे नागपाश काटे। मेघनाद माया को बढ़ाने हेतु अगला यज्ञ कर मायावी युद्ध खेलना चाहता था, परन्तु पहले ही लक्ष्मण ने उसका वध कर दिया। इसके बाद स्वयं रावण को युद्ध के लिये आगे आना पड़ा।

भारतीय संस्कृति में पराक्रम की भी अति आवश्यकता कही गई है। रावण से युद्ध करते राम के निमित्त तुलसी ने एक वीर योद्धा के गुण गिनाते हुए बताया कि अन्य भौतिक उपकरण न होने पर मानसिक बल का अवलम्ब कैसे करें। रावण के सम्मुख राम विरथ नही हैं। राम के पास विजय दिलाने वाला रथ है, जिसमें

शौर्य और धैर्य दो चाक हैं, सत्य और शील इसकी ध्वज पताका हैं, बल-विवेक-दम-परहित ये चार अश्व हैं, इनमें लगाम के लिये क्षमा व कृपा हैं, ईश भजन ही इसका सारथी है, वैराग्य और संतोष इसकी ढाल-तलवार हैं। दान परशु है, बुद्धि ही शक्ति है, विज्ञान इसका कोदंड (धनुष) है, अमल-अचल मन इसके तूणीर हैं, यम-नियम बाण हैं और विप्र-गुरु पूजन इसका अभेद्य कवच है।

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।।
ल.का./80क।।

अर्थात जो ऐसे धर्ममय रथ का, ऐसे उपकरणों का धनी हो, उसकी विजय निश्चित है।

एक प्रकार से भारतीय संस्कृति का निचोड़ तुलसीदास ने इन चार चौपाइयों में बताया है। ऐसे रथी राम के लिये अगले दिन इंद्र ने अपना दिव्य रथ पठाया और विभीषण की बताई युक्ति से राम ने रावण का वध किया।

मासपारायण 27

यह समाचार सीता को सुनाने और लिवाने के लिये हनुमान वाटिका आये।

राम के समीप पहुँचने पर, राम ने उन्हें अग्निपरीक्षा के लिये कहा। तुलसी कहते हैं कि इस प्रकार जो मूल सीता थी, वह अग्नि से बाहर हुई और यह छायारूप सीता अग्नि में समा गई।

इसके बाद विभीषण का राजतिलक करवाकर राम ने सबको पुष्पक विमान में बिठाया और अयोध्या लौट चले।

उत्तरकाण्ड

मासपारायण 28, 29, 30

चौदह वर्ष की वनवास की अवधि समाप्त होने में और भरत सहित सभी अयोध्यावासियों की प्रतीक्षा समाप्त होने में एक ही दिन बचा। इसका व्याकुल कर देनेवाला वर्णन तुलसी ने किया है।

राम का कोई समाचार न मिलने के कारण भरत ने अपने को कोसते हुए अपना आयुष्य समाप्त करने का प्रण लिया। सारे राजवैभव को त्याग भरत कुशासन पर रहते हुए कंदमूल का आहार लेते हैं। भरत का जटाजूटधारी तापसी शरीर कृश हो चुका है, रामविरह में अश्रुजल बह रहा है, ऐसे में विप्ररूप धरकर हनुमान समाचार देने आये तो भरत की क्या अवस्था हुई होगी, वह वर्णन विह्वल कर देता है। भरत का एक ही प्रश्न है कि क्या कभी राम को भरत का स्मरण हुआ है। ऐसे भरत के लिये और अयोध्यावासियों के लिये, ठीक विहित दिन राम का पहुँचना अपार प्रसन्नता देने वाला था। इसी कारण जो दीपोत्सव मनाया गया, उसकी अविरत परंपरा आज भी भारत देश में चली आ रही है।

राम, भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न के बंधुप्रेम ने समस्त भारतीय समाज के लिये एक अभूतपूर्व आदर्श निर्माण किया, जिसका समकक्ष पूरे संसार में कहीं नहीं मिलता। ऐसा ही आदर्श श्रीराम ने अपने राजधर्म में किया, जिस कारण रामराज की संकल्पना, जो उत्तरकाण्ड के दोहा 20 की चौपाइयों में वर्णित है, वह आज भी सुप्रशासन का महत्तम मापदण्ड बना हुआ है। तुलसीदास काकभुशुण्डि के मुख से कहलवाते हैं कि जब ऐसा रामराज्य होता है और सारी प्रजा उत्तम धर्मपालन में रहती है, तब प्रकृति का कोप भी नहीं होता, क्योंकि तब पंचभूत भी अपनी मर्यादा का पालन करते हैं।

अंत में तुलसी के शब्दों में-

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।।
उ.का./12ग/छं.1/1।।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं।।
उ.का./12ग/छं.6/4।।

अर्थात् राम सगुण व निर्गुण, दोनों प्रकार से संसार में व्याप्त हैं, फिर भी हम तो सगुण रूप के पदकमल के ही अनुरागी हैं।

हर घर मानस को पहुंचाओ, रोग शोक भय दूर भगाओ

अरविंद तोमर की पुत्री

पिंटू झा

श्रवण कुमार

नरेश कुमार

रामचरितमानस का हृदय है अयोध्याकांड

अयोध्याकांड समूचे रामचरितमानस को परिभाषित करने वाला बिन्दु है। जीवन का लक्ष्य, प्रभु राम के अवतरण का उद्देश्य, परिवार का प्रेम, माता और पिता का प्रेम, भाई और भाई का प्रेम, ऋषियों और गुरुजनों की सर्वोपरिता, समाज के हर स्तर के हर व्यक्ति से स्नेह एवं लक्ष्मण और सीता का त्याग - रामकथा का बीज मंत्र कहा जा सकता है।

प्रो., डॉ. शेख शहेनाज
हिंदी विभागाध्यक्ष, हुतात्मा जयवंतराव पाटील महाविद्यालय, हिमायतनगर, नांदेड

रामचरितमानस में प्रारंभ में मंगलाचरण के रूप में शिव, सीता-सहित श्रीराम की तथा गुरू के चरण कमल की संस्कृत भाषा में वंदना है। इस वंदना के पश्चात द्वितीय सोपान में अयोध्याकांड की कथा-प्रारंभ होती है। राजा दशरथ गुरु वशिष्ठ के पास जाकर राम को युवराज बनाने की अभिलाषा प्रकट करते है। गुरु वशिष्ठ बड़े प्रेम से राम के राज्याभिषेक की तैयारी करने को अपनी अनुमति देते हैः-

बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु।।
अयो.का./4।।

सभी अयोध्यावासी राम-राज्याभिषेक की तैयारी में लग जाते हैं। अयोध्या अनेक प्रकार से सजाई जाती है। सभी नर-नारी आनंद से भर जाते हैं। राम-सीता को मंगल शकुन होने लगते हैं। वे परस्पर कहते हैं कि ये मंगल शकुन भरत के आने के सूचक हैं। राम के राजतिलक की बात सुनकर सारा रनिवास प्रेम और आनंद में पुलकित हो उठता है।

अयोध्यापुरी में मंगलसूचक विविध प्रकार के बाजे बज रहे हैं। नगरवासियों का आनंद वर्णन से परे है। किंतु देवताओं को अयोध्या का यह आनंद इस प्रकार नही भाता, जिस प्रकार चोर को चाँदनी रात्रि नहीं सुहाती। वे सरस्वती से विनती करते हैं। सरस्वती अपने कार्य से आगे का मंगल समझकर अयोध्या में आती हैं और मंथरा को 'अपयश की पिटारी' करके चली जाती है। मंथरा कैकेयी के मन में सौतिया-डाह भरने में सफल हो जाती है और रानी कैकेयी राजा दशरथ को कोप-भवन में बुलाकर राजा से दो वरदान- राम को चौदह वर्षो का वनवास और भरत को राज-सिंहासन देने की माँग करती हैं। इस बात को सुनकर राजा मूर्छित हो जाते हैं। कैकेयी पर इसका कोई प्रभाव नही पड़ता है। कैकेयी सुमंत से राम को बुलवाती है। राम सारा प्रसंग समझकर हर्षित हो जाते हैं और पिता को प्रणाम करके माता कौशल्या से आज्ञा लेने को चले जाते हैं। राम के वन जाने की बात सुनकर सीताजी और लक्ष्मण साथ चलने को तैयार हो जाते हैं।

अयोध्याकांड समस्त 'रामचरितमानस' का केंद्र बिंदु है। बालकांड में राम की बाल-लीला के साथ समाज-द्रोही तत्व ताड़का, सुबाहु आदि को मारने की घटनाएँ सामने आती हैं। राम के राज्याभिषेक का भंग ही आगे के रामचरितमानस का कारण बनता है। जिस उत्साह से राम ताड़का और सुबाहु का वध करते हैं, उसी उत्साह से प्रतिज्ञा करते हुए देखे जाते हैं।

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।।
अर.का./9।।

राम जिस वीरत्व का प्रदर्शन धनुष-तोड़ने में करते हैं, उसका विकास खर-दूषण आदि राक्षसों के वध तथा सकुल-रावण के विनाश में होता है। अयोध्याकांड का कथासूत्र 'मानस' की कथा के अंत तक पिरोया रहता है। 'अयोध्याकांड' में राम राज्याभिषेक छोड़कर वन चले जाते हैं। रावण वध के उपरांत अयोध्या लौटने पर ही उनका राज्याभिषेक 'उत्तरकांड' में होता है।

समस्त रामकथा का केंद्र-बिंदु होने के साथ-साथ 'अयोध्याकांड' काव्य सौंदर्य, भाव सौंदर्य, मार्मिक चित्रण, परिवारिक स्नेह, लोक-संस्कृति, मातृ-भक्ति आदि का भी अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है। पुत्र का कितना पावन आदर्श है, जो पिता का वचन पूरा करने के लिए वन को चल देता है। सीता जैसी आदर्श नारी कहाँ मिलेगी, जो यह कहती दिखाई पड़ती है-

प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरूष बिनु नारी।।
अयो.का./64/6,7।।

'भातृ-भगति' और प्रेम का भरत की तरह महान आदर्श कहाँ मिलेगा, जो पयादे पाँव ही राम को मनाने के लिए चल देते हैं और उनकी चरण-पादुकाएँ सिंहासन पर रखकर चौदह वर्ष तक तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हैं। चित्रकूट की सभा तो समस्त भारतीय आदर्शों और संस्कृति का समन्वित रूप है। राम और राम-समाज के संसर्ग से कोल-किरात भी तृप्त हो जाते हैं।

'अयोध्याकांड' में राम-भक्ति की वेगवती धारा प्रवाहित हुई है। भरत तो राम-प्रेम की साक्षात मूर्ति ही हैं। राम के नाते ही निषाद को गुरु वशिष्ठ हृदय से लगाते हैं और भरत, लक्ष्मण के समान उसे भेंटते हैं। वन-मार्ग की ग्राम बालाएँ राम के शील और सौंदर्य पर शिथिल हो जाती हैं। 'श्रीरामचरितमानस' के कथानक में राम का वन-गमन, केवट-प्रसंग, भरद्वाज और वाल्मिकि का प्रसंग, वन-मार्ग में नर-नारियों का आतिथ्य और चित्रकूट सभा आदि प्रसंग जगममाती हुई मंजुल मणियों के समान हैं। अतः अयोध्याकांड 'रामचरितमानस' का हृदय और मेरूदंड है। उसको अलग कर देने से 'रामचरितमानस' ही सौंदर्यहीन हो जायेगा।

यदि हम अयोध्याकांड को 'रामचरितमानस' से पृथक करके देखें, तो प्रबंधात्मकता में वह अपने में पूर्ण खंडकाव्य ही लगेगा। एक स्वतंत्र खंडकाव्य का अपना प्रसंग, विकास और अंत होता है। इसमें वस्तु संविधान भारतीय महाकाव्य की पद्धति का सर्वथा पालन है। कथा प्रारंभ करने से पूर्व कवि शिव, राम की मुखश्री सीता-सहित राम और गुरू की वंदना मंगलाचरण के रूप में करता है। मंगलाचरण के पश्चात् बड़े धूम-धाम से कथा प्रारंभ होती है। राम के राज्याभिषेक के लिए सजी हुई अयोध्या दिखाई पड़ती है। देवता राज्याभिषेक से अपने कार्य में विघ्न समझते हैं। अतः उनकी प्रेरणा से सरस्वती कैकेयी की दासी मंथरा की मति फेर देती हैं। उसके उलटा-सीधा समझाने से कैकेयी राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास और भरत के लिए राज्याभिषेक माँगती है। अयोध्या में कोहराम मच जाता है। राम-सीता और लक्ष्मण-सहित वन-गमन के लिए प्रस्तुत हो जाते है। सुमंत उन्हें रथ में बैठाकर श्रृंगबेरपुर तक पहुँच जाते हैं। वहाँ राम किसी प्रकार समझा-बुझाकर सुमंत को लौटा देते हैं। वहाँ निषाद राजा उनका आदर-सत्कार करते हैं। राम मार्ग में भरद्वाज और वाल्मिकि से मिलते हुए और मार्ग के ग्रामवासियों को नेत्र सुख देते हुए चित्रकूट पहुँचते हैं।

इधर सुमंत के लौटने पर दशरथ राम के वियोग में प्राण त्याग करते हैं। भरत ननिहाल से लौटने पर अयोध्या का सर्वनाश देखते हैं। वे माता कौशल्या और गुरु वशिष्ठ के बहुत समझाने पर भी राज्य ग्रहण नहीं करते। वे राम को लौटाने के लिए अयोध्या से

समाज सहित चित्रकूट भी जाते हैं। वहाँ जनक भी पहुँच जाते हैं। चित्रकूट में कई सभाएँ होती हैं। सबके बहुत आग्रह करने पर भी राम पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए कटिबद्ध रहते हैं। भरत उनकी चरण-पादुकाएँ लेकर लौट आते हैं। वे पादुकाएँ सिंहासन पर रखकर राज्य-प्रबंध राम के प्रतिनिधि के रूप में करते हैं और स्वयं नंदीग्राम में पर्णकुटी बनाकर तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हैं।

अयोध्याकांड की मुख्य कथा राम-वन-गमन है। कथा का उद्देश्य भी राक्षसों के विनाश के लिए राम को वन भेजना है। उनका अवतार अयोध्यापति होने के लिए न होकर राक्षसों के विनाश के लिए हुआ है। अयोध्याकांड से पहले बालकांड में वे कहते हैं-

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।।
बा.का./186/1।।

हे मुनि, सिद्ध और देवताओं के स्वामियों! डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्य का रूप धारण करूंगा।

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई।।
बा.का./186/7।।

तभी तो राम-राज्यभिषेक का आयोजन देखकर देवता शंकित हो जाते हैं कि यदि राम अयोध्यापति हो जाएँगे तो राक्षसों का विनाश कौन करेगा? वे सरस्वती से कहते हैं-

बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ।।
अयो.का./11।।

वनवासी राम चित्रकूट पहुँच जाते हैं। देवताओं का उद्देश्य पूरा हो जाता है। वे आनंदित होकर पुष्पवृष्टि करते हैं और राम को अपने दुःखों का स्मरण कराके घर लौटते हैं।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भए हम आजू।।
करि बिनती दुख दुसह सुनाए। हरषित निज निज सदन सिधाए।।
अयो.का./133/3,4।।

फूलों की वर्षा करके देव समाज ने कहा हे-नाथ! आज हम सनाथ हो गये। फिर विनती करके उन्होंने अपने दुःसह दुख सुनाये और नाश का आश्वासन पाकर हर्षित होकर अपने-अपने स्थानों को चले गये।

मुख्य कथा के साथ-साथ मंथरा, कैकेयी, निषाद आदि की प्रासंगिक कथाएँ भी आ जाती हैं, जो मूल-कथा को पुष्ट करती हुई उसी में मिल जाती हैं। अंत का छंद और सोरठा आशीर्वाद कथन या भरतवाक्य के रूप में है-

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम व्रत आचरत को।।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।।
अयो.का./325/छं.।।

श्रीसीताराम जी के प्रेमरूपी अमृत से परिपूर्ण भरतजी का जन्म यदि न होता, तो मुनियों के मन को भी अगम यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतों का आचरण कौन करता? दुःख, संताप, दरिद्रता, दम्भ आदि दोषों को अपने सुयश के बहाने कौन हरण करता? तथा कलिकाल में तुलसीदास जैसे शठों को हठपूर्वक कौन श्रीरामजी के सम्मुख करता?

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति।
अयो.का./326सो.।।

तुलसीदास जी कहते हैं-जो कोई भरतजी के चरित्र को नियम से आदरपूर्वक सुनेंगे, उनको अवश्य ही श्रीसीतारामजी के चरणों में प्रेम होगा और सांसारिक विषय रस से वैराग्य होगा।

₹अयोध्याकांड' के महान उद्देश्य के अनुकूल उसकी घटनाएँ भी महान हैं। गोस्वामीजी ने राम वन-गमन के मुख्य स्थलों को चुना है। प्रातः, संध्या, नदी-पर्वत आदि का वर्णन है। गंगा और यमुना नदी के बड़े ही सुंदर वर्णन हैं।

₹अयोध्याकांड' में केवल राम वनवास की कथा का वर्णन है। अतः यदि इसे अपने में पूर्ण और सफल खंडकाव्य कहा जाय तो अनुचित न होगा।

राम संपूर्ण रामचरितमानस के केंद्र-बिंदु हैं। अयोध्याकांड में एक ओर परिवार के लोग हैं तो दूसरी ओर उनके भक्त और अनुगत हैं। पात्र और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अयोध्याकांड सर्वोत्तम है। मानस के प्रमुख पात्रों के चरित्र का निवास इसी कांड में होता है। राम का चरित्र सर्वमुख है। वे नायक हैं। वे दैवी और मानवी दोनों ही रूपों में सामने आते हैं। वे सुख-दुःख में निर्लिप्त और निर्विकार रहने वाले हैं। पिता की आज्ञा पालन करने का उन्होंने जो

आदर्श उपस्थित किया, वह विश्वभर में खोजने से नहीं मिलेगा। वे अनिच्छापूर्वक मन मारकर भी दूसरों का मन नहीं तोड़ते। सीता और लक्ष्मण को अयोध्या में रहने के लिए समझाते हैं, किंतु उनके प्रेम हठ के सामने वे उनको साथ ले जाने के लिए विवश हो जाते हैं।

राम भरत के प्रेम के वश में हैं। वे भरत की सदैव सराहना करते हैं। चित्रकूट की सभा में उनके इच्छानुसार कार्य करना स्वीकार कर लेते हैं। राम का स्वरूप संकोची है। वे कटु शब्द कहना जानते ही नहीं। गंगातट पर लक्ष्मण पिता के लिए कुछ कटु शब्द कहते हैं। राम शपथ दिलाते हुए सुमंत से कहते हैं कि वे लक्ष्मण का संदेश पिता से न जाकर कहें।

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई।।
अयो.का./95/5।।

श्रीरामचंद्रजी ने सकुचाकर, अपनी सौगंध दिलाकर सुमन्त्रजी से कहा कि आप जाकर लक्ष्मण का यह संदेश न कहियेगा।

अयोध्याकांड के राम कोमल, सहृदय, संकोची, उदार और पितृ-भक्ति के साकार रूप हैं।

दशरथ, पुत्र वात्सल्य की साकार प्रतिमा हैं। उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता उनका कैकेयी के वश में होना था। वे प्राण देकर भी वचन का पालन करने को तत्पर थे-

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई।।
अयो.का./27/4।।

उन्होंने राम को वनवास देकर जहाँ एक ओर अपने सत्य का पालन किया, वहीं दूसरी ओर प्राण देकर पुत्र-प्रेम का निर्वाह किया।

अयोध्याकांड में भरत का चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। राम के प्रति प्रेम और भक्ति के रूप में उनके चरित्र का सुंदर विकास हुआ है। भरत के लिए राम 'प्रानहुँ के प्रान' थे ही, वे साक्षात् राम के स्नेह के रूप थे-

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू।।
अयो.का./207/8।।

राम-प्रेम और भक्ति में लीन उनकी दशा का चित्रण गोस्वामी तुलसीदास ने निम्न शब्दों में उपस्थित किया है-

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।।
अयो.का./325/1।।

शरीर पुलकित है, हृदय में श्रीसीतारामजी हैं। जीभ राम नाम जप रही है, नेत्रों में प्रेम का जल भरा है।

लक्ष्मण राम के अभिन्न अंग हैं। वे देह गेह आदि सभी का संबंध तोड़कर राम का अनुगमन करते हुए कहते हैं और अपना आदर्श प्रकट करते हैं-

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।।
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।।
अयो.का./71/5,6।।

जगत में जहाँ तक स्नेह का संबंध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेद ने गाया है- हे स्वामी! हे दीनबंधु, हे सबके हृदय के अंदर की जानने वाले, मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं।

दशरथ के विश्वासपात्र सचिव और सारथी सुमंत्र एक महत्वपूर्ण पात्र हैं। वे राम को रथ में बैठाकर गंगा-तट तक ले जाते हैं। राम उनको समझा-बुझाकर वापस लौटा देते हैं। सुमंत्र अयोध्या आकर सबको सांत्वना देते हैं।

अयोध्याकांड में निषाद का महत्वपूर्ण स्थान है। वह राम के पद-पखार कर उनको गंगा के पार करना चाहता था। उसकी स्थिति कथानक के अधिकांश भाग में रहती है। वह राम को चित्रकूट पहुँचाकर लौटता है। भरत के साथ भी वह चित्रकूट जाता है। राम की अनन्य भक्ति के कारण ही वह भरत से राय लेने को सन्नद्ध होता है।

अयोध्याकांड में अन्य पुरूष पात्रों में वशिष्ठ, भरद्वाज, वाल्मीकि, अत्रि और कोल किरात हैं। वशिष्ठ रघुकुल के परम पूज्य हैं। रघुकुल में प्रत्येक कार्य, उनका आशीर्वाद लेकर ही होता है। राम के वन-गमन के पश्चात् भरत उन्हीं की मंत्रणा से राज्य की व्यवस्था करते हैं। भरद्वाज, वाल्मीकि और अत्रि राम के अनन्य भक्त के रूप में आते हैं।

सीता, राम की परम शक्ति हैं। वह अपने पति की सच्ची साथी हैं। उनके लिए पति के साथ कुश-कंटकमय वन में फिरना कोटि अयोध्याओं से बढ़कर है। वे प्रत्येक कार्य राम का मुख देखकर करती हैं। गंगा के पार उतरने में राम को संकोच होता है कि उन्होंने केवट की उतराई नहीं दी। सीता प्रियतम के हृदय की बात समझ जाती हैं और मनि-मुदरी देने के लिए उतार देती है।

ग्राम बालाओं द्वारा परिचय पूछे जाने पर बड़ी शीलता, शिष्टता, और चतुरता से उत्तर देती हैं-

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे।।
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि।।
अयो.का./116/5-7।।

ये जो सहजस्वभाव, सुंदर और गोरे शरीर के हैं, उनका नाम लक्ष्मण है, ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर सीताजी ने अपने चंद्रमुख को आँचल से ढककर और प्रियतम की ओर निहारकर भौंहें टेढ़ी करके, खंजन पक्षी के से सुंदर नेत्रों को तिरछा करके संकेत से उन्हें कहा कि ये मेरे पति हैं।

सीता का चरित्र प्रत्येक दृष्टि से आदर्शपूर्ण है। वे पिता से जाकर मिलती हैं, किंतु उनको वहाँ रात में ठहरने में संकोच होता है। राजा जनक उनके लिए कहते हैं-

पुत्रि पबित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ।।
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी।।
अयो.का./286/2,3।।

राम के समान ही वह भरत से स्नेह करती हैं। उनके इस व्यवहार को देखकर कहना पड़ता है-

देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई।
अयो.का./164/3।।

कैकेयी अयोध्याकांड का ही आधार नहीं, अपितु समस्त रामचरित्र के विकास का कारण बन गयी हैं। यदि वह राम को वन न भेजतीं तो राम का चरित्र न प्रकाशित होता और न उनके अवतार का उद्देश्य ही पूरा होता।

अयोध्याकांड में स्थान-स्थान पर गोस्वामीजी ने ऐसे सुंदर चित्र प्रस्तुत किये हैं, जिनमें कवि-कौशल को देखकर पाठक आश्चर्य में डूब जाता है। केवट प्रसंग को ही ले लीजिए- केवट राम को नाव में बैठाकर पार उतारने से पहले उनके चरण कमलों को पखारना चाहता है। अपनी इस अभिलाषा को वह सीधे न कहकर बड़ी विदग्धतापूर्ण रीति से कहता है, वह चरण पखारने का कारण प्रस्तुत करता है। राम की चरण-रज से जब पत्थर की शिला स्त्री बन गई, तो नाव का तो कहे ही क्या? वह तो पत्थर से बहुत कोमल है।

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।।
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।।
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई।।
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।।
अयो.का./99/3-6।।

श्रीरामजी ने केवट से नाव मांगी, पर वह लाता नहीं। वह कहने लगा-मैंने तुम्हारा मर्म जान लिया। तुम्हारे चरण कमलों की धूलि के लिये सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देने वाली कोई जड़ी है।

जिसके छूते ही पत्थर की शिला सुंदर स्त्री हो गयी। काठ पत्थर से कठोर तो होता नहीं। मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जायेगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जायेगी, मैं लुट जाऊंगा।

केवट की विनोदमयी वार्ता सुनकर राम हँस पड़ते हैं और कहते हैं -

सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई।।
अयो.का./100/1।।

तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाय।

वन मार्ग में सीता द्वारा ग्राम-बालाओं को परिचय देने में कवि की विदग्धता बहुत निखरी है।

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे।।
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना।।
खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृष साजु सराहा।।
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा।।
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं।।
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन।।
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहु ओरा।।
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला।।
अयो.का./235/1-8।।

मोह रूपी राजा को सेना सहित जीतकर विवेक रूपी राजा निष्कंटक राज्य कर रहा है। उसके नगर में सुख, संपत्ति और सुकाल वर्तमान है।

वनरूपी प्रांतों में जो मुनियों के बहुत से निवास स्थान हैं, वही मानों शहरों, नगरों, गांवों और खेड़ों का समूह है। बहुत से विचित्र पक्षी और अनेकों पशु ही मानों प्रजाओं का समाज है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सूअर, भैंस और बैलों को देखकर राजा के साज को सराहते ही बनता है। ये सब आपस का वैर छोड़कर जहाँ-तहाँ एक साथ विचरते हैं। यही मानो चतुरंगिणी सेना है।

पानी के झरने झर रहे हैं और मतवाले हाथी चिंघाड़ रहे हैं। वे ही मानों वहाँ अनेक प्रकार के नगाड़े बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, तोता तथा कोयलों के समूह और सुंदर हंस प्रसन्न मन से कूज रहे हैं।

भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं और मोर नाच रहे हैं। मानों उस अच्छे राज्य में चारों ओर मंगल हो रहा है। बेल, वृक्ष, तृण सब फल और फूलों से युक्त हैं। सारा समाज आनंद और मंगल का मूल बन रहा है।

गोस्वामीजी ने उन्ही स्थलों का विस्तार से वर्णन किया है, जो मार्मिक और अनुभूतिपूर्ण है। चित्रकूट की सभा का विस्तारपूर्ण वर्णन मिलता है। इसमें भरत के महामहिम रूप और राम के शील का सम्यक् निरूपण हुआ है। परंतु जब भरत चित्रकूट में राम से विदा होकर अयोध्या पहुँचते है और वहाँ राम के राज्य की देखभाल की

सुव्यवस्था करके स्वयं तप करते हुए चौदह वर्ष की लंबी अवधि बिताते हैं, तब संक्षेप में सब बातों का सजीव किंतु केवल उल्लेख करके कथा आगे बढ़ा दी गई है।

अयोध्याकांड में प्रकृति कई स्थलों पर मानवीय भावों की पृष्ठ-भूमि के रूप में प्रकट हुई है। यह उसका संवेदनात्मक रूप है। राम के वन-गमन के समय प्रकृति भीषण हो जाती है।

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी।।
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी।।
घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।।
अयो.का./82/5-7।।

अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है। मानो अंधकारमयी कालरात्रि ही हो। नगर के नर-नारी भयानक जंतुओं के समान एक-दूसरे को देखकर डर रहे हैं।

घर श्मशान, कुटुंबी भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानों यमराज के दूत हैं।

यही दशा भरत को ननिहाल से लौटने पर दिखाई पड़ती है -

श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा।
खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए।।
अयो.का./157/6,7।।

तालाब, नदी, वन, बगीचे सब शोभाहीन हो रहे हैं। नगर बहुत ही भयानक लग रहा है।

श्रीरामजी के वियोग रूपी बुरे रोग से सताये हुए पक्षी-पशु, घोड़े, हाथी देखे नहीं जाते।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी।।
अयो.का./158/1।।

बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते। मानो नगर में दसों दिशाओं में दावाग्नि लगी है।

राम जब चित्रकूट पहुँचते हैं तो उनके दर्शन से चित्रकूट आनंदित हो रहा है। यहाँ पर प्रकृति के उत्साह का वर्णन है-

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा।।
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनँद अनुरागा।।
बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला।।
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू।।
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना।।
अयो.का./278/1-4,8।।

श्रीरामचंद्र की कृपा से सब पर्वत मनचाही वस्तु देने वाले हो गये। वे देखने मात्र से ही दुःखों को सर्वथा हर लेते थे। वहाँ के तालाबों, नदियों, वन और पृथ्वी के सभी भागों में मानो आनंद और प्रेम उमड़ रहा है।

बेलें और वृक्ष सभी फल और फूलों से युक्त हो गये। पक्षी, पशु और भौंरे अनुकूल बोलने लगे। उस अवसर पर वन में बहुत उत्साह था, सब किसी को सुख देने वाली शीतल, मंद, सुगंध हवा चल रही थी।

पवित्र, सुंदर और अमृत के समान अनेकों प्रकार के पत्ते, फल, मूल और कंद हैं।

अयोध्याकांड में प्रकृति ही नहीं अपितु पशु-पक्षी भी मानव के सुख-दुःख में सहयोगी बनकर उपस्थित हुए है जैसे-

बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोबर देखि न जाहीं।।
अयो.का./82/8।।

बगीचों में वृक्ष और बेलें कुम्हला रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता।

हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर।।
अयो.का./83।।

करोड़ों घोडे, हाथी, खेलने के लिये पाले हुए हिरन, नगर के पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर।

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े।।
अयो.का./83/1।।

श्रीराम जी के वियोग में सभी व्याकुल हुए जहाँ-तहाँ खड़े है, मानो तस्वीरों में लिखकर बनाये हुए हैं।

नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर।।
अयो.का./137।।

नीलकंठ, कोयल, तोते, पपीहे, चकवे और चकोर आदि पक्षी कानों को सुख देने वाली और चित्त को चुराने वाली तरह तरह की बोलियाँ बोलते हैं।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगतबैर बिचरहिं सब संगा।।
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृग बृंद बिसेषी।।
अयो.का./137/1,2।।

हाथी, सिंह, बंदर, सूअर और हिरन, ये सब वैर छोड़कर साथ-साथ विचरते हैं। शिकार के लिये फिरते हुए श्रीरामचंद्रजी की छवि को देखकर पशुओं के समूह विशेष आनंदित होते हैं।

अयोध्याकांड में परमार्थ तत्व तथा भक्ति और दर्शन का भी विवेचन हुआ है। श्रृंगबेरपुर के प्रसंग में परमार्थ तत्व का सुंदर निरूपण हुआ है। राम-सीता शयन कर रहे हैं। अर्धरात्रि व्यतीत हो चुकी है। लक्ष्मण और निषाद पहरा दे रहे हैं। लक्ष्मण निषाद से

परमार्थ तत्व का विवेचन करते हैं। निम्न कथन में मनुष्य जीवन का सार-तत्व बताया गया है-

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।
जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।।
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू।।
धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू।।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं।।
अयो.का./91/4-8।।

हे भाई! कोई किसी को सुख-दुःख देने वाला नहीं है। सब अपने ही किये हुए कर्मों का फल भोगते हैं।

संयोग, वियोग भले-बुरे भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन-ये सभी भ्रम के फंदे हैं। जन्म मृत्यु, संपत्ति-विपत्ति, कर्म और काल-जहाँ तक जगत के जंजाल हैं।

धरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहाँ तक व्यवहार हैं, जो देखने, सुनने और मन के अंदर विचारने में आते हैं, इन सबका मूल मोह ही है। परमार्थतः ये नहीं हैं।

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।।
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा।।
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरण अनुरागा।।
अयो.का./92/3-5।।

इस जगत रूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपंच से छूटे हुए हैं। जगत में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिये जब संपूर्ण भोग विलासों से वैराग्य हो जाय।

विवेक होने पर मोहरूपी भ्रम भाग जाता है, तब श्रीरघुनाथजी के चरणों में प्रेम होता है।

राम की भक्ति, जीव को माया से मुक्त करती है। वह साधन ही नहीं अपितु साध्य भी है।

अयोध्याकांड में ज्ञान और भक्ति का समन्वय बड़ी सुंदरता से हुआ है। ज्ञानी भरद्वाज ऋषि जब साधनों का फल भरत के दर्शन को बताते हुए कहते हैं-

सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा।।
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा।।
अयो.का./209/4,5।।

सब साधनों का उत्तम फल हमें लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजी का दर्शन प्राप्त हुआ।

उस महान फल का परम फल यह तुम्हारा दर्शन है। प्रयागराज समेत हमारा बड़ा भाग्य है।

वन में जब राम वाल्मीकि से रहने के लिए स्थल पूछते हैं, तब वाल्मीकि भक्ति के नौ अंगों का वर्णन करते हैं, जिसमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास, तथा आत्म-निवेदन शामिल है। अयोध्याकांड में तुलसीजी ने धर्म-नीति के भीतर साधुमत और लोकमत दोनों का सामंजस्य किया है। साधुमत का अनुसरण व्यक्तिगत साधन है और लोकमत लोकप्रशासन के लिए है। चित्रकूट में भरत की ओर से प्रस्ताव करने के लिए जब वशिष्ठ जी उठते हैं और कहते हैं-

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि।।
अयो.का./258।।

तब राम कहते हैं-

सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किएँ मुदित फुर भाषें।।
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई।।
अयो.का./257/3,4

> तुलसीदासजी लोकमर्यादा के अंतर्गत छुआछूत अथवा अस्पृश्यता को नहीं मानते। गुरू वशिष्ठ निषादराज से बरबस भेंटते हैं। तुलसी लोकमर्यादा के अंदर इतना ही चाहते हैं कि छोटे भले ही अपनी छोटाई का ध्यान रखें लेकिन बड़े अपनी उदारता के कारण छोटों को छोटा न समझें।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू।।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।।
अयो.का./242/5,6।।

फिर प्रेम से पुलकित होकर केवट ने अपना नाम लेकर दूर से ही वसिष्ठजी को दंडवत प्रणाम किया। ऋषि वसिष्ठजी ने रामसखा जानकर उसको जबर्दस्ती हृदय से लगा लिया। मानों जमीन पर लोटते हुए प्रेम को समेट लिया हो।

छोटे-बड़ों के पारस्परिक व्यवहार का भी वे बहुत ध्यान रखते थे। राम-भले ही परब्रह्म के अवतार थे, परंतु वे गुरूजनों की आज्ञा लेकर ही प्रत्येक कार्य किया करते थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि, 'अयोध्याकांड' रामचरितमानस का हृदय और मंजुल मणि है। वह-भाव संपदा और काव्य कला सौंदर्य से परिपूर्ण है। भाव, कल्पना, पात्र, योजना, दृश्य-चित्रण अध्यात्मिक निरूपण आदि सभी कुछ अनूठा है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'अयोध्याकांड' में कवि सर्वथा सफल हुआ है। उसकी तृप्ति भाव प्रवण-मार्मिक स्थानों के वर्णन में ही विशेष रूप से रमी है।

राष्ट्र-रक्षा का तरीका सिखाता है मानस

मनोज कुमार श्रीवास्तव
पूर्व अपर मुख्य सचिव, मध्य प्रदेश शासन

हमास के आतंकी आक्रमण ने इज़राइल को ही नहीं, संपूर्ण विश्व को यह याद दिलाया है कि आतंकवाद कोई व्यतीत मुद्दा नहीं है और हमारे जीवनार्थों के लिए इस आयाम की उपेक्षा एक महंगा सौदा होगा। कुछ अच्छे दिन भी घास की तरह हैं, जिनमें आतंकवाद का साँप सुविधा से छुपा रहता है। हम भारतीय तो अपने सांस्कृतिक अनुभवों से जानते हैं कि साँप घास में ही नहीं, फूल में भी छुपा हो सकता है।

क्या राम के रूप में वाल्मीकि और तुलसी ने आतंक के विरुद्ध एक सांस्कृतिक रूपांकन गढ़ा था? क्या तुलसी यह महसूस करते थे कि मनोविकृत राक्षसों के आक्रमणों को हम तब तक भुगतते रहेंगे, जब तक कि हम अपनी संस्कृति के प्रतिरोधक तंत्र को मजबूत नहीं बनाते। राक्षसों का आतंक मूलतः संस्कृति पर आक्रमण है।

अब्दाल सलाम फराज, जो एक शुरुआती आतंकवादी था, ने अपने पैंफलेट में क्या कहा था? 'जिहाद की अनदेखी ने इस्लाम को वर्तमान पतन की स्थिति में ला दिया है।' क्या यह स्थिति शिक्षादि मानव विकास लक्ष्यों का पीछा सफलता से न करने से पैदा होती है या युद्ध न करने से? फिर तुलना भी यदि हो तो उसकी परिणति दूसरे की रेखा छोटी करने में क्यों हो? लेकिन राक्षसी सोच दूसरी ही होती है। उन्हें लगता है कि तोड़-फोड़, हत्या, लूट-पाट, रक्त वर्षा के जरिये उस भारतभूमि को क्यों न अपवित्र किया जाये जिसका सांस्कृतिक अभ्युदय राक्षसों में गहरी आत्महीनता का अवबोध पैदा करता है। राक्षसों के खुद के कठोर फिक्सेशन होंगे, वे उसी कारण से सांस्कृतिक अवरुद्धता झेल भी रहे होंगे, लेकिन खुद को बेहतर बनाने की जगह वे दूसरों को नष्ट करना चाहेंगे।

आतंक की ताकतों की एक विशेषता निर्दोषों की हत्याएं हैं। वे उस न्यूटोनियम भौतिकी के खिलाफ विद्रोह करती हैं जो कार्य-कारण के सिद्धांत पर आधारित है। वह एक तरह की झक है जो 'कारण' के अनुशासन को भंग करने के विरुद्ध जिद्द बांधे हुए है। उसे स्वैराचार में एक तरह का सशक्तिकरण महसूस होता है। एक घटना (कारण) और दूसरी घटना (कार्य) के बीच आवश्यक व प्रत्यक्ष पारिणामिक रिश्ता न होने पर भी उसे कर गुजरने में आतंकी को लगता है कि वह खुदा हो गया,

क्योंकि इतनी यदृच्छता तो बस उसी भगवान के लिए संभव है। उसको यह भी भरम हो जाता है कि वह खुद ही जैसे एक दिव्य मिशन पर है।

> रावण खुद को खुदा ही समझने लगा था, इसलिए वह निरपराधियों को मारता रहता है। दरअसल, कारण के साथ की गई हत्या भी अपराध है। हमने अपनी सभ्यता को तर्क और कारण की नीवों पर आधारित किया है। आतंकवाद जिस क्षण एक अबोध बच्चे को मारता है, उसे मारता है, जिसे कम से कम उससे निजी तौर पर कोई गिला नहीं था तो वह चीज एक सभ्यतागत सिहरन पैदा करती है।

इन दिनों हम अक्सर पढ़ते रहते हैं कि आतंकवादी नकली पहचान का इस्तेमाल करते हैं। अमेरिका में 9/11 के बाद अल-अदरिस जैसे लोगों का पता चला जो नकली परिचय पत्र बनाने और बेचने का धंधा करते थे। 800 डॉलर प्रति कार्ड की दर पर वह 18 कार्ड प्रतिदिन बेचा करता था। 9/11 के दो अपराधियों-आलोमारी और अल्घमाडी ने, वर्जीनिया निवासी होने के प्रमाण पत्र हासिल कर लिए, जबकि वे मेरीलैंड के मोटेल में रह रहे थे। अलकायदा का ट्रेनिंग मैनुअल आतंकियों को ऐसा रूप धारण करने को कहता है जिससे वह इस्लामी ओरिएंटेशन का नहीं लगे। 20 सितंबर, 2008 को अखबारों में दिल्ली पुलिस के हवाले से खबर थी कि आतंकवादियों ने फर्जी वोटर आइडेन्टिटी कार्ड हासिल कर लिए हैं और देशभर में नकली पहचान के साथ घूम रहे हैं। कहीं होटल में किसी नाम से रह रहे हैं, कहीं प्रोफसर और कहीं छात्र बनकर। ब्रिटेन में 'द सन' ने महज 750 पौंड में एक फर्जी परिचय पत्र हासिल कर लिया था, सिर्फ यह बताने के लिए कि ब्रिटेन में रूप बदलकर रहना कितना आसान है। आतंकी कहता है कि वह अपनी पहचान-स्थापना के लिए संघर्ष कर रहा है, लेकिन सच यह है कि अपनी पहचान छुपाए या बदले बिना वह कहीं भी आतंक फैला नहीं सकता। यह छद्मयुद्ध है, आधुनिक शब्दावली में 'ग्रे वारफेयरश्।

तुलसीदास ने इनके बारे में इसलिए कहा-

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया।।
बा.का./180/1।।

एक अन्य जगह वे लिखते हैं-

करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया।।
बा.का./182ख/4।।

मसक समान रूप कपि धरी।।
सु.का./3/1।।
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना।।
सु. का./4/4।।

तब हनुमानजी ने मच्छर के समान छोटा रूप धारण कर लिया।

क्या यह जैसे को तैसा की रणनीति थी? प्रति-आतंकवाद गणवेशधारी प्रतिरोध नहीं है।

आतंकवाद क्या एक विजयिनी रणनीति रही है? आतंकवाद की परिणतियाँ क्या कभी उसके अंतिम लक्ष्य की ओर पहुँचाती हैं? क्या आतंकवाद कभी एक प्रभावी हथियार के रूप में सिद्धि पा सका है? आतंकवाद की सफलता दर अत्यन्त कम रही है। एक अध्ययन में पाया गया कि 28 आतंकी दलों के 42 नीतिगत लक्ष्यों में से सिर्फ 3 ही किसी हद तक पूरे हो सके हैं। क्यों आज अक्षरधाम, संकटमोचन मंदिरों, इस्लामाबाद के प्रोटेस्टेंट इंटरनेशनल चर्च, अल गरीबा के साइनेगॉग, कश्मीर के मंदिरों आदि पर होने वाले हमलों को देखकर राक्षसी हिंसाचार की वही याद आती है, जो तुलसी ने बालकांड में की।

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।।
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं।।
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई।।
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना।।
बा.का./182ख/5-8।।

> जिस प्रकार धर्म की जड़ कटे, वे वही सब वेदविरुद्ध काम करते थे। जिस जिस स्थान में वे गौ और ब्राह्मणों को पाते थे, उसी- नगर, गांव और पुरवे में आग लगा देते थे। उनके डर से कहीं भी शुभ आचरण नहीं होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरु को कोई नहीं मानता था। न हरिभक्ति थी, न यज्ञ, तप और ज्ञान था। वेद और पुराण तो स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे।

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति।।
बा.का./183।।

राक्षस लोग जो घोर अत्याचार करते थे, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। हिंसा पर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापों का क्या ठिकाना।

द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा।।
बा.का./180/8।।

यज्ञ, हवन और श्राद्ध, इन सबमें जाकर तुम बाधा डालो।

देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं।।
बा.का./205/4 ।।

यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचाते थे, जिससे मुनि बहुत दुःख पाते थे। यज्ञ से ऋषि-मुनियों को ऊर्जा मिलती थी तो आतंकी उसे बाधित करते थे। नये जमाने में एनर्जी ग्रिड से ऊर्जा मिलेगी तो उसे करेंगे। असम की गैस पाइपलाइनों से लेकर कोलंबिया तक आतंकी राक्षस प्रतिद्वंद्वियों के ऊर्जा-चक्रों पर आक्रमण करना हमेशा से चाहते रहे, करते रहे।

यह नहीं कि राक्षस संस्कृति के ध्वजवाहकों को मारकर ही संतुष्ट हो जाएंगे कि वे सिर्फ अक्षरधाम, संकटमोचन जैसी संस्कृति की सनातन पहचान या ताज, ओबेराय, नरीमन हाउस जैसे नये उभरते हुए युवा और ग्लोबल भारत के बड़े प्रतीकों को लक्ष्य कर ही उपद्रव मचाएंगे, बल्कि जैसा कि वे पहले भी सिद्ध कर चुके हैं कि वे बाजारों में और सड़कों पर चल रहे, रैली में यात्रा कर रहे आम लोगों के भी दुश्मन बने रहेंगे।

आतंकवादियों का असली पंथ हिंसा ही रही है। यदि किसी को उस बारे में थोड़ी सी भी गलतफहमी है तो उसे अलकायदा का ट्रेनिंग मैनुअल पढ़ा दिया जाना चाहिए। उसमें शारीरिक यंत्रणा की कई विधियां दी गई हैं, उन्हें पढ़िए और फिर तुलसीदास द्वारा किए गए राक्षसों के वर्णन को।

हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति।।
बा.का./सो.183।।

हिंसा पर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापों का क्या ठिकाना। हिंसा पर प्रीति की इससे बड़ी अभिव्यक्ति क्या होगी? ये आतंकी राक्षस धर्म परिवर्तन की मांग नहीं करते हैं, वे उसके लिए मजबूर भी नहीं करते हैं। उनका उद्देश्य परिवर्तन नहीं है, विनाश है। उनका लक्ष्य रक्षा-संस्कृति में विनियोजन नहीं है। बल्कि प्रतिद्वंदी समझ ली गई संस्कृति को गंभीर क्षति पहुँचाने का है।

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।।
बा.का./182ख/5।।

ऐसी स्थिति में उपाय क्या है? तुलसीदास के सुंदरकांड में प्रमाण है कि आतंकवाद को उसके घर में घुसकर मारो। राम राक्षसों के आतंकवाद को एक पल के लिए भी वार्तालाप योग्य नहीं मानते, वे उसे जड़ मूल से उखाड़ने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। धरती को निसिचर हीन करने की प्रतिज्ञा।

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।।
अर.का./9।।

लंका आतंक का स्रोत है। यह कोई 'अकेले भेड़िए का आतंकवाद' नहीं है। खर, दूषण, त्रिशिरा, सुबाहु, मारीच कोई वैयक्तिक मनोरोगी नहीं हैं, वे सब स्लीपर सेल्स हैं- या स्लीपर नहीं हैं (सिवाय आध्यात्मिक अर्थों में), बल्कि बहुत सक्रिय हैं। लंका इनका केन्द्रीय कमांड मुख्यालय है। ये लोग अपने विकेन्द्रित काम करें भी तो भी उनकी अंतिम शरण्य और निष्ठा वही राक्षसी लंका है।

राक्षसों के आतंकी हमले तब तक कारगर होंगे ही नहीं जब तक कि उन्हें हथियारों, पैसों, आसूचनाओं आदि के बारे में आश्वस्ति न रहे। लंका आतंक का निर्यात भी करती है और प्रायोजन भी। यदि कभी उसके आतंकियों की ज्यादा पिटाई पड़ जाये तो वे रोएंगे अपने उसी अभयारण्य में जाकर, जहाँ शूर्पणखा रोई थी, रावण के सामने। आतंकवाद लंका की राज्यनीति (स्टेट पॉलिसी) का साधन (इंस्ट्रूमेंट) है, वह लंका की कूटनीति का प्रतिस्थापक है।

जिस तरह ईरान ने हिजबोल्लाह को लेबनान में इस्तेमाल किया, रावण मारीच और सुबाहु, शूर्पणखा-खर-दूषण-त्रिशिरा का इस्तेमाल करता है। रावण राम से युद्ध नहीं शुरू करता, वह

तो सिर्फ उकसावा देता है। तय तो राम को करना है कि क्या युद्ध किया जाए, अभेद्य लंका के विरुद्ध।

मुझे याद है कि कभी हिन्दी साहित्य के एक बुद्धिजीवी ने अपनी पत्रिका के संपादकीय में हनुमान के लंका दहन का उदाहरण देते हुए उन्हें इतिहास का प्रथम आतंकवादी कहा था। मेरे पास दकन क्रानिकल का दस जनवरी, 2002 का वह अंक आज भी है, जिसमें इस संपादकीय की खबर बनाई गई थी। लेकिन संभवतः उन बुद्धिजीवी ने राक्षसी आतंक की यह पूरी पृष्ठभूमि नहीं पढ़ी होगी। उन्होंने नहीं पढ़ा होगा तुलसी का वह वर्णन-

जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं।।

बा.का./182ख/6।।

जिस-जिस स्थान में वे गौ और ब्राह्मणों को पाते थे, उसी नगर, गांव और पुरवे में आग लगा देते थे। तो उसकी परिणति यह होनी ही थी कि वह एक दिन आता जब-

जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला।।

सु.का./25/2।।

नगर जल रहा है, लोग बेहाल हो गये हैं। आग की करोड़ों भयंकर लपटें झपट रही हैं।

हनुमान का लंका-दहन तो राक्षसों के आतंकी ठिकानों को, उनके प्रशिक्षण कैंपों को, वहीं घुसकर भस्मसात करना है। हनुमान प्रतिक्रिया तो खतरों को झेलकर त्रस्त हो चुके लोगों की ओर से की गई प्रतिक्रिया है। तुलसी ने इसे स्पष्ट किया है-

साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा।।

सु.का./25/5।

साधु के अपमान का यह फल है कि नगर अनाथ के नगर की तरह जल रहा है।

क्या यह प्रति-आतंकवाद था? बालाकोट जैसी प्रतिक्रिया उसी शासन से आ सकती है जो अपनी सांस्कृतिक स्मृति की अस्मिता को सुरक्षित रखना चाहता हो। तुलसी ने इस स्मृति को अपनी कलम से रेखांकित किया है, भारत के सैनिकों ने इसे अपने साहस से करके दिखा दिया।

श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ।
जीवन के झंझावातों से करें दूर।

सुशील तिवारी

चंद्र कुमार शुक्ला

विकास तिवारी

दीपक बिष्ट

अश्वनी कुमार तिवारी

विरेंद्रानंद

दाम्पत्य प्रेम

सुदृढ़ दाम्पत्य संबंध-मानस की प्रेरणा से संभव

राम के दाम्पत्य जीवन में जिस गहरी मर्यादा के दर्शन होते हैं वह भारतीय समाज के लिए प्रेरणादायक है।

दाम्पत्य-प्रेम का पूर्ण आदर्श और उत्कट प्रेम का निदर्शन राम और सीता के दाम्पत्य-प्रेम में दिखाई देता है। सीता के लिए पति का साथ निभाना सर्वोपरि आदर्श है। वे हर परिस्थिति में राम के साथ वन जाने को तैयार होती हैं। वस्तुतः दाम्पत्य प्रेम भारतीय कुलवधू का सनातन जीवन सत्य है। भारतीय संस्कृति के मान बिन्दु पर स्थित पति-पत्नी के प्रेम की मिसाल है।

आनन्द प्रकाश त्रिपाठी
आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी व संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.

मध्ययुगीन भारत में भक्तिकाल सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण का स्वर्णिम काल था, जिसका मुख्य आधार प्रेम और भक्तिभाव था। मानवीयता की प्रतिष्ठा, उदात्त चेतना के उत्कर्ष और मानव के हृदयगत भाव-सौंदर्य के उत्कर्ष का भी समय था। संपूर्ण सृष्टि प्रेम के आकर्षण में निबद्ध है। उसके मूल में रामतत्त्व की उपस्थिति है। भक्ति के मूल में प्रेम है, जो ईश्वर को अर्पित है। समस्त चेतन और अचेतन के बीच प्रेम की व्याप्ति है। भारतीय जनमानस को प्रेम से आप्लावित करने वाली भक्ति का विराटत्व उस काल के संतों, भक्तों, ज्ञानियों और आध्यात्मिक व्यक्तियों के जीवन और उनकी रचनाओं में विद्यमान रहा है।

भारतीय ज्ञानपरंपरा और अध्यात्ममूलक काव्य में प्रेम की व्यापक महत्ता निरूपित हुई है। वास्तव में संपूर्ण भक्ति व ज्ञान साधना की निर्मिति में प्रेम एक महत्त्वपूर्ण कारक है। कृष्णभक्ति और रामभक्ति काव्यधारा के कवियों सूरदास, नंददास, परमानंददास आदि और

रामभक्ति काव्यधारा के महान् कवि गोस्वामी तुलसीदास, महात्मा बनादास आदि का काव्य, प्रेम और भक्ति का अथाह सागर है, जिसमें अवगाहन करते हुए मानवजाति को जीने की नई राह मिलती है। अगाध श्रद्धा और भक्ति के शिखर पर पहुंचकर मानवता का अखण्ड सूर्योदय होता है।

तुलसीदास लोक-मंगल के महान कवि हैं, सामाजिक समरसता उनके काव्य की आधारभूमि है। राग और विराग की भावभूमि पर रामकथा रची गई है। श्रीरामचरितमानस में गोस्वामीजी ने राम की संघर्षमय जीवनगाथा ही नहीं, वरन् जीवन-जगत् के विविध पक्षों और अध्यात्म का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। कथानायक श्रीराम मानव हैं, प्रभु हैं, भक्तजनों के प्रति उनका अपार प्रेम है। वे कृपालु हैं, प्रेमालु और दयालु हैं। कृपानिधान हैं, सर्वेश्वर हैं। सबसे ऊपर उन्हें प्रेम प्यारा है।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा । जानि लेउ जो जाननिहारा।।
अयो.का./136/1।।

तुलसीदास मुगलकालीन भारत की हिंदू जनजागृति के अग्रदूत हैं। उनके श्रीराम, हिंदू आस्था और भक्ति के संबल और भारत की आध्यात्मिक आस्था के प्रेरणास्रोत हैं। उनकी मानवीय मूल्यों के सर्जक और संरक्षक की महती भूमिका रही है। मनुष्य के जीवन में आदर्श और मर्यादा के कालजयी प्रतिष्ठापक हैं। वे स्वयं में ही मूर्तिमान धर्म हैं। तुलसीदास के समय सामंती समाज में बहुविवाह व बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन था। सामंतों और राजा-महाराजाओं के जीवन में बहुपत्नी विवाह की परंपराएं रूढ़ हो चुकी थीं, जिससे पुरुष समाज के लिए स्त्री भोग की वस्तु बन चुकी थी।

उस युग में पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में स्त्री और दलित समाज अपनी अस्मिता के लिए चिंतित और व्यग्र था। मुगल शासकों और उनके दरबार में स्त्रियां भोग की वस्तु समझी गई थीं। अनेक रानियों को रनिवास में रखने का चलन था। छोटे-छोटे सामंत भी इस कुरीति के प्रभाव में थे। तुलसीदास ने अपने समय में स्त्री की दुर्दशा और उसके प्रति पुरुषवादी समाज का रवैया और उपेक्षा देखकर श्रीराम के जीवन में स्थापित एक पत्नीव्रत के आदर्श को समाज के लिए उपयुक्त बताया। भारतीय लोकजीवन में एक आदर्श और मर्यादित युगल चरित्र राम और सीता हैं। राम का एक पत्नीव्रत सिद्धांत भारतीय समाज के लिए अनुकरणीय आदर्श है।

हिंदू समाज में दाम्पत्य जीवन की मर्यादाओं का पालन करने की स्थिति कमोबेश तुलसीदास के युग में बनी हुई थी। **रमेश कुंतल मेघ के अनुसार,** 'राम के रूप में उन्होंने अपने एक महान स्वप्न अर्थात् आदर्श तपपूर्ण प्रेम और एक पत्नीव्रत को प्रेयस् श्रेयस् माना है; क्योंकि तत्कालीन समाज के सामंत वर्ग में इन दोनों का ठीक उल्टा था। तुलसी पितृसत्तात्मक समाज में लोकतांत्रिक व्यवस्था के पोषक थे। एक आदर्श समाज की प्रतिष्ठा उनके कथानायक का परमलक्ष्य था। उसमें स्त्री और दांपत्य जीवन प्रमुख था।

सीय राममय सब जग जानी।।
बा.का./7घ/2।।

यानी सीता और राम की इस जग में सर्वत्र विद्यमानता है। सीय राममय जग को देखने की अभिलाषा तुलसीदास ने मुगलकाल में की है। उनके साहस की दाद देनी चाहिए। उन्होंने सम्राट् अकबर के दरबार को भी ठुकरा दिया था। तुलसीदास अपने युग में सबसे विराट् स्वाधीन चेतना के महाकवि हैं। उनके 'राम' युगनायक हैं। उनका स्वत्त्व और एकत्व बोध हमारी सांस्कृतिक चेतना का अवलंब है। एक गहन सनातन धर्म चेतना तुलसी की रचनाओं में अंतःसलिला सी प्रवाहमान है।

तुलसी राम और सीता को एक आदर्श दम्पति के रूप में देखते हैं न कि दंपति परिवार के रूप में। इन दोनों का पारिवारिक जीवन खंडित है। **रमेश कुंतल मेघ के अनुसार,** 'राम का परिवार

'सम्मिलित कुटुंब' न होकर एक 'दम्पति परिवार' हो जाता है, जिसमें ललिता सीता को प्रेम, श्रृंगार, कामना (मृगछाला प्राप्ति) आदि की भी स्वतंत्रता है। यहाँ एक के नये वैयक्तिक तथा प्रेमावेशमय (कौटुंबिक कम) संबंध कायम हो जाते हैं जहाँ वनदेवियाँ सीता की सासुएं तथा वनदेवता ससुर हैं। जहां के पहाड़ ही अयोध्या हैं, पशु-पक्षी कुटुंबी हैं, वृक्षछाल निर्मल दुकूल हैं तथा प्राणनाथ और देवर साथ हैं (संबंध की नवलता)। इस रोमांटिक परिवार में कोमल तथा भोली तथा भीरु सीता कष्टसहिष्णु, विवेकपूर्ण और साहसी हो जाती हैं। सीता और राम का दाम्पत्य-जीवन सुखद नहीं रहा है। अवतारी पुरुष मानकर उनकी मानवीय लीला को स्वीकार किया जाता है। इसलिए एक सच्चे मानव के धूप-छांव भरे जीवन को राम और सीता ने जिया और अपने आदर्श और मर्यादित आचरण से देश की सभ्यता और संस्कृति के लिए जो प्रतिमान रचा वह शताब्दियों तक मानवजाति के लिए त्याग, समर्पण और मूल्याधारित जीवन पद्धति का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा।

दाम्पत्य-प्रेम भारतीय समाज की अनमोल जीवन-पद्धति और संस्कृति है। तुलसीदास के राम व सीता दाम्पत्य-प्रेम के अनुपम उदाहरण हैं। खेद है इनका दाम्पत्य-जीवन सुखद नहीं रहा था। संयोग की अपेक्षा वियोग इन दोनों दम्पति के जीवन को अधिक प्रभावित करता है। यह कहा गया है कि सच्चे प्रेम की कसौटी विरह है, जिस पर प्रेम का उत्कर्ष टिका है।

राम और सीता के झंझावातों से भरे दाम्पत्य-जीवन को याद करके मिथिलांचल समाज आज भी अपनी बेटियों का विवाह अवध में नहीं करना चाहता है। राम और सीता के जैसा दाम्पत्य-जीवन का आशीर्वाद भी स्त्री को स्वीकार्य नहीं है; क्योंकि इनका जीवन संघर्ष और वियोग में व्यतीत हुआ है।

भक्त कवियों ने प्रायः अपने काव्य में दाम्पत्य-प्रेम का चित्रण विविध प्रसंगों में किया है। कबीर, जायसी, तुलसी, मीरा आदि कवियों ने परमसत्ता और भक्त के पारस्परिक संबंधों में दाम्पत्य प्रेम की आदर्शमूलक और कहीं-कहीं प्रतीकात्मक परिकल्पना की है। जायसी, सूर और तुलसी ने अपने काव्यनायकों के मानवीय स्वरूप का वर्णन करते हुए उनके दाम्पत्य जीवन में प्रेम की विभिन्न दशाओं (संयोग एवं वियोग) का जो वर्णन किया है, वह प्रेम की कसौटी पर खरा उतरता है। सूर और तुलसी के काव्यनायक ईश्वर के अवतारी स्वरूप हैं, जिनकी लीलाएँ मानवीय हैं। श्रीरामचरितमानस में प्रेम की मानवीय उपस्थिति हुई है। तुलसी ने राम के दाम्पत्य प्रेम की विस्तृत भूमिका को आदर्श हिंदू दाम्पत्य-प्रेम के मानक पर वर्णित किया है। मानस में राजा दशरथ और उनकी तीन रानियों के दाम्पत्य जीवन की जो झांकी दिखाई गई है, वह बहु-विवाह प्रथा का सजीव, किंतु कटु यथार्थ है। अपनी रानियों के प्रति दशरथ के अनुराग की झलक मिलती है। किंतु, कैकेयी का रूप-सौंदर्य और उसकी वीरता राजा दशरथ को सर्वाधिक आकर्षित करती है। राम के वनवास के मूल में प्रमुख कारण कैकेयी को दिया गया राजा दशरथ का वरदान है, जिसकी पूर्ति उन्हें राम को वनवास देकर करनी पड़ती है।

उस युग में बहुपत्नी प्रथा का दंश दशरथ को अपना प्राण देकर चुकाना पड़ा था। दशरथ और उनकी रानियों की कथा में दाम्पत्य प्रेम का कोई आदर्श स्वरूप नहीं चित्रित हुआ है।

श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में राम और जानकी के दाम्पत्य जीवन और प्रेमादर्श की झलक फुलवारी प्रसंग, वनवास दिये जाने के समय, वनगमन में राम के साथ सीता के चलने की जिद्द, पंचवटी में सीता हरण पर राम की विरहावस्था, अशोक वाटिका में सीता का विलाप आदि कथा प्रसंगों में मिलती है।

पुष्पवाटिका प्रसंग, राम और सीता के प्रेम की उदात्त और सुंदर भूमिका है। तुलसी ने सीता और राम दोनों का परस्पर साक्षात्कार योजनाबद्ध तरीके से पुष्पवाटिका में कराया है। यहां प्रसंगवश **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** का एक कथन याद आ गया है- 'गोस्वामी तुलसीदास ने सीता और राम के प्रेम का आरंभ विवाह से पूर्व दिखाने के लिए ही उनका जनक की वाटिका में परस्पर साक्षात्कार कराया है। पर साक्षात्कार और विवाह के बीच के थोड़े से अवकाश में परशुराम वाले झमेले को छोड़ प्रयत्न का कोई विस्तार दिखाई नहीं पड़ता, अतः रामकथा को इस दूसरे प्रकार की प्रेम कथा का स्वरूप न प्राप्त हो सका।' **(जायसी ग्रंथावली, पृ 27 -28)**

जायसी ग्रंथावली में राजा जनक की फुलवारी में सीता और राम का साक्षात्कार होता है। अपने गुरु विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राम और लक्ष्मण दोनों भाई जनक की पुष्पवाटिका के भ्रमण के लिए पहुंचते हैं। दूसरी ओर जानकी भी गौरी पूजन के निमित्त फूल चुनने के लिए वाटिका में पहुँचती हैं। राम और सीता का यह मिलन संयोग है, दैववशात् भी है। यहाँ दोनों के बीच उत्पन्न प्रेम का पूर्वराग उदित हुआ है। जनक की फुलवारी में राम और सीता के प्रथम साक्षात्कार के लिए कवि ने जिस पवित्र वातावरण का निर्माण और जिस सुंदरता से आदर्श मर्यादा का निर्वाह किया है; वह अनुपम

है। राम अकेले नहीं हैं, उनके साथ छोटे भाई लक्ष्मण हैं और सीता भी अपनी सखियों के साथ प्रस्तुत हैं। यह प्रेम एकांत में किया गया प्रेम नहीं है। समाजानुमोदित प्रेम है, क्योंकि गुरु विश्वामित्र की आज्ञा पाकर ही राम और लक्ष्मण फुलवारी देखने आए हुए हैं और सीता भी गिरिजा पूजन के लिए पुष्पवाटिका में आई हुई हैं।

राम और सीता के हृदय में एक-दूसरे को देखकर जिस प्रेम की उत्पत्ति होती है, वह बहुत मर्यादित और सीमित है। सिया के रूप-सौंदर्य को देखकर राम मुग्ध हो गए। सीता के चंद्रमा के समान मुख को देखकर वे चकोर बन गए। पलकों का गिरना रुक गया है।

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।।
बा.का./229/3,4।।

राम और सीता का एक-दूसरे की सुंदरता से अभिभूत होना और रसास्वादन करना अप्रतिम है। सीता की शोभा देखकर राम ने बहुत सुख पाया। हृदय में वे उनकी सराहना करते हैं किंतु, मुख से वचन नहीं निकलते हैं।

देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा।।
बा.का./229/5।।

सीता की सुंदरता का बखान करते हुए राम कहते हैं कि सुंदरता रूपी घर में दीपक की लौ जल रही है। भवन में अंधेरा था, किंतु सीता की सुंदरता रूपी दीपशिखा को पाकर जगमगा उठा है।

सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई।।
बा.का./229/7।।

प्रथम दृष्टि में ही सीता का राम को पति के रूप में देखना और चिंता एवं विषादयुक्त आनन्दानुभूतिवश नेत्रों में अश्रु आदि का आना, सीता के हृदय में राम के प्रति उत्पन्न प्रेम का परिचायक है।

देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।।
थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें।।
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।
बा.का/231/4-6।।

अपने-अपने दृष्टिपथ से राम और जानकी दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं होना चाहते हैं। सीता आई थीं गौरी पूजन के लिए फूल चुनने वाटिका में, किंतु संयोगवश राम को देखकर सम्मोहित हो गईं। राम के प्रेमपाश में आबद्ध सीता सखियों की चेतावनी के बाद भी अपने को राम के प्रति विमुख नहीं कर पाई हैं। उनका दिल नहीं मानता है और वह किसी न किसी बहाने से राम की शोभा को निरखते रहना चाहती हैं।

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि।।
बा.का./234।।

प्रेम की पराकाष्ठा यह है कि सीता और राम दोनों पुष्पवाटिका से लौटने के लिए विवश हैं, लेकिन उनके हृदय में प्रेमोदय हो गया है। राम को वर के रूप में सीता अपने हृदय में धारण कर चुकी रहती हैं। वे राम के ध्यान में मग्न हो गई हैं -

नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा।।
बा.का./233/4।।

धनुष यज्ञ के अवसर पर सीता के हृदय में राम के प्रति प्रेम की मार्मिक व्यंजना हुई है। सीता के मनोभावों की एक झलक देखिए -

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति।।
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी।।
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही।।
बा.का./234/1-3।।

सीता पति को इष्टदेव मानने वाली नारियों में प्रमुख हैं।

पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
बा.का./235।।

गिरिजा से सीता अपनी मनोकामना पूरी करने की विनती करती हैं। गिरिजा का आशीर्वाद सीता को मिलता है-

एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली।।
बा.का./235/छं.।।

राम और सीता के हृदय में प्रेम की प्रतिष्ठा मिथिला की पुष्पवाटिका में और उसकी परिपक्वता दोनों के मर्यादित दाम्पत्य जीवन की विभिन्न स्थितियों में हुई है।

राम के दाम्पत्य जीवन में जिस गहरी मर्यादा के दर्शन होते हैं, वह भारतीय समाज के लिए प्रेरणादायक है।

सीता के प्रति प्रेम की झलक वनगमन के प्रसंग में विरह के दिनों में विशेष रूप से मिलती है।

गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा राम और सीता के पति प्रेम का जो जीवंत चित्र रामचरितमानस में अंकित किया गया है, उसके संबंध में **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** की यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है-'दाम्पत्य प्रेम का दृश्य गोस्वामीजी ने बहुत ही सुंदर दिखाया है पर बड़ी ही मर्यादा के साथ। सीता और राम के प्रणय की जो प्रतिष्ठा उन्होंने मिथिला में की है उसकी परिपक्वता जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं के बीच पति-पत्नी के संबंध की उच्चता और रमणीयता संगठित करती दिखाई देती है। अभिषेक के समय राम को वन जाने की आज्ञा मिलती है। आनंद उत्सव का सारा दृश्य करुण दृश्य में परिणत हो जाता है।

वास्तव में सीता का राम के प्रति जो प्रेम पुष्प वाटिका में पूर्व अनुराग के रूप में उत्पन्न हुआ था, वह जीवन में निरंतर बढ़ता ही गया है। राम के बिना सीता अयोध्या के राजमहल में नहीं रहना चाहती हैं। वे राम के साथ वन जाने के लिए तैयार होती हैं। कौसल्या कहती हैं कि परिवार, पुरवासियों, मुझको, राजा दशरथ को सीता प्राणों के समान प्रिय है।

परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानबी।।
बा.का./335,छं.।।

वन में न जाने के लिए सासुओं के समझाने का कोई प्रभाव सीता पर नहीं पड़ता है। उनकी अति सुकुमारता को देखकर सासु कौशल्या बहुत विचलित होती हैं। सीता की दशा यह है-

बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता।।
अयो.का./57/2।।

वे सासु से वन जाने की विनम्रतापूर्वक आज्ञा मांगती हैं-

जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ।।
अयो.का./57।।

सीता व्याकुल होकर आगे भी कहती हैं -

चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू।।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना।।
अयो.का./57/3,4।।

सीता के वन जाने की बात जानकर कौसल्या व्याकुल और चिंतित हो उठी हैं। सीता रो रही हैं। कौसल्या कहती हैं कि सीता अत्यंत सुकुमारी हैं तथा सास, ससुर और कुटुंबी सभी को प्यारी हैं।

तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी।।
अयो.का./57/8।।

आगे भी कौसल्या अपनी चिंता व्यक्त करती हैं कि जो सीता पर्यंक, गोद, हिंडोरा में रहीं, वे वन की कठोर धरती पर कैसे चल पायेंगी। वे तो जीवनमूरि हैं, उन्हें बहुत सावधानी से रखना पड़ता है।

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा।।
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ।।
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा।।
अयो.का./58/5-7।।

कौसल्या सीता को बहुविधि समझाने का प्रयास करती हैं और कहती हैं कि घर में रहने में सभी प्रकार की भलाई है। सास-ससुर के चरणों की सेवा करने से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। इसलिए मेरा वचन मान लो ।

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू।।
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई ।।
एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा।।
अयो.का./60/3-5।।

कौसल्या की इच्छा है कि सीता घर में ही रहें, हमें सहारा मिलेगा-

जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा।।
अयो.का./59/7।।

आगे भी वह चुप नहीं रहती हैं। बहुत संकोच करते हुए कहती हैं कि मेरी सीख भरी बातों का तुम बुरा नहीं मान लेना।

राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू।।
अयो.का./60/2।।

सीता को समझाने में कौसल्या की असमर्थता देखकर राम भी सीता को समझाने का बहुत प्रयास करते हैं। सीता को सांत्वना देते हुए वे वन की कठिनाइयों का पूरा ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं, ताकि भयभीत होकर सीता वन जाने का अपना निर्णय त्याग दें और अयोध्या में रुक जायें।

दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा।
जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ।।
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी।।
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना।।
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे।।
कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे।।
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा।।
अयो.का./61/2-8।।

भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल।।
अयो.का./62।।

सीता का पतिपरायण व्यक्तित्व अद्वितीय और भारतीय नारी के लिए प्रेरणादायक है। भारतीय हिंदू स्त्री की मर्यादा, त्याग और समर्पण का सर्वोच्च शिखर है। राम के वचनों को सुन कर सीता विह्वल हो जाती हैं। तुलसीदास कहते हैं-

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के।।
सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चंद निसि जैसें।।
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।।
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी।।
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिध मोर परम हित होई।।
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं।।
अयो.का./63/1-7।।

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान।।
अयो.का./64।।

अब सीता के व्यक्तित्व की दृढ़ता उनके पति प्रेम की पराकाष्ठा है। अंततः उन्हीं की भावनाओं की संरक्षा तुलसी करते हैं। राम भी सीता के कहे हुए वचनों के सम्मुख निरुत्तर हो गये। सीता की सारी बातें कितनी अहम है एक आदर्श पत्नी के लिये। राम के कठोर वचनों को सुनकर सीता दुखी होती हैं।

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान।।
अयो.का./67।।

वन में निशाचरों का भय बताते हुए राम सीता से कहते हैं-

लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी।
अयो.का./62/2।।

वे आगे कहते हैं कि उनका राजमहल छोड़कर वन जाना उचित नहीं है।

रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी।।
अयो.का./62/8।।

लेकिन सीता कोई भी बात समझने को तैयार नहीं होती हैं। पति की सारी बातें सुनकर उनकी आँखें भर आती हैं। वे अपने मन की विह्वलता और अपने पत्नी-धर्म के निर्वाह की प्रतिबद्धता दोहराती हैं। एक भारतीय स्त्री के लिए उसके जीवन में पति का महत्व क्या है? तुलसीदास सीता के शब्दों में कहते हैं-

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू।।
भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।।
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।।
अयो.का./64/3-6।।

सीता का पति-प्रेम सनातन स्त्री-संस्कृति का उन्मेष है। यहां विकल्प की गुंजाइश नहीं है। पति का साथ निभाने से बढ़कर सीता के लिए कुछ भी नहीं है। किंतु पति भी राम जैसा हो। सीता के प्रेम की दृढ़ता एक मिसाल है। वे कहती हैं-

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें।।
अयो.का./64/7,8

कैकेयी के दुराग्रह और वचनबद्धता के दबाववश राजा दशरथ विवश होकर राम के लिए वनवास की घोषणा करते हैं और भरत को अयोध्या का राज्य। राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास कठिन तपस्या थी। कैकेयी की सोची समझी कूटनीति थी और भरत को अयोध्या का राज्य दिलाने का षड़यंत्र। कुबड़ी मंथरा सबसे प्रमुख राजदार थी। राम के साथ लक्ष्मण वन जाने के लिए तत्पर होते हैं। उर्मिला को भी चिंता नहीं होती है, उन्होंने कहीं भी अपना विरोध प्रकट नहीं किया है। भरत और माण्डवी के दाम्पत्य-प्रेम की एक भी झलक नहीं दिखायी है। यहाँ दाम्पत्य-प्रेम गौण है तुलसी के लिए। वनगमन के लिए जब लक्ष्मण तैयार हुए तब राम उन्हें भी समझाते हैं कि तुम्हारे बिना अयोध्या अनाथ हो जाएगी। यहाँ तुम सभी को संतोष दिलाते रहना।

मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा।।
अयो.का./70/3

दाम्पत्य-प्रेम का पूर्ण आदर्श और उत्कट प्रेम का निदर्शन राम और सीता के दाम्पत्य-प्रेम में दिखाई देता है। सीता के लिए पति का साथ निभाना सर्वोपरि आदर्श है। वे हर परिस्थिति में राम के साथ वन जाने को तैयार होती हैं। वस्तुतः दाम्पत्य प्रेम भारतीय कुलवधू का सनातन जीवन सत्य है। भारतीय संस्कृति के मान बिन्दु पर स्थित पति-पत्नी के प्रेम की मिसाल है।

आचार्य शुक्ल ने लिखा है- दाम्पत्य प्रेम का दृश्य भी गोस्वामीजी ने बहुत सुंदर दिखाया है पर बड़ी ही मर्यादा के साथ, नायिका भेद वाले कवियों सा या कृष्ण की रासलीला के रसिकों सा,

लोक मर्यादा का उल्लंघन उसमें कहीं नहीं है। सीता राम के परम पुनीत प्रणय की भिन्न-भिन्न दशाओं के बीच पति-पत्नी के संबंध की उच्चता और रमणीयता संघटित करती दिखाई देती है। अभिषेक के समय राम को वन जाने की आज्ञा मिलती है। आनंदोत्सव का सारा दृश्य करुण दृश्य में परिणत हो जाता है। राम वन जाने को तैयार हैं और वन के क्लेश बताते हुए सीता को घर रहने के लिए कहते हैं। इस पर सीता कहती हैं-

बनदेबीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा।
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।।
कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू।।
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी।।
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे।।
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।।
अयो.का./65/1-6।।

राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
अयो.का./66।।

यदि 14 वर्ष तक मुझे अयोध्या में रखते हैं तो जान लीजिये कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे।

उस युग में एक धर्मपत्नी सीता हैं, जो कभी विपत्तियों से मुंह नहीं मोड़ती हैं। अपने पत्नी धर्म को लेकर सीता अत्यंत सजग हैं। अपना धर्म निभाने के लिए तत्पर रहती हैं। वे अपने सेवाभाव के द्वारा अपना कर्तव्य कर्म करना चाहती हैं। वे अपनी बातों से राम को भाव-विह्वल और निःशब्द कर देती हैं-

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी।।
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।।
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं।।
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें।।
सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी।।
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही।।
अयो.का./66/1-6।।

जानकी के तर्कप्रधान विचारों को सुनकर राम ने समझ लिया कि अब सीता किसी की भी बातें स्वीकार नहीं करेंगी। इसलिए सीता के प्राणों की रक्षा जरूरी है। तुलसी लिखते हैं -

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी सँभारी।।
देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राना।।
अयो.का./67/1,2

और समस्त वाद-प्रतिवाद के बाद राम सीता को अपने साथ वन ले चलने को तैयार हो गये।

नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू।।
अयो.का./67/4।।

भारतीय दाम्पत्य-जीवन की शर्त है कि पति-पत्नी दोनों अभावों में, संकट की हर घड़ी में, दैवीय विपत्ति में, आपदाओं में भी एक दूसरे का साथ निभायें। पुरुष और स्त्री का कोई भेद न रहे। समान अनुभूति हो और एक दूसरे के मनोभावों को समझें। वनवास में राम और सीता दोनों बहुत धैर्य से हर विपरीत स्थिति में सहज रहकर सारी विपत्ति सह लेते हैं।

जंगल में मंगल की अनुभूति सुखद दाम्पत्य जीवन की पहचान है। वन में सीता अयोध्या के सुख की अनुभूति करती हैं।

नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी।।
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा।।
परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा।।
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर। असनु अमिअ सम कंद मूल फर।।
अयो.का./139/3-6।।

वनवास काल में सीता का हृदय राम के प्रेम-रसोद्रेक से आप्लावित है। पति राम के श्रम को देखकर वे कुछ क्षण विश्राम करने के लिए विनय करती हैं, राम के मस्तक का पसीना पोंछती हैं, शरीर पर पड़ी मार्ग की धूल को धोती हैं। वन यात्रा के प्रसंगों में सीता की प्रेमाभिव्यक्ति ही नहीं, बल्कि सेवाभाव की व्यंजना हुई है। सीता के थकी होने का अनुभव करके राम उन्हें शीतल छाया में बिठाते हैं, उनके पांव में चुभे कांटे को निकालते हैं, वल्कल वस्त्र से हवा करते हैं। अपने प्रति राम का प्रेम देखकर सीता भाव-विह्वल होती हैं और राम को बांकी चितवन से निहारती हैं। वन में वीणा बजाकर राम को आनंदित कर उनके श्रम का परिहार करती हैं।

तुलसीदास ने राम और सीता के सुखद दाम्पत्य प्रेम का सुंदर चित्र उपस्थित किया हैं, जो मर्यादित और आदर्शमय है। वन की रमणीयता में राम और सीता का दाम्पत्य जीवन की सुखानुभूति के क्षण अति दुर्लभ और प्रेरणादायक हैं। राम बड़े मनोयोग व प्रेम से सीता का श्रृंगार करते हैं। सीता के अंग-प्रत्यंग पर अनेक धातुओं से पत्र रचना करते हैं और अपने हाथों से आभूषण बनाकर पहनाते हैं। आदि प्रसंगों में पति-पत्नी के पारस्परिक प्रणय की अगाधता, विश्वास और अटूट प्रेम परिलक्षित किया जा सकता है। सीता भी प्राणप्रिय पति राम का संसर्ग पाकर स्वयं को धन्य मानती हैं और राम के प्रेम में निमग्न होकर वह कुटुंब, परिजन एवं सभी को विस्मृत करके पति

के सुख में ही अपना सुख समझकर आनंदित होती हैं।

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी।।
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी।।
अयो.का./139/1,2।।

श्रीराम के प्रति सीता के मन में प्रेम की जो अभिव्यक्ति पुष्पवाटिका प्रसंग में पूर्वराग के रूप में हुई, विवाहोपरांत वनवास काल में वह दांपत्य प्रेम अपने उत्कट रूप में प्रकट होता है। राम के वनवासी जीवन के सुखद और दुखद दोनों ही क्षणों में सीता संगिनी रहीं और एक आदर्श पत्नी का व्रत उन्होंने निभाया। वनवासी जीवन को लेकर उन्हें कोई दुःख और पश्चाताप नहीं होता है। भारतीय आदर्श पत्नी का यह रूप अनन्यतम है। कठिन से कठिनतर परिस्थितियों में पति के साथ उनके लक्ष्य को पूरा करने में वे सदैव सहभागी बनी रहीं। सीता के कोमल रूप को देखते हुए तुलसी ने रामकथा के अधिकांश भावप्रवण कवियों की भांति अयोध्या से निकलकर बाहर सीता के दो-चार डग रखने पर ही उनके विकल होने और पति के गंतव्य स्थान पूछने की तत्परता या हताशा का मार्मिक चित्रण है। अरण्यकाण्ड में सीता और राम की अनन्य प्रीति देखकर सुरपति सुत भी ईर्ष्या करने लगते हैं। सुंदर फूल चुनकर राम अपने हाथों से भांति-भांति के गहने बनाते हैं और सीता को पहनाते हैं।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।
अर.का./श्लोक 2/3,4।।

अत्रि ऋषि की पत्नी सती अनुसूया के आश्रम में सीता पहुंचती हैं। अनुसूया का आशीर्वाद पाती हैं। अनुसूया उन्हें पतिव्रत धर्म की शिक्षा देती हैं। अनुसूया सीता से कहती हैं कि सुनो तुम्हारा तो नाम ही ले लेकर स्त्रियां पतिव्रत धर्म का पालन करेंगी, तुम्हें तो श्रीरामजी प्राणों के समान प्रिय हैं, यह पतिव्रत धर्म की कथा तो मैंने संसार के हित के लिए कही है-

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
अर.का./5ख।।

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं।।
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।।
अर.का./4/10-12।।

सीता तो राजमहल में भी परिचारिकाओं के रहते हुए स्वयं अपना गृहकार्य करती हैं। तुलसी ने श्रृंगार के मर्यादित स्वरूप को चाक्षुष बनाने के लिए शुद्ध दांपत्य प्रेम वर्णित किया है। राम और सीता का जो प्रेम जनकपुर की वाटिका में प्रकट हुआ था, वह दिनानुदिन बढ़ता ही गया। यह प्रेम अपनी गरिमा और महिमा से मंडित होकर इतना लोकपरक बन गया कि उसमें हर भारतीय पति और पत्नी के दांपत्य जीवन का प्रतिबिम्बन है।

तुलसी इस सत्य का उद्घाटन अरण्यकाण्ड में राम के मुख से ही कहलवा देते हैं कि मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य-लीला करूंगा। इसलिए जब तक मैं राक्षसों का नाश करूं, तब तक तुम अग्नि में निवास करो।

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला।।
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा।।
अर.का./23/1,2।।

सीता हरण के साथ ही राम और सीता के जीवन को विरह ने घेर लिया। सीता अशोक वाटिका में राम के बिना विरहिणी का जीवन व्यतीत करती हैं। राम सीता की खोज में वन-वन भटकते हैं। तुलसीदास ने मानस में विरही राम की मनोदशा की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

गोदावरी के तट पर बने आश्रम में सीता को अनुपस्थित देखकर राम विकल हो उठते हैं, लक्ष्मण को समझाने की नौबत आ गई। राम वृक्ष लताओं से सीता का पता पूछते दिखाई देते हैं-

आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना।।
हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता।
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती।।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।।
अर.का./29ख/6-9।।

अभिप्राय यह है कि तुलसी के राम मनुष्य की लीला करने के लिए प्रतिश्रुत हैं।

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं।।
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी।।
अर.का./29ख/15,16।।

प्रियाहीन राम की दशा अच्छी नहीं है। बादलों की गर्जना सुनकर उनका मन भयभीत होता है-

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा।।
कि.का./13/1।।
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा।।
अर.का./36/2।।

प्रभु विरही की तरह विषाद करते हुए अनेकों कथाएं और संवाद कहते हैं।

बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
अर.का./37क।।

मुझे विरह से व्याकुल, बलहीन और बिलकुल अकेला जानकर कामदेव ने वन भौंरों और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया।

नारद भी राम की विरह-वेदना देखकर दुखी हुए और इस सोच में पड़ गए कि यह उनके शाप का प्रभाव है।

बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी।।
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा।।
अर.का./40/5,6।।

रावण द्वारा अपहृत सीता का दुःख अपार है। कभी उन्हें चिंता व्याकुल करती है तो कभी विषादपति राम के वियोग में दुःखी सीता विक्षिप्तावस्था में उन्माद को प्राप्त होती हैं। राम से विलग होने पर सीता की दारुण दशा का हृदयस्पर्शी चित्रण बहुत करुण है।

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी।।
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई।।
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी।।
सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि।।
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी।।
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला।।
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा।।
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी।।
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।।
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना।।
देखा परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता।।
सु.का./11/1-12।।

लंका में आकर वीर हनुमान सर्वप्रथम अशोक वाटिका में पहुंचते हैं। हनुमान से परिचय प्राप्त कर सीता पुत्रवत् हनुमान के सम्मुख अपने वियोगजन्य दुःख की व्यंजना करती हैं। राम के हृदय की कोमलता का स्मरण करते हुए सीता उनकी निष्ठुरता पर आश्चर्य व्यक्त कर उलाहना देती हैं कि उन्हें क्या मेरी याद आती है? हनुमान बताते हैं -

कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई।।
सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक।।
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता।।
बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी।।
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता।।
सु.का./13/4-8।।

हनुमान सीता की खोज के लिए नियुक्त हुए थे। लंका जाते समय राम ने सीता के लिए संदेश भेजा था। उसमें उन्होंने सीता के वियोग में हुई अपनी मानसिक दशा से सीता को अवगत करवाया है। राम की विरहाकुलता, अपने प्रति राम के अपार प्रेम और छटपटाहट को हनुमान से सुनकर सीता अत्यंत व्याकुल हो जाती हैं। तुलसी ने राम की मनःस्थिति का बहुत मार्मिक चित्रण किया है।

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता।।
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू।।
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई।।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहिं माहीं।।
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।।
कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता।।

उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई।
सु.का./14/1-10।।

इसी प्रसंग में रामभक्त हनुमान सीता को यह भी आश्वासन देते हैं-

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई।।
सु.का./15/3

इसी क्रम में उन्होंने सीता को कुछ दिन धैर्य रखने की बात भी कही है।

कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा।।
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं।।
सु.का./15/4,5।।

विरहाकुल सीता के लिए राम से विलग रह पाना असह्य हो गया है। वे विक्षिप्तावस्था में पड़कर स्वयं को अग्नि को समर्पित कर देना चाहती हैं। बस अग्नि का मिलना संभव नहीं हो पाया है। उस क्षण विशेष में सीता को संसार के उन समस्त पदार्थों में अग्नि का आभास मिलता है जो रूप में उस अग्नि के समान हैं। आकाश के अनगिनत तारे आग के अंगारे हैं। चंद्रमा अग्नि पुंज ही है, अशोक के रक्ताभ किसलय भी अग्नि के सगे संबंधी हैं। सृष्टि में अग्नि के इतने भण्डार रहने पर भी सीता को अग्नि नहीं प्राप्त हो रही है। वे सभी से अग्नि के एक कण की याचना कर रही हैं। उनकी यह करुण याचना ज्यों ही अशोक सुनता है, एक लाल अंगार गिरा देता है। वह अशोक कैसा जो शोक न हरे। सीता दौड़ कर उस अंगारे को उठा लेती हैं। किंतु वह अंगारा न होकर राम की अँगूठी है।

रामचरितमानस में हनुमान लंका दहन के उपरांत सीताजी से मिलने अशोक वाटिका में पहुंचते हैं और स्मरण के लिए सीता अपना चूड़ामणि देती हैं। हनुमान को विदा करते हुए वे कहती हैं कि एक माह के अंदर यदि नाथ नहीं आयेंगे तो मैं प्राण दे दूँगी।

मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा।।
कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना।।
सु.का./26/6,7।।

हनुमान को पुत्रवत् मानकर सीता अपने मन की वेदना और गहरी बातें भी कह देती हैं। सीता मन, वचन और कर्म से राम के चरणों की अनुरागिनी है। वियोग की स्थिति में उनके प्राण नहीं निकले हैं। माता सीता की विपत्ति विशाल है। हनुमान प्रार्थना के स्वर में कहते हैं कि हे करुणानिधान उनका एक-एक पल कल्प के समान बीत रहा है।

मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी।।
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।।
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा।
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा।।
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी।।
सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला।।
सु.का./30/4-9।।

हनुमान के मुख से सीता का दारुण दुख सुनकर राम का दुखी और विचलित होना स्वाभाविक है। उनके कमलवत् नेत्रों में अश्रुजल भर गया। जिस सीता को राम ने अपने मन, वचन और शरीर से आश्रय दिया है, उसे स्वप्न में भी विपत्ति नहीं हो सकती है। राम हनुमान के इस उपकार के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना।।
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति की ताही।।
सु.का./31/1,2।।

अपनी पत्नी सीता को प्राप्त करने के उद्देश्य से राम रावण के विध्वंस के लिए युद्ध करते हैं और इसी बहाने आसुरी शक्तियों का विनाश भी करते हैं, जो मानवता के लिए कष्टकारी हो गई थीं।

> **आचार्य शुक्ल का कहना है कि 'राम के समुद्र में पुल बांधने और रावण जैसे प्रचंड शत्रु के मार गिराने को हम केवल एक प्रेमी के प्रयत्न के रूप में नहीं देखते, वीर धर्मानुसार पृथ्वी का भार उतारने के प्रयत्न के रूप में देखते हैं।' (जायसी ग्रंथावली, पृ 29)**

लंका विजय के पश्चात सीता और राम का मिलन होता है। अग्नि परीक्षा देने के लिए सीता तैयार होती हैं। वे मन, वचन और कर्म से राम के प्रति समर्पित हैं। किसी अन्य पुरुष की कल्पना भी नहीं करती हैं। इसी विश्वास की रक्षा अग्नि करते हैं।

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना।।
ल.का./108 /7,8।।

रामचरितमानस में सीता और राम के मिलन का वर्णन अलौकिक है। चूँकि राम की नर लीला का समापन हो चुका है, इसलिए अग्नि में प्रतिष्ठित वास्तविक सीता प्रकट होती हैं। जैसे क्षीरसागर ने विष्णु भगवान को लक्ष्मी समर्पित की थी, वह सीताजी रामचंद्र के वाम भाग में विराजित हुईं। उनकी उत्तम शोभा अत्यंत ही सुंदर है। मानो नये खिले हुए नीलकमल के पास सोने के कमल की कली सुशोभित हों।

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो।।
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली ।।
ल.का./108/छं.।।

निस्संदेह गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य नायक राम और सीता के दाम्पत्य-प्रेम के द्वारा भारतीय ही नहीं, विश्व समाज के लिए भी एक प्रेरक उदाहरण प्रस्तुत किया है। स्त्री और पुरुष के प्रेम संबंधों की परिणति वैवाहिक जीवन में होना सामाजिक मर्यादा का ही अनुपालन है और यह राम और सिया के जीवन में संभव हुआ है। युगों-युगों तक रामकथा लोकजीवन में संचरित रहेगी और मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम हमारी आस्था और भक्ति के प्रेरणापुंज बने रहेंगे।

तुलसी कह गये हैं-

रामकथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी।।
बा.का./30ख/6।।

रामकथा कलियुगरूपी सांप के लिये मोरनी है और विवेक रूपी अग्नि के प्रकट करने के लिये अरणि है।

मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
बा.का./9छं.।।

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी की कथा कल्याण करने वाली और कलियुग के पापों को हरने वाली है।

श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ संस्कारित और अनुशासित बने परिवार

ज्ञान प्रकाश

राहुल शर्मा

सुधीर गुप्ता

रूपेश झा

नरोत्तम मिश्रा

मनोज कुमार

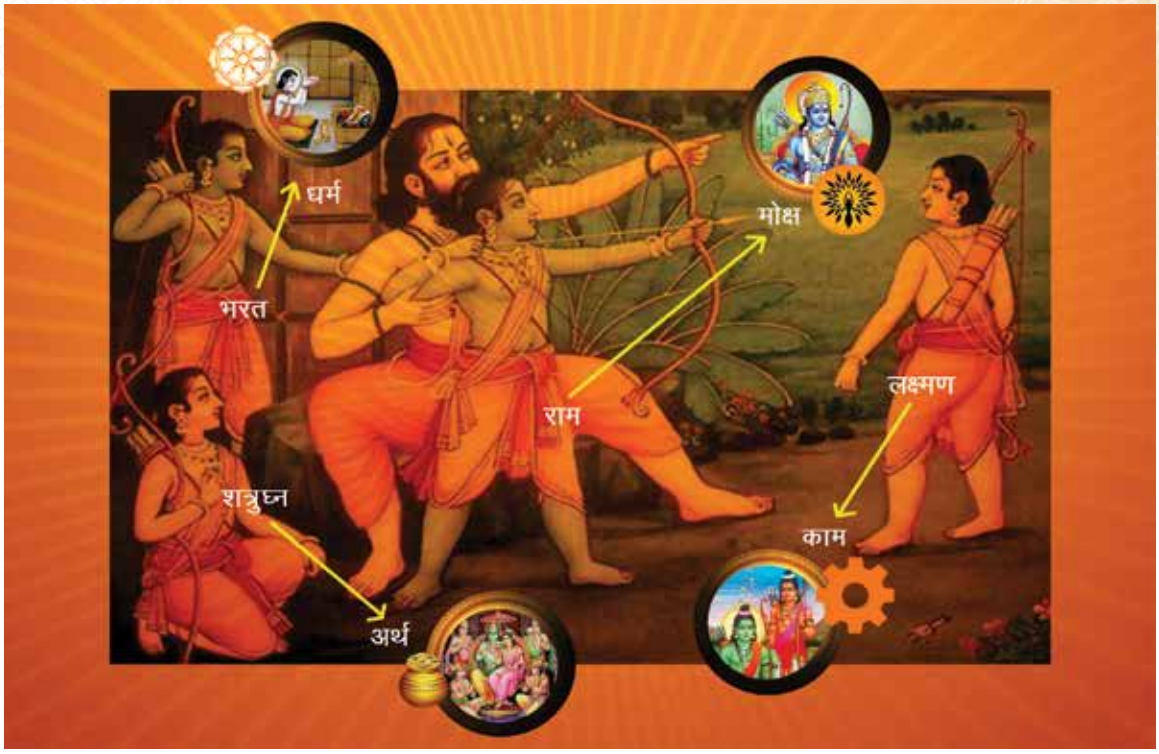

मानस का संदेश-धनात् धर्मं ततः सुखम्

विष्णु पुराण का यह श्लोक रामचरितमानस का एक निहित संदेश है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-चारों फल प्रदान करने वाली रामचरितमानस लाभ का लोभ नहीं होने देती।

डा. उमाशंकर पचौरी
शिक्षाविद एवं मानस मर्मज्ञ

आज जहाँ अर्थशास्त्र लाभ पर आधारित है, वहीं श्रीरामचरितमानस में अर्थशास्त्र का आधार धर्म है। मानस में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को क्रमशः मोक्ष, काम, धर्म और अर्थ का प्रतीक माना गया है। इन चारों पुरुषार्थों को इनके चरित्र के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। शत्रुघ्न का नामकरण करते हुए वशिष्ठ जी ने कहा-

जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा।।
बा.कां./196/8।।

अर्थात् जिसके स्मरण मात्र से शत्रुओं का नाश हो जाता है, उसका नाम शत्रुघ्न है। इसका आशय यह है कि मानसकार ने अर्थ को बहुत अधिक महत्ता दी है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि अर्थ के बिना रामराज्य स्थापित नहीं हो सकता। जब वे कहते हैं कि रामराज्य में-

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई।।
उ.कां./19ग/7,8।।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
उ.कां./ 20/1,2।।

अर्थात् रामराज्य में पूरी दुनिया में सब सुखी थे। तीनों प्रकार के ताप नहीं थे। सब लोगों में परस्पर प्रेम था, क्योंकि अर्थशास्त्र लाभ पर नहीं, धर्म पर आधारित था।

भरत, कैकेई अर्थात क्रिया के पुत्र थे और शत्रुघ्न सुमित्रा अर्थात् उपासना के पुत्र थे। भरत धर्म के प्रतीक थे, क्योंकि धर्म का जन्म क्रिया से ही होता है। यह धर्म ही है जो विश्व का भरण पोषण कर सकता है। इसीलिए वशिष्ठजी ने कहा -

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।

बा.कां./196/7।।

मानसकार की दृष्टि यह है कि अर्थ के बिना सब व्यर्थ है। परंतु, अर्थ बोलना नहीं चाहिए। अर्थ जब-जब बोलता है, तब-तब अनर्थ होता है। धन का अभाव बहुत बुरा होता है। इसलिए मानस में संसार का सबसे बड़ा दुख दरिद्रता को बताया गया-

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।।

उ.कां./120ख/13।।

परंतु धन का प्रभाव कई गुना अधिक बुरा होता है। इसलिए पूरे मानस में शत्रुघ्न कहीं बोले नहीं। सुमित्रा ने शत्रुघ्न को भरत के साथ जोड़ दिया। अर्थात् अर्थ को धर्म के पीछे लगा दिया। धर्म के साथ ही अर्थ की सार्थकता है। तभी अर्थ रामराज्य की स्थापना में सहायक होता है। राम-लक्ष्मण वन में थे, भरत नन्दीग्राम में थे और अयोध्या में रामराज्य स्थापित हो गया। यह चमत्कार केवल इसलिए संभव हो पाया कि अर्थ लाभ की वृत्ति पर नहीं धर्म की वृत्ति पर आधारित था। जब भरत ने राम को मनाने के लिए चित्रकूट जाने का निर्णय किया तो सब साथ जाने को तैयार हुए, परंतु भरत चिंतन करते हैं कि -

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही।।

अयो.कां./185/3।।

अर्थात्, यह सारी संपत्ति परमात्मा की है। परंतु, उसे अरक्षित नहीं छोड़ा जा सकता। उसकी उचित देखभाल की व्यवस्था करना अनिवार्य है। तपस्या के बल से समस्त वैभव को प्राप्त किया जा सकता है, मानस में इसका अनेक स्थानों पर उल्लेख है। जब चित्रकूट यात्रा के समय भरत अयोध्या की सेना और प्रजा के साथ प्रयागराज पहुँचे तो ऋषि भरद्वाज ने निश्चय किया कि भरत की पहुनाई करके उनके श्रम को दूर किया जाये तो उन्होंने रिद्धियों और सिद्धियों को बुलाया और कहा कि -

राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज।।

अयो.कां./213।।

ऋषि की आज्ञा मान कर रिद्धि-सिद्धियों ने अद्भुत व्यवस्था की -

सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं।।
प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुंदर सुखद जथा रुचि जेही।।

अयो.कां./213/7,8।।

बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह।

अयो.कां./214।।

रामचरितमानस में अर्थ महत्वपूर्ण होते हुए भी धर्म पर आधारित होने के कारण विकृतियों से बचा हुआ है। अर्थ जब लाभ पर आधारित होता है तो उसके साथ लोभ अनिवार्य रूप से जुड़ता है। राक्षस परिवार का वर्णन करते हुए कहा गया है -

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई।
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।।

बा.कां./179/1,2।।

सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल बुद्धि और बड़ाई-ये सब उसके नित्य नये बढ़ते जाते थे, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है।

यही आज के वैश्विक अर्थशास्त्र की सबसे बड़ी विडम्बना है। इसी के कारण संपूर्ण विश्व संघर्ष में घिरा हुआ है। रामचरितमानस में इस समस्या का सर्वश्रेष्ठ समाधान दिया गया है। जब प्रत्येक व्यक्ति लाभ के लिए उत्पादन करेगा तो लोभ के कारण उसमें स्वाभाविक रूप से अनेक बुराइयाँ आयेंगी ही। वह मिलावट भी करेगा, गुणवत्ता के साथ समझौता भी करेगा और व्यापार में झूठ का सहारा भी लेगा। परन्तु यदि लाभ के स्थान पर अर्थशास्त्र का आधार धर्म बन जाये, तो इन बुराइयों के लिए कोई स्थान बचेगा ही नहीं। रामराज्य में यही किया गया। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति उत्पादन करने को अपना धर्म मानता है। इसीलिए वह उत्पादन में अपना सर्वश्रेष्ठ देता है।

रामराज्य की प्रजा का वर्णन करते हुए कहा गया है-

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।

उ.कां./20।।

सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेद-मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है।

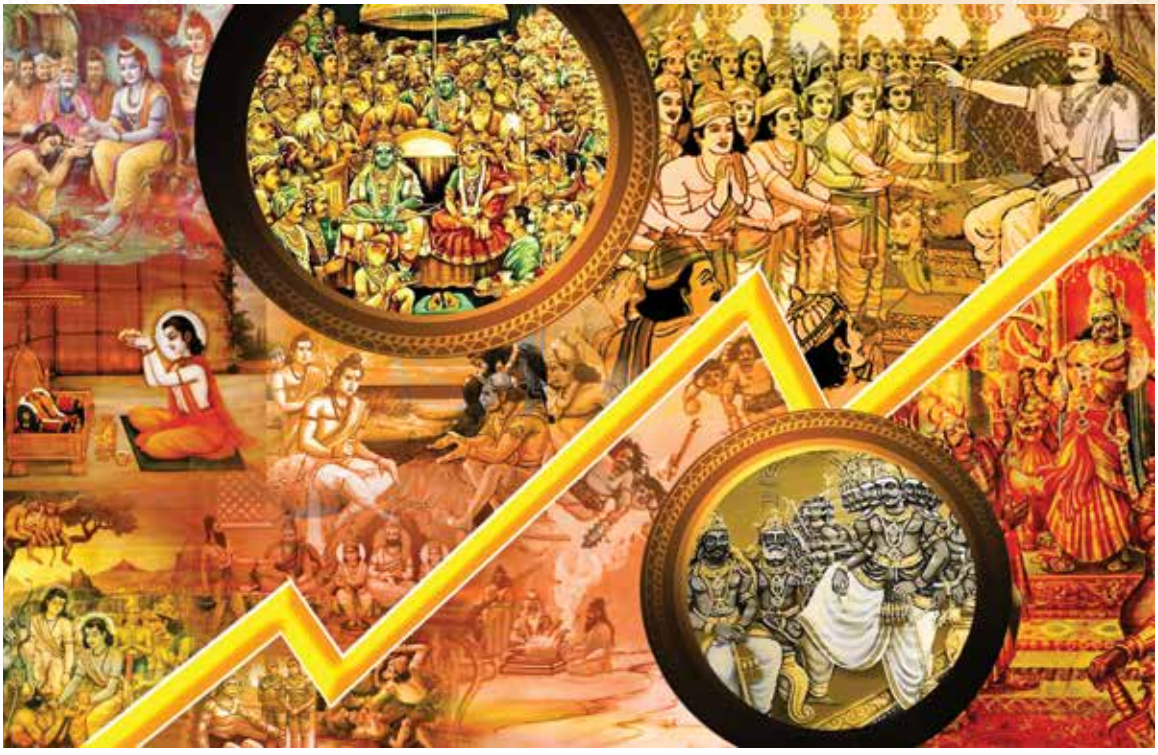

श्रीरामचरितमानस में नीति शास्त्र

मानस का नीति शास्त्र लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित है

प्रो. कौशल किशोर मिश्र
पूर्व संकाय प्रमुख, सामाजिक विज्ञान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्राचीनकाल से ही धर्म, संस्कृति आदि की दृष्टि से एकता विद्यमान रहते हुए भी भारतवर्ष राजनीतिक दृष्टि से भी एक देश रहा है। प्राचीन भारत छोटे-बड़े विभिन्न राज्यों में विभक्त था, जिनमें अनेक प्रकार की शासन प्रणालियाँ प्रचलित थीं। जनसंख्या, क्षेत्रफल और शासन की दृष्टि से प्राचीन राज्यों में किसी प्रकार की एकरूपता अथवा साम्यता नहीं थी, क्योंकि इन राज्यों का शासन देश, काल एवं तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहा। प्राचीन भारत छोटे-बड़े लगभग दो सौ राज्यों में विभक्त था, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की शासन प्रणालियों तथा शासन-संस्थाओं का प्रचलन था। महाकाव्यों में राजतंत्रात्मक शासन-संस्था को प्रमुखता दी गयी। जिनमें एकराज्य, वैराज्य, साम्राज्य, भोज राज्य आदि विविध प्रकार की शासन व्यवस्था विद्यमान थी। अराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठय-राज्य आदि अन्य जनतंत्रात्मक शासन प्रणालियाँ थीं। वैराज्य राज्य व्यवस्था में शासक को विराट कहा जाता था और उसका सम्बन्ध उत्तर कुरू तथा उत्तर मद्र जनपदों से था, जहाँ सम्पूर्ण जनता शासक पद के लिए संस्कारित की जाती थी। इससे यह प्रकट होता है कि वहाँ राजाविहीन अवस्था थी। कौटिल्य भी वैराज्य को एक शासन-पद्धति मानते हैं और उसके अंतर्निहित दोषों, जैसे राज्य के साथ एकता के बोध का अभाव, नागरिकों की उत्तरदायित्वहीनता, जनपद, त्याग आदि का उल्लेख करते हैं।

बाल्मीकि ने राजा दशरथ के अधीन अनेक राज्यों की गणना

की है। द्रविण, सिन्धु सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण भारत के सारे प्रदेश, बंग, अंग, मत्स्य, काशी और कौशल इन सभी समृद्धशाली देशों पर राजा दशरथ का अधिपत्य था। ये सभी राज्य स्वतंत्र सत्ता रखते हुए माण्डलिक राज्य थे, जो समय-समय पर 'पुत्रेष्ठि यज्ञ, युवराज अभिषेक, रावण द्वारा सीता हरण तथा राम-रावण युद्ध का समाचार जानकर' (सूचना पाकर) एकत्रित हुए थे। ऐसे अनेकानेक राज्य और राजाओं की चर्चा कर इस बात को प्रमाणित किया है कि प्राचीन भारत में अनेक राज्य थे और उनका स्तर एवं स्वरूप विभिन्न प्रकार का था।

तुलसीकृत रामचरितमानस में विविध प्रकार के कई राज्यों का उल्लेख किया गया है। जब राज्य का अर्थ राजा का राज्य से लिया जाता है, तब राजा राज्य को स्वयं की सम्पत्ति समझता है। वहाँ राजा राज्य का स्वामी होता है। ऐसे राज्य में प्रजा राजा की आज्ञा मानने को विवश होती है। इसमें राजा की स्वेच्छाचारिता ही प्रमुख होती है। ऐसे राज्य में हितैषी मंत्रियों की मंत्रणा को ध्यान से नहीं सुना जाता। राजा की इच्छा मंत्रियों की इच्छा से बड़ी होती है तथा भय एवं आतंक का साम्राज्य रहता है। यद्यपि ऐसे राज्य में कठोर शासन होने से प्रजा समृद्ध हो जाती है तथा उसकी भौतिक सुख-सम्पत्ति निरंतर बढ़ती है तथापि जनसामान्य राजा के अनुचर ही बने रहते हैं। ऐसा राज्य लंकाधिपति रावण का राज्य है-

भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र।।
बा.का./182क।।

आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता।।
बा.का./181/13।।

अर्थात् ऐसा राज्य शक्ति पर गठित राज्य है, जहां माण्डलिक राजा भी अधीन रहते हैं और मण्डली के शिरोमणि (सार्वभौम सम्राट) की भांति राजा के स्वयं के विवेक से ही शासन चलता हो, तथा सभी अधीन शासक, मंत्री, सेवक और प्रजा भयभीत होकर राजा की आज्ञा मानते हों, ऐसा राज्य पूर्ण निरंकुश साम्राज्य कहलाता है।

ऐसे राज्य में शासक धर्म एवं वेद विरुद्ध कार्य करते हैं। वास्तव में रावण का राज्य निरंकुश शासन का प्रतीक है। इस राज्य में जनता को कष्ट दिये जाते हैं। केवल शासक और उसके परिवारजन तथा हितैषियों की ही इच्छा पूरी की जाती है। राजा की हां में हां न मिलाने पर विभीषण जैसे योग्य मंत्री को भी सभा से बाहर निकाल दिया जाता है। किष्किंधा का बालि राज्य भी रावण राज्य की तरह निरंकुश राज्य के अंतर्गत आता है, जहां भाई को भी शत्रु के समान समझकर उसकी पत्नी व सम्पत्ति को बलपूर्वक छीन लिया जाता है। यह निरंकुश राज्य का निकृष्ट रूप है।

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी।।
ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला।।
कि.का.5/11,12।।

जब राज्य प्रजा-हित के लिये होता है, तब वह धर्म राज्य कहलाता है। इसमें प्रजा की संतुष्टि ही राज्य का अंतिम लक्ष्य होता है। रामचरितमानस में ऐसे अनेक राज्यों का वर्णन किया गया है। सत्यकेतु के पुत्र प्रतापभानु के राज्य के बारे में वर्णित है कि-

बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू।।
बा.का./152/2।।

जब प्रतापरबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति बेदबिधि कतहुँ नहीं अघ लेस।।
बा.का.153।।

सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे।।
सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला।।
बा.का./153/7,8।।

अर्थात् सत्यकेतु प्रसिद्ध कैकय देश का राजा हुआ। उसका पुत्र प्रतापभानु था। प्रतापभानु का राज्य उत्तम था। वह वेद-विधि के अनुसार प्रजा का पालन करने वाला और सभी प्रकार के दोषों एवं छलों से दूर था। उसने अपनी भुजाओं के बल से सातों द्वीपों पर अधिकार कर लिया था। सभी राजाओं से दंड (कर) लेकर प्रतापभानु ने उन्हें छोड़ दिया। यह कैकय देश में सैन्यबल से गठित सार्वभौम साम्राज्यवादी राज्य था।

रामचरितमानस में राजा दशरथ के राज्य का वर्णन कुछ इस प्रकार है-

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें।।
अयो.का./1/3।।

सब राजा उनकी कृपा चाहते हैं और लोकपालकगण उनके रुख को रखते हुए प्रीति करते हैं।

कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासौं देसू।।
अयो.का./25/2।।

कहो, किस कंगाल को राजा कर दूँ या किस राजा को देश से निकाल दूँ।

ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।।
अयो.का./97/3।।

अर्थात् राजा दशरथ का राज्य सार्वभौमिक राज्य का वह स्वरूप है, जहां विभिन्न जनपदों, राज्यों के नरेश सम्राट की कृपा पर्यंत ही नरेश रह सकते हैं। राजा का प्रभाव हर तरफ फैला हुआ है।

रामचरितमानस में राजा जनक के राज्य को भी वर्णित किया गया है-

संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति।
चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहि भाँति।।
बा.का./214।।

तब उन्होंने पवित्र हृदय के मंत्री, बहुत से योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु और अपनी जाति के श्रेष्ठ लोगों को साथ लिया और इस प्रकार प्रसन्नता के साथ राजा मुनियों के स्वामी विश्वामित्रजी से मिलने चले।

सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे।।
बा.का./213/3।।

जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी।।
बा.का. /288/6

अर्थात् राजा जनक का राज्य ऐसा राज्य है, जहाँ सचिव, सुभट और गुरु ब्राह्मण तथा विद्वत्जनों से राजा परामर्श करके निर्णय लेते हैं। जहाँ भौतिक सम्पत्ति के अर्जन और वितरण में शासक व शासित के बीच भेद नहीं है। सूर, सचिव और सैनिकों के मकान भी राजा की तरह हैं तथा राजा के घर जैसी शोभा हर घर में है। निषाद के राज्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

सई तीर बसि चले बिहाने। सृंगबेरपुर सब निअराने।।
समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करइ सबिषादा।।
अयो.का./188/1,2।।

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी।।
अयो.का./190/3।।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा।।
अयो.का./191/7।।

अर्थात् निषाद का राज्य ऐसा राज्य है जहाँ पर सामान्यजन की इच्छा व अनिच्छा का पूरा सम्मान करते हुए शासक अपनी नीति बदल सकता है। यह प्रत्यक्ष जनतंत्र की श्रेणी का राज्य है।

रामचरितमानस में राम के राज्य को व्यापक रूप से विश्लेषित किया गया है। तुलसीदास का रामराज्य केवल उनकी कल्पना का वाग्जाल नहीं है, वह पूरी तरह भारतीय परम्पराओं और नियमों पर आधारित किया गया है। रामराज्य निरंकुश राजतंत्र नहीं है। वह विद्वानों के परामर्श से चलता है। वह प्रजा-प्रतिनिधि-सम्मत राज्य है। राजा राम अपनी सभा में विराजमान ज्ञानी जनों से परामर्श करते हैं। राम का शासन राजतंत्र होने के बावजूद लोकतंत्रीय भावनाओं से ओतप्रोत था।

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन।।
उ.का./25/1।।

अर्थात् राजा राम सुबह सरयू में स्नान के बाद ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ सभा में बैठते हैं। वह मंत्रियों, पुरजनों और सभासदों के परामर्श से ही राजपद को संभालते हैं।

प्राचीन भारतीय राज्य में सभा जैसी संस्था विद्यमान थी। इन संस्थाओं का इतिहास अति प्राचीन है। सभा अर्थात् समिति के बीज हमें मानव सभ्यता के मूल में बिखरे दिखाई देते हैं। रामचरितमानस के अयोध्याकांड में वर्णन है कि राजा दशरथ सभा में बैठे हैं। वृद्धावस्था का आभास होने पर वह राज सभा के सदस्यों के समक्ष राम को युवराज पद देने की इच्छा प्रकट करते हैं। गुरु वशिष्ठ से परामर्श करते हैं। दशरथ की इस प्रकार की सभाएं, राज सभाएं अथवा राज दरबार ही कहे जा सकते हैं। इनमें राज्य के सभी कर्मचारी उपस्थित होकर अपने विचार प्रकट करते थे। ये सभाएं स्वयं राजा के द्वारा बुलाई जाती थीं। सभी लोग अपने विचार प्रकट करने के लिये स्वतंत्र होते थे, किन्तु सभा में गुरु निर्णय ही राजा को मान्य होता था।

रामचरितमानस में पौर जनपद में भी सभाएं होती थीं। यद्यपि तुलसीदास ने विशेष रूप से पौर जनपद शब्द का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। भरत द्वारा राम को वन से लेने जाने के उद्धरण में उनके साथ अयोध्यावासी, कर्मचारीगण तथा राजमाताएं भी होती हैं। उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मंत्री आदि सब एकत्रित हो जाते हैं और वशिष्ठ भरत को 'सुनहुं सभासद' कहकर संबोधित करते हैं। इस अवसर पर राजा भरत के नेतृत्व में वन में एक जनसभा होती है। इस पौर जनपद में एक परामर्श मंडल है, जिसमें विप्र,

मुनि, महाजन, सचिव, सभासद, गुरु (पुरोहित) एवं मंत्री आदि हैं।

रामचरितमानस में युद्ध एवं संधि संबंधी सभाएं भी दृष्टिगोचर होती हैं। किष्किंधाकांड में तुलसीदास ने ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के समाज का वर्णन किया है, जिसमें उनके सब मंत्रीगण तथा अन्य नगर निवासी भी उपस्थित होते हैं। राम वहां पहुँचकर सुग्रीव से मित्रता करके सहायता की आशा करते हैं। इस प्रकार की सभा से संकेत मिलता है कि वन्य जातियों में भी राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना थी और वे भी संधि करते थे। इससे ज्ञात होता है कि राजा एवं प्रजा में परस्पर सहयोग की कितनी भावना थी। सबके विचारों का सम्मान किया जाता था और समस्या विशेष उपस्थित होने पर सब उसे सुलझाने के लिये तत्पर हो जाते थे।

रामचरितमानस में राजा राम द्वारा सीता हरण करने वाले रावण का वध करने के लिये वन में युद्ध संबंधी सभाओं का आयोजन एवं आक्रमण योजना बनाने के लिये सभा बुलाने की आवश्यकता को वर्णित किया गया है। इतना ही नहीं दूत भेजने और उसके लौटने पर भी सभा का आयोजन होता था-

इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई।।
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई।।
ल.का./16ख/1,2।।

अर्थात् राजा राम की सचिव सभा एकत्रित होती है। इसमें सभी दूतों का संवाद सुना जाता है। राम अपने वानर समाज से मंत्रणा करते हैं। यह सभा मंत्रिपरिषद् का ही एक प्रतिबिंब जैसी थी। रामचरितमानस में कतिपय प्रसंग विशुद्धतः विद्ववत्सभाओं के हैं, जहां मंत्रियों के अतिरिक्त बुद्धिमान और मुनिगण विशेष महत्व रखते थे। इस प्रकार की सभाएं राज्य को धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से चलाये रखने लिये होती थीं। जैसे कुलगुरु द्वारा राजकुमारों को धर्म एवं नीति संबंधी राज्योचित उपदेश देना। उदाहरण के लिये भरद्वाज मुनि के आश्रम में जब भरत पहुँचते हैं तो वह भरत की शंका का समाधान करके उपदेश देते हैं। ऐसी ही एक सभा का उत्तम उदाहरण राजा जनक के दरबार में मिलता है। सेना के साथ भरत के वन में जाने की सूचना पाकर राजा जनक इस संकटकाल में अपने मंत्रियों एवं बुद्धिमानों की सभा बुलाते हैं और पूछते हैं कि क्या करना चाहिए।

नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू।।
अयो.का./270/5।।

इस प्रकार राम पक्ष की जितनी भी सभाएँ बुलाई गयीं, उनकी अपनी विशेषता थी। इन सभाओं में जब विचार-विमर्श होता था तो न्याय एवं सत्य का ही आश्रय लिया जाता था। सभा का कोई भी सदस्य छल-कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करता था। सभा के क्रियाकलापों में धर्मनीति का ही अनुसरण होता था। यदि न्याय उनके राजनैतिक आदर्शों की आधारशिला थी, धार्मिक सिद्धांत उनको संगठित करने वाले तंतु थे। रामचरितमानस में राजा राम की सब सभाओं में अत्यंत सात्विक वातावरण रहा है। इन सभाओं में सेनापति और साधारण सैनिक सभी सम्मिलित होते थे। सभासदों में किसी प्रकार के भेदभाव की भावना नहीं थी।

रामचरितमानस में राज्याभिषेक, राजा के गुण, मंत्री की विशेषताएँ, दूत एवं गुप्तचर के कर्तव्य आदि राजनैतिक पक्षों पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है। अयोध्याकांड में राम के राज्याभिषेक हेतु दशरथ राजसभा में प्रस्ताव रखते हैं एवं वशिष्ठ से कहते हैं-

अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें।।
अयो.का./2/7।।
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू।।
अयो.का./3/2।।

दशरथ के इस प्रस्ताव का गुरु वशिष्ठ समर्थन करते हैं। इसके बाद राजा दशरथ द्वारा अपने सेवकों तथा मंत्री सुमंत्र के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा गया। अभिप्राय यह है कि दशरथ ने राजा की नियुक्ति के लिये प्रजा के अधिकारों का उचित सम्मान किया है। कोई भी राजा स्वेच्छा से अपने किसी भी पुत्र को राज्याधिकारी नहीं बना सकता था, बल्कि इस कार्य के लिये प्रजा की सम्मति लेनी पड़ती थी। प्रजा की सम्मति लेने की यह भावना जनतंत्रात्मक प्रवृत्ति की द्योतक है।

राजा की नियुक्ति के विषय में पैतृक अधिकार एवं ज्येष्ठता का अधिकार भी मान्य था-

लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति।।
अयो.का./31।।

राम को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनका बड़ा ही प्रेम है। मैं ही अपने मन में बड़े-छोटे का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीकृत रामचरितमानस में राजा के चारित्रिक गुणों के अनुरूप उसे पैतृक एवं ज्येष्ठता का अधिकार प्रदान किया गया है। तुलसीदास ने एक आदर्श राजा की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए राम को कृपालु, प्रजा के दुखों को मिटाने वाला, नीति-निपुण, शील और स्नेह स्वभाव वाला, दोषों का नाश करने वाला, दया से पूर्ण, कुमार्ग-कुतर्क को जलाने वाला, प्रजानुरागी गुणसमूहों से युक्त, विशुद्ध विज्ञान सम्पन्न बताया है।

रामचरितमानस में राज्य परिवार की आदर्श कल्पना को प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास ने अपने पात्रों द्वारा सबके प्रति कर्तव्य निर्वाह कराया है। भरत द्वारा राम के प्रति अपने पूर्ण कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए वर्णित किया गया है। रामचरितमानस में भरत का राज्यत्याग और पादुका-राज्य का निर्वाह उनकी सदाशयता को अधिक स्पष्ट, अनुकरणीय और श्लाघ्य बना देता है। भरत के कहने पर श्रीरामचंद्र ने कृपा कर पादुका दे दी और भरत ने उन्हें आदरपूर्वक सिर पर धारण किया-

भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू।।
प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।।
अयो.का./315/3-5।।

नंदीग्राम में पहुंचकर उन्होंने विधिवत उन पादुकाओं का राज्याभिषेक किया। उनके ऊपर छत्र हाथ से लगाया। शासन का सारा कार्य वे पादुकाओं को अर्पण कर दिया करते थे। इस प्रकार भरत राम की पादुकाओं का अभिषेक करके उन्हीं के अधीन रहते हुए राजकाज चलाने लगे। जब कोई भी कार्य या उपहार आता तो वे उसे पहले उन पादुकाओं के आगे रख देते और उसके बाद ही उसका उचित उपयोग करते थे-

नंदिगावँ करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।।
जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी।।
भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी।।
अयो.का./323/2,3,5।।

राजा के अभाव में भरत को राज करने के लिये कहा गया, किन्तु पिता द्वारा दिए हुए राज्य, जीवन के सब भोग और ऐश्वर्य को त्यागकर भरत राम की चरण पादुकाओं के आश्रय से ही राजकाज चलाते हैं। दूसरी ओर वे अयोध्या के राजा बने रहे और गुरुओं एवं बुद्धिमानों के परामर्श से राजकाज संभालते हुए जनता के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करते रहे।

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति।।
अयो.का./325।।

अर्थात् भरत प्रतिदिन प्रभु श्रीराम की चरण पादुका का बड़े प्रेम से पूजन करते हैं और उनकी आज्ञा मांग-मांगकर सब प्रकार के राज-काज करते हैं।

भरत का अद्भुत स्वार्थ त्याग तथा अलौकिक मातृभक्ति उनके नागरिक आदर्श को ऊंचा उठाने वाले गुण हैं। कैकेयी जैसी माता का पुत्र होने पर भी जनता के मन में उनके प्रति कभी क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ, बल्कि माता के दुर्व्यवहार ने भरत के चरित्र को और भी श्रेष्ठ बना दिया। यह उनके त्यागमय जीवन की पराकाष्ठा है। भरत अपनी माताओं के प्रति भी अंत तक अपना कर्तव्य निभाते रहे। किसी के प्रति उनमें दुर्भावना जाग्रत नहीं हुई। सबके प्रति कर्तव्य पालन करना उनका विशेष अधिकार था। अतः वे सहज ही नागरिकता की कोटि में आ जाते हैं।

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ।।
अयो.का./231।।

रामचरितमानस में भरत को अयोध्या राज्य का मद (लोभ) नहीं होने का वर्णन है।

सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि।
अयो.का./323।।

अर्थात् करुणानिधान श्रीरामचंद्रजी के दोनों खड़ाऊँ प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानो दो पहरेदार हैं।

चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ।।
अयो.का./315/5।।

अर्थात् भरत द्वारा राजा की अनुपस्थिति में राजा की चरण पादुकाओं को निर्विघ्नतापूर्वक सिंहासन पर विराजित कराया गया।

ये चरण पादुकाएं राजा राम के प्रतीक के रूप में प्रजा के प्राणों के रक्षक हैं।

राम और भरत दोनों ने ही राज्य का त्याग कर दिया था। इस त्याग या दान नीति से दोनों भाइयों ने अयोध्या राज परिवार को नष्ट होने से बचा लिया था। राम और भरत दोनों ने ही पारस्परिक संबंधों का स्नेहपूर्ण निर्वाह करते हुए सामनीति का आदर्श प्रस्तुत किया। अतः राम और भरत की साम तथा दान नीतियाँ अद्वितीय हैं। ये हर युग में अनुकरणीय, उपयोगी और प्रासंगिक हैं।

भरत द्वारा स्थापित पादुका-राज्य भी एक विचित्र संकल्पना का संकेत देती है। राम और भरत दोनों के प्रेम और सौहार्द की भावना को पादुका राज्य द्वारा रेखांकित किया गया है।

रामचरितमानस में प्राचीन सामाजिक आदर्शों का अनुगमन देखने को मिलता है। इसकी रचना का उद्देश्य एक आदर्श राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना था। सामाजिक संबंधों में अनुशासन तथा अधिकार की अपेक्षा कर्तव्यों को अधिक महत्व दिया गया। कर्तव्य के प्रति सजग रहना रामचरितमानस में सामाजिक संबंधों का आधार है-पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक आदि। सभी प्रकार के संबंधों की आधारभूमि यही कर्तव्यपरायणता है।

राम को मर्यादा पुरुषोत्तम इसलिये कहा जाता है कि वे कर्तव्य पालन के लिये तीनों लोकों का राज्य भी प्रसन्नता से त्याग सकते थे। उनकी उदारता मानवीयता का परिचायक है। रामचरितमानस में राम राज्य के रूप में एक आदर्श राजनैतिक व्यवस्था और शासन-सूत्र का प्रतिपादन किया गया है।

उत्तम शासन व्यवस्था से ही श्रेष्ठ समाज की कल्पना संभव है। जिस शासन प्रणाली में प्रजा की सुख-शांति नष्ट हो जाय, वह राज्य, राजा, सत्ता, शासक, प्रणाली त्रुटिपूर्ण और निंदनीय है। परहित अर्थात् लोकमंगल के साधन और दूसरों के दुख को दूर करने का प्रण किसी भी समाज को आदर्श बना देता है। जिस समाज के नागरिक लोकमंगल या परोपकार के प्रति संकल्पित होंगे और परपीड़न को घोर पाप समझकर उससे बचने के लिये निरन्तर सावधान रहेंगे, उस समाज में स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, मोह, कलह, शोषण जैसी कुवृत्तियों के लिये कोई स्थान नहीं होगा। परस्पर प्रेम और समता भाव पर आधारित समाज की आपस में आकांक्षा रखने वालों के लिये यह धार्मिक दृष्टि शाश्वत मूल्य रखती है। रामचरितमानस में यह परस्पर प्रेम एवं समता भाव देखने को मिलता है।

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।।
बा.का./6।।

विधाता ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है, किंतु संतरूपी हंस दोषरूपी जल को छोड़कर गुणरूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं।

दोषों के समूह में गुणों की पहचान, निष्ठापूर्वक उसकी स्वीकृति प्रगतिशील समाज का मूल मन्त्र है। रामचरितमानस के सामाजिक जीवन में व्यक्ति, परिवार, समाज और शासन के आपसी संबंधों को मूल्यधर्मी सामन्जस्य की भूमिका में बार-बार रेखांकित किया गया है। व्यक्ति के रूप में राम, भरत, लक्ष्मण आदि के आदर्श हमें जीवन के उदात्ततम मूल्यों से परिचित कराते हैं। राम का परिवार आदर्श और मर्यादा का चरमोत्कर्ष प्रस्तुत करता है। रामराज्य में इसी जनतंत्रीय व्यवस्था की प्रतिष्ठा की गयी है। राजा राम जनमत के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी हैं। ध्यातव्य है कि तुलसीदास के युग में जनमत नगण्य था। एकतंत्रीय शासन में शासक प्रतिक्रिया ही कानून थी। बात-बात में लोगों को तलवार के घाट उतार दिया जाता था। सामूहिक हत्याएं की जाती थीं। जनता के प्रतिवाद को क्रूरता से कुचल दिया जाता था। रामचरितमानस ने इस कठिन स्थिति का विकल्प रामराज्य के रूप में प्रस्तुत किया है। राम प्रशासनिक नीतियों का अनुमोदन पुरवासियों से लेना आवश्यक मानते हैं।

तुलसीदास ने निश्छल प्रेम को ही परिवार की नींव माना है। भरत का चरित्र समस्त सामाजिक मर्यादाओं का रूप है। समाज में सभी प्राणी अपने कर्तव्यों का पालन करने लगें, तभी समाज में लोकहित का उदात्त स्वरूप दिखाई दे सकता है। राम भरत को पिता की आज्ञा का पालन कर कर्तव्य का बोध कराते हुए, समाज को कर्तव्य-पालन करने का संदेश देते हैं।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु।।
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाईं। लोक बेद भल भूप भलाईं।।
अयो.का./314/3,4।।

मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
बा.का./9छं.।।

तुलसीकृत रामचरितमानस में राम भक्ति के द्वारा समाज का पथ प्रशस्त किया गया है, जिस पर बाल, वृद्ध, युवा, शिक्षित-अशिक्षित,

छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, गृहस्थ-विरक्त, कृषक-मजदूर-व्यापारी सभी चल सकते हैं। इसके द्वारा जनता को धर्म अनुकूल आचरण का संदेश दिया गया है।

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू।।
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।
अयो.का./218/3,4।।

विश्व को कर्म प्रधान कहा गया है। जो जैसा करता है, वैसा फल भोगता है। कर्म सिद्धान्त की व्यावहारिक स्थिति को सांकर्य (मिलाकर देखना) करना असंगत ही है। भले ही किसी व्यक्ति को अपने कर्म के अनुसार मरना हो तथापि मारने वाला यह कहकर मुक्त नहीं हो सकता कि वह अपने कर्मानुसार मरा है। इसमें हमारा दोष नहीं। किसी को फांसी की सजा भी सुनायी गयी हो, तो फांसी देने के लिये अधिकृत व्यक्ति ही उसे फांसी दे सकता है। अनधिकृत व्यक्ति वैसा ही करेगा तो स्वयं ही वह दंड का भागी बन जायेगा।

हर व्यक्ति के सामने अपना कर्तव्य है तभी कर्म है, भले ही व्यवहार के मुकाबले में प्रहार करने वाले प्रहार को विफल करने एवं अपने रंध्रों के गोपन पर रंध्रान्वेषण करके प्रहर्ता को दंड देने का प्रयास भी किया जाता है और वैसा करना नीतिशास्त्र एवं धर्मशास्त्र से सम्मत है। वैसा न करना ही दोष है।

रामचरितमानस में कर्म की प्रधानता को स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि

भल अनभल निज निज करतूती।। बा.का./4/7।।

भले और बुरे अपने-अपने कर्म के अनुसार सुंदर यश और अपयश की सम्पत्ति पाते हैं।

काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं।।
बा.का./6/2।।

काल, स्वभाव और कर्म की प्रबलता से सज्जन पुरुष भी मोह-माया के वशीभूत होकर कभी-कभी भलाई करने से चूक जाते हैं। प्रारब्ध, दैव और प्राक्तन कर्म सिद्धांत को समझने वाला व्यक्ति, किसी भी इष्ट-अनिष्ट घटनाओं के घट जाने पर उन्हें प्रारब्धजनित जानकर शोक-मोह और राग-द्वेष से दूर होकर अपने कर्तव्य का पालन करने लगता है। सामान्यतया दैव अदृष्ट प्रारब्ध कर्म अचिन्त्य होता है। फल के पहले उसका ज्ञान ही नहीं होता है। वह फल-बल से ही कल्प्य होता है। विवेकपूर्ण अनासक्त दृष्टिकोण अपनाने से ही कर्मफल के सुख-दुख से निर्लिप्त हुआ जा सकता है।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी।
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई।।
अयो.का./76/7,8।।

अयोध्या कांड में दशरथ, रामराज को महान निगमनीति कर्मानुसार फलभोग की नीति बताते हुए कहते हैं कि जीव के कर्मों पर ईश्वर विचारकर फल प्रदान करता है। जो कर्म करता है, वही फल पाता है। ऐसा वेद की नीति है। यही तथ्य भरत के प्रति वशिष्ठ द्वारा कहे गये शब्दों से व्यक्त होता है-

जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता।।
अयो.का./254/6।।

अर्थात् माता-पिता जन्म देते हैं, लेकिन शुभ और अशुभ कर्म विधाता निर्धारित करते हैं। इस भाग्य निर्धारण का आधार कर्मों पर आधारित होता है।

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।।
बा.का./69/5।।

तप अर्थात् कर्म-पुरुषार्थ के द्वारा भावी विधि, पूर्व जन्मों के कर्म को मिटाया जा सकता है। अतः कर्मों ने जो भाग्य लिखा है, उसके लिये किसी को भी दोषी ठहराना मतिभ्रम है, क्योंकि विधाता तो कर्मानुसार निर्णय कर देता है। अतः प्रतिकूल निर्णय के लिये निजी कर्मों को दोष न देकर निर्णायक को दोषी मानना मोह का अविवेक ही है।

इससे स्पष्ट होता है कि रामचरितमानस में कर्म को प्रधानता दी गयी है। राजा राम मर्यादापुरूषोत्तम हैं। उन्होंने अपने जीवन में कर्म को अधिक महत्व दिया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये कर्म के चार द्वार माने गये हैं, जिनके आधार पर मनुष्य अपने कर्म को करता है।

राजा राम द्वारा अपने कर्म को सर्वस्व मानकर वनगमन को प्रमुखता दी गयी और पिता की आज्ञा का पालन किया गया तो भरत ने राम की चरणपादुका राजसिंहासन पर रखकर चौदह वर्षों तक अपने धर्म और कर्म का पालन किया है। अतः कर्म की सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया है। साथ ही नैतिक नीति संबंधी विचार भी व्यक्त होता है।

नीति से तात्पर्य समाज व व्यक्ति के उत्थान के लिए निर्धारित मूल्य व सिद्धान्त हैं। ऐसे नैतिक सिद्धान्त जो किसी भी व्यक्ति अथवा समाज के चरित्र को उठाने के लिए होते हैं, वही नीतिशास्त्र के रूप में जाने जाते हैं।

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।
सु.का./39ख/5,6।।

धर्म-नीति की व्याख्या इससे संबंधित द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत हुए की गयी है। सुमति-कुमति के द्वन्द्व को पुण्य-पाप, शुभ-

अशुभ, नीति-अनीति, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, सम्पत्ति-विपत्ति आदि जीवन और जगत् की बहुविध द्वन्द्व-मूलकता में देखा गया है। धर्म और नीति संबंधी दृष्टिकोण को समझने के लिए सुमति कुमति का द्वन्द्व ही सत्य-असत्य के द्वन्द्व का स्रोत है और सत्य-असत्य सीधे पुण्य-पाप से सम्बन्धित हैं। 'सत्य' ही समस्त उत्तम सुकृतों की जड़ है। यह बात वेद-पुराणों में प्रसिद्ध है।

नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।।
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए।।
अयो.का./27/5,6।।

अर्थात् कुमति-ग्रस्तों के बीच धर्म और नीति का पालन कठिन होता है। नीति-निपुण को अनीति तनिक भी नहीं भाती। कुमति का सम्बन्ध अशुभ से तथा शुभ-शून्यता से सहज ही जुड़ जाता है। राम के मंगल प्रस्थान से जानकीजी को भी शुभ शकुन होने लगा। जानकी को जो शकुन होते थे, रावण के लिए वे ही अपशकुन थे। इस प्रकार द्वन्द्वात्मक दृष्टि से रामचरितमानस में नीति धर्म को व्यक्त किया गया है तथा नैतिकता को समाज के उत्थान के मूल के रूप में देखा गया है। अनैतिकता और पाप के प्रति सैद्धान्तिक विरोध ही व्यक्त नहीं किया है, वरन् धर्म नीति अपनायी गयी है। भरत के चरित्र के माध्यम से नैतिक आचरण के उत्कर्ष का कीर्तिमान प्रस्तुत होता है-

निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि।।
अयो.का./288।।

भरद्वाज ऋषि द्वारा आतिथ्य-रूप में समर्पित भोग सामग्रियों में किसी का भी भरत ने स्पर्श तक नहीं किया-

संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार।।
अयो.का./215।।

विधि, हरि, हर का पद पाकर भी भरत को राजमद नहीं हैं-

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।।
अयो.का./231।।

व्यक्तिगत आचार अर्थात् नीति को हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि भरत को किसी प्रकार का लोभ, मोह नहीं है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।
सु.का./43/5।।

रामचरितमानस में मित्रों और सन्तों के कुपंथ त्याग कर सुपंथ का अनुकरण करने की प्रेरणा मिलती है। दुष्टों से दूर रहना ही सौभाग्यमूलक है। दुष्ट से न बैर अच्छा न प्रीति। उससे उदासीन रहना ही श्रेयस्कर है। निर्मल मन से प्रेरित निश्छल आचार ही, आचार दर्शन का मूल लक्ष्य माना गया है।

अतः तुलसीदास ने राम और भरत के माध्यम से एक त्यागप्रधान संस्कृति की प्रतिष्ठा की है। रामराज्य विस्तारवादी तथा साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों से मुक्त था। राम ने लंका का राज्य जीत कर भी अपने अधीन नहीं किया, वरन् विभीषण को सौंप दिया। राम की राजतंत्रीय शासन पद्धति व्यापक जन हित और लोक-मत पर आश्रित प्रजातांत्रिक शासन पद्धति के सन्निकट थी।

राम अपनी नीति की उद्घोषणा करते हुए कहते हैं-

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई।।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।
उ.का./42/4-6।।

यहाँ जनता की राजनैतिक स्वतन्त्रता की ओर संकेत किया गया है। प्रजा के प्रति राजा के मृदुल व्यवहार की यह उच्चतम स्थिति है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि रामराज्य में जनता को राजा के गुण-दोष निर्देशन करने का पूर्ण वाक्स्वातन्त्र्य था। राजा के अनुचित कार्य में नागरिकों को हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार था। वे निस्संकोच होकर अपना मत प्रकट कर सकते थे। राजा स्वयं उन्हें राजा के आचरण में निर्भय होकर हस्तक्षेप करने की स्वतन्त्रता देता है। अर्थात् 'रामराज्य' में अनीति का अस्तित्व नहीं है।

जे पुर गांव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं।।
अयो.का./112/1।।

स्पष्ट है कि पुर-गांव के समाज ने अपनी सांस्कृतिक विरासत को सँभालकर रखा है। रहन-सहन, कार्य, पर्व-उत्सव में उसका यह रूप सुरक्षित है। नगर में यह दिखावेपन के रूप में ही दिखाई पड़ती है। वहाँ सांस्कृतिक विरासत नाम की कोई धरोहर नहीं होती। चूँकि तुलसीदास का युग समाज पुर गांव के रूप में ही मूलतः विस्तार पाता है, इसलिए उनके राजा राम नगरीय व्यवस्था का परित्याग कर देते हैं और समाज व्यवस्था के तहत पुर गांव को व्यवस्थित करते हैं। पुर गांव में एक दूसरे का जो दुःखात्मक और सुखात्मक जुड़ाव है, वह नगर के समाज में नहीं दिखाई पड़ता है। इसलिए पुर-गांव के बसाव की स्थिति यानी उसकी प्राकृतिक स्वतंत्रता-सुन्दरता को देखकर नाग, सुर और नगर के लोग भी ईर्ष्या करते थे। रामराज्य इसी व्यवस्था का प्रतिरूप है।

रवनवास प्रसंग' में जब राम आगे बढ़ते हैं तो बीच में पड़ने वाले पुर-गांव के लोग उनसे मिलने के लिए उमड़ पड़ते हैं। इस प्रकार रामराज्य के समाज की लोक सम्बद्धता सिद्ध होती है।

एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।

उ.का./21/8।।

इस जनतंत्रीय समाज के राजा हैं राम, जो जनता के सुख-दुःख को ध्यान में रखकर ही कर्मों का सम्पादन करते हैं। वे स्वयं जनता द्वारा बनाये गए विधि-नियमों, नीतियों और कथनों को मानकर चलते हैं। इनको बनाते समय परिवार और समाज की मर्यादाओं के साथ जनता का भी ध्यान रखा गया था, इसीलिए राजा राम सदैव सामाजिक मर्यादाओं को वरीयता देते हैं। ये मर्यादाएँ और आदर्श भले ही परम्परागत इतिहास बोध को समेटे हुए हैं, पर राम द्वारा निर्मित जन-समाज इन्हीं से परिचालित होता है। राम ही नहीं, बल्कि पूरा समाज एक पत्नीव्रत को मानता है। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करने वाली हैं।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।

उ.का./20/7,8।।

इसका अभिप्राय यह है कि राम के समाज में शैक्षणिक और साहित्यिक गतिविधियाँ भी सक्रिय थीं। क्योंकि इसके बिना न जनता में मानवीय चेतना का विकास होता है और न समाज में जागृति ही आती है। जन सामान्य तक के लिए शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क थी। इसलिए समाज में मूर्ख पढ़कर राम राज्य की आकांक्षा करते हैं, क्योंकि रामराज्य तो सुराज्य (सुशासन) की परम सीमा थी। उनकी शिक्षानीति, धर्मनीति, समाजनीति, अर्थनीति और राजनीति अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी।

रामचरितमानस की सूक्तियों में व्यक्ति, समाज, नीति धर्म तथा दर्शन के सांस्कृतिक मूल्यों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी शाश्वत मूल्य थे, जिनके कारण ये सूक्तियाँ देश-काल की सीमा को पार करके अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती हैं। इन विश्वस्तरीय मूल्यों का दर्शन रामचरितमानस की राजनीति सम्बन्धी सूक्तियों में व्याप्त दिखाई देता है। इनमें राजा, प्रजा, शासन-नीति, मंत्री, सचिव, गुरू, दूत, सेवक, शत्रु, मित्र, युद्ध-नीति, आर्थिक सुधार, न्याय-अन्याय सम्बन्धी विचारों का वर्णन मिलता है। इसके साथ ही इसमें सात्विक, राजस, तामसिक आदि सभी प्रकार की राजनीति का वर्णन करते हुए रामराज्य की स्थापना से सुराज्य की कल्पना को साकार करने की चेष्टा की गई है।

रामचरितमानस में राज्य के आदर्श स्वरूप, राजा-प्रजा के कर्तव्यों, कूटनीति सैन्य-संचालन और रण सम्बन्धी विषयों का विशद विवेचन मिलता है, जो राजनीतिक-दुरवस्था को दूर करने में पूरी तरह से सक्षम है। मनुष्य की व्यक्तिगत तथा सामूहिक उन्नति के लिए विचारकों द्वारा विकसित विविध विधाओं में राज्य का सर्वोच्च स्थान है। इसका सर्वोपरि उद्देश्य मानव समुदाय का हित है। किसी भी राज्य की महत्ता इस बात में निहित है कि वह किस सीमा तक लोक कल्याणकारी है। कल्याणकारी राज्य में अनाथ बालक, रोगी और वृद्ध के पोषण की व्यवस्था शासन की ओर से होनी चाहिए।

रामराज्य में रोगों का अभाव है। मनुष्यों को किसी प्रकार का कोई रोग नहीं था। सभी हृष्ट-पुष्ट और निरोग रहते थे। अकाल मृत्यु और बाल मृत्यु को तो कोई जानता भी नहीं था।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।।

उ.का./20/5।।

लोककल्याणकारी राज्य का दायित्व है कि वह कृषि का विकास करे। रामराज्य एक जनहितकारी राज्य है, जिसमें भूमि उर्वर हो जाती है। वह खेती से हरी भरी बनी रहती है। ऐसी व्यवस्था की जाती है कि धरती धनधान्य से परिपूर्ण हो जाती है। समय पर वर्षा होती है। बाग-बगीचों में वृक्ष फल से लदे रहते हैं तथा रामराज्य का साधारण व्यक्ति भी अत्यधिक प्रसन्न रहता है-

कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना।।

कि.का./14/8

लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी।।

उ.का./22/5,6।।

इस प्रकार रामराज्य में कृषि की दशा अत्यन्त उन्नतशील है। सभी किसान प्रसन्न हैं क्योंकि उनकी फसल बहुत अच्छी होती है।

राम राज्य में राजा और प्रजा के संबन्धों को वर्णित करते हुए कहा गया है कि राजा-प्रजा एक दूसरे से गुँथे हुए हैं, तभी तो राजा का सुख प्रजा का सुख है और राजा का दुःख प्रजा का दुःख। राम के युवराज बनने के स्थान पर वनगमन की सूचना समस्त नर-नारियों को विकल बना देती है।

सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी।।

जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई।।
अयो.का./45/7,8।।
मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ।।
अयो.का./46।।

केवल अयोध्या की प्रजा ही नहीं चित्रकूट के कोल, किरात, वन्य जातियां एवं ग्रामों के लोग राम के अनुराग में बंधे हुए हैं। वनवासी भी राम को अपने मध्य पाकर प्रसन्नचित्त होते है। राजा और प्रजा के संबंधों में केवल प्रजा ही राजा से नहीं बल्कि राजा भी प्रजा से प्रेम करता है तथा प्रजा के हित का ध्यान रखता है-

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा।
नारि पुरूष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे।
अयो.का./318/7,8।।

केवल राम ही प्रजा का ध्यान नहीं रखते वरन् भरत भी प्रजा को पूरा सम्मान देते हैं। राजसिंहासन पर बैठने पर भी राम प्रजा को नहीं भूलते हैं। बल्कि उनके तथा प्रजा के सम्बन्ध और दृढ़ हो जाते हैं। अतः रामचरितमानस में राजा-प्रजा के संबंधों में लोकमत को सदैव सम्मान दिया गया है। **अल्तेकर** ने कहा है, 'सामान्यतः राजनीतिशास्त्र के आधुनिक ग्रंथों में राज्य राजा और प्रजा के परस्पर संबंधों की चर्चा जब भी होती है, तब उन दोनों के अधिकारों की सीमा निर्धारण करने का ही प्रयत्न किया जाता है। परंतु प्राचीन भारतीयों ने इस विषय को इस दृष्टि से नहीं देखा है। वे प्रजा के अधिकारों के स्थान पर राजा के कर्तव्यों का ही वर्णन करते हैं। इसी से प्रजा के अधिकारों का अनुमान किया जा सकता है। राजा राम की धर्मप्राण प्रजा सदा सत्य, धर्म का पालन करती थी। प्रजा के सब लोग सुलक्षण, सम्पन्न और धार्मिक थे।

रामचरितमानस में रामराज्य का जो वर्णन किया गया है, उसमें लोकोपकारी योजनाएं झलकती हैं। इस रामराज्य में पुरवासी और जनपदवासी अत्यंत हर्षित थे। समय के अनुसार वृष्टि होती थी। पुरवासी और जनपदवासी यह कहा करते थे कि ऐसा राज्य बहुत दिनों से नहीं हुआ। नगरों और गांवों में हृष्ट-पुष्ट मनुष्य रहते थे। किसी की असामयिक मृत्यु नहीं होती थी और न कोई किसी प्रकार के रोग से पीड़ित था। राम के राज्यकाल में डाकुओं और चोरों का तो नाम तक न था। रामराज्य में ऐसा भी कभी नहीं हुआ कि किसी वृद्ध ने बालक का मृतक कर्म किया हो। सब लोग अपने वर्णानुसार धार्मिक कृत्यों में लगे रहते थे, इसलिये सब लोग सदा हर्षित रहते थे। रामराज्य में सारी प्रजा धर्मरत थी और झूठ से दूर रहती थी। सभी व्यक्ति शुभ लक्षणों से युक्त और धर्मपरायण थे।

'**प्रजा-हितकारी योजनाओं**' विषय में रामचरितमानस का मत है- **चतुर नीति-निपुण राजा** का कर्तव्य है कि वह सभी विभागों का कार्य जैसे प्रजा, राज-समाज, घर (पुर), तन (स्वास्थ्य), धन (कोष), धर्म एवं सेना, योग्य शांतचित्त विज्ञ मंत्रियों को सौंप दे, ताकि प्रजा को सुख भोगने का अवसर मिल सके। स्पष्टतः कहा जा सकता है कि रामराज्य में यद्यपि प्रजा के अधिकारों का कहीं स्पष्ट विवरण नहीं मिलता है, फिर भी यह संदेश अवश्य मिलता है कि राजा प्रजा का सेवक है।

राजा न केवल प्रजा का सेवक है, वरन् उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। राज्य का प्रधान उद्देश्य धर्म का संवर्धन था, ताकि राज्य के निवासी धर्म के पथ पर चलें और अधर्मियों के प्रति प्रवृत्त न हों। अधर्मियों तथा अत्याचारियों को प्रताड़ित किया जाय और उनका मर्दन किया जाय ताकि लोग दुष्कर्म से बच सकें।

इसके अतिरिक्त 'अर्थ' और 'काम' संवर्धन भी राजा का कर्तव्य है। राज्य में अर्थ की वृद्धि हेतु कृषि, व्यापार, उद्योग आदि की उन्नति आवश्यक है। राज्य द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का संपोषित प्रबंधन, वन भूमि व चारागाह की सुरक्षा एवं खेती के लिये कूप, तड़ाग, आदि का निर्माण किया जाता है। ललित कलाओं के पोषण व संगीत, नृत्य वाद्यादि के द्वारा समाज में सुरुचि का विस्तार करना राजा का लक्ष्य है, जिससे कि राज्य में नागरिक धर्म, अर्थ और काम का निरपेक्ष सेवन कर मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

तुलसीदास राम के शासनतंत्र के समर्थक तथा रावण के शासनतंत्र के विरोधी हैं। उन्होंने तत्कालीन मुगल प्रशासनतंत्र को कलियुग वर्णन के रूप में रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में प्रस्तुत किया है।

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं।।
उ.का./100ख/छं.6।।

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।
उ.का./97ख/2।।

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।।
सु.का./19/7।।

रावण के राज्य में हम एक ऐसा निरंकुश सम्राट पाते हैं, जो ब्राह्मण होते हुए भी वेद-रीति, प्रजा और शील तीनों से विमुख है। वह आर्य संस्कृति का विरोधी है। काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या प्रतिशोध से ग्रस्त है। वह साम और दाम नीति को त्याग कर दण्ड नीति को विभीषण, दूत आदि के प्रसंग में और भेद-नीति को अंगद तथा सीता के प्रंसग में कपटपूर्ण ढंग से अपनाता है। अतः रावण के शासनतंत्र में व्यक्ति इच्छा ही शासन का मूलमंत्र है तो राजा राम में लोकमंगल की साधना। रावण का शासन सामंतीय संस्कारों से युक्त है, तो राम का लोकधर्म की चेतना से संयुक्त है। रावण के शासन में निरंकुशता है तो राम के शासन में लोक मर्यादा। रावण का शासन प्रतिशोध, हिंसा, स्वार्थ से ग्रसित है तो राम का शासन धर्म, न्याय, प्रेम, परमार्थ-पथ का अनुगामी है। इस प्रकार रावण का शासन अधर्म का प्रतीक है, तो राम का शासन धर्म का प्रतिबिम्ब। इस भांति राम का युद्ध, धर्मयुद्ध है और उसका परिणाम धर्म की रक्षा तथा सत्य की विजय और रावण जो अधर्म तथा असत्य का प्रतीक है, उसका पराभव होता है। राजनीतिक निष्कर्षों की दृष्टि से रावण की सेना के समक्ष कोई नैतिक एवम् धार्मिक आदर्श नहीं है। इसलिए उसका नैतिक बल क्षीण हो जाता है, राम की सेना का नैतिक बल अपराजेय है, क्योंकि राजा राम के पास धर्म-विजय का आदर्श है।

रामचरितमानस में शासनतंत्र का चरम मूल्य एक सर्वकल्याणकारी आदर्श राज्य की संरचना है जिसे मानसकार ने रामराज्य के रूप में स्थापित किया है, जो राजतंत्र द्वारा स्थापित होकर भी लोकतंत्र के सारे मूल्यों को अपनाए हुए है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रामचरितमानस की राजनीति और नीतिशास्त्र के आयाम बहुत व्यापक हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वह रामराज्य के नाम से अभिहित है। यही रामराज्य भारत का आदर्श नीतिशास्त्र है। यह नीतिशास्त्र सर्वकालिक है।

श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ।
बालक में हो बुद्धि बल गुण का विकास

दिनेश मिश्रा

दिलीप पांडे

बृजमोहन तिवारी

नित्य करो मानस का पाठ।
खुल जायेगी सारी गांठ।

सत्य प्रकाश पांडे जी का परिवार

14 वर्ष के वनवास में निहित है गहरा तत्व-दर्शन

महर्षि दुर्वासा की परम शिष्या बज्रहस्ती/कैकेयी को माध्यम बनाकर देवलोक में बनी थी 14 वर्ष राम वन गमन की दिव्य योजना।

मेरे राम केवल अयोध्या के ही सम्राट न रह जायें, विश्व के समस्त प्राणियों के हृदयों के सम्राट बनें, इसके लिए माता कैकेयी ने ओढ़ लिये दुनियाभर के कलंक

कैप्टन संतोष कुमार द्विवेदी
पूर्व आईएएस, समाजसेवी चिंतक एवं लेखक

रमते कणे-कणे इति रामः

सृष्टि के कण-कण में जो रमते हैं, वही हैं राम, श्रीराम, हम सबके रामलला से लेकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम। राम भारतीय चेतना के प्रतिनिधि हैं और रामायण उनकी जीवन यात्रा। कठिनाई यह है कि जो कण-कण में हैं, अर्थात् जिसका यथार्थ, कल्पना की सीमा से भी परे है, उसे सामान्य आँखों से देखना संभव नहीं होता। यह कुछ ऐसा ही है कि मुट्ठी भर स्थूल देह तो दिखती है, परंतु अपरिमेय सूक्ष्म देह को देखने के लिये दिव्य दृष्टि की आवश्यकता होती है।

निहित स्वार्थ और संकुचित वृत्तियों ने कभी श्रीराम के अस्तित्व पर सवाल उठाये तो कभी उनके काल की प्रमाणिकता पर संदेह व्यक्त किया। कालातीत सत्य है कि समुद्र की लहरों से बालू पर खींची रेखाएँ तो मिट जाती हैं, पर पत्थर पर खींची रेखा अमिट रहती है। राम के जीवन चरित्र पर अनेक विद्वानों ने अनेक ग्रंथों की रचना की, जिसमें महर्षि वाल्मीकि द्वारा संस्कृत में रचित रामायण, अवधी में तुलसीकृत रामचरितमानस सहित भारत की अनेक भाषाओं में

रामायणों की रचना की गयी है, जैसे भारतीय भाषाओं में हिंदी में कम से कम 11, मराठी में 8, बांग्ला में 25, तमिल में 12, तेलगू में 12 तथा उड़िया में 6 रामायणें मिलती हैं, जहाँ गहन तात्विक और वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा राम के जीवन चरित्र पर सभी प्रमाणित साक्ष्य देखे जा सकते हैं।

सांच को आंच कहाँ। श्रीराम के साक्ष्य अयोध्या से लेकर वनगमन पथ तक हर कहीं मिल जायेंगे। अनेक साक्ष्य श्रीलंका ने भी सहेजे हैं। अशोक वाटिका को ज्यों का त्यों रखा गया है। नासा के सैटेलाइट चित्रों में राम सेतु के अवशेष स्पष्ट दिखाई देते हैं।

जैसा कि शास्त्रों के लौकिक ज्ञान के आधार पर अवगत है कि माता कैकेई ने महराजा दशरथ से राम के राज्याभिषेक के दिन भरतजी को राजगद्दी और श्रीराम को 14 वर्ष का वनवास मांगा, हो सकता है कि बहुत से विद्वानों के लिये यह बहुत साधारण सा प्रश्न हो, लेकिन जब भी यह प्रश्न मस्तिष्क में आता है, संतोषजनक उत्तर प्राप्त करने के लिये मन विचलित हो जाता है। रामचरितमानस में इस कथानक के कारण कैकेयी को तमाम अपशब्दों से भी विभूषित किया गया।

कैकेयी नकारात्मक चरित्र के रूप में जीवन जीते हुए रामकथा की शापित दशरथ पत्नी के रूप में वर्षों से लोगों के आक्षेप और उलाहना सहती आ रही है। किंतु यदि इस घटना को हम तात्विक दृष्टि से देखें तो वास्तव में वे ही राम को उनका असली स्वरूप देने में उत्तरदायी रहीं। कथा के पीछे छुपे मर्म को जानकर न जाने कब हमारे मन से कैकेयी के प्रति स्थापित नकारात्मकता एक सहानुभूति और सम्मान में बदल जाती है। तत्वदर्शन पक्ष जानने के पश्चात् हमें सोचने पर मजबूर होना पड़ता है कि हमने आज तक कैकेयी को इस महान राम कथा की खलनायिका के रूप में क्यों देखा, जबकि वे तो इसकी रचयिता हैं। उन्होंने ही राम को राम बनाया।

14 वर्ष वनवास के दौरान श्रीराम 200 स्थानों पर रुके थे। रामायणों में उल्लिखित और अनेक अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार जब राम को वनवास हुआ, तब राम, लक्ष्मण और सीता ने अपनी वनवास की यात्रा अयोध्या से प्रारम्भ करके रामेश्वरम और उसके बाद श्रीलंका में समाप्त की। जाने-माने इतिहासकार और पुरातत्वशास्त्री, अनुसंधानकर्ता डॉ. राम अवतार ने श्रीराम और सीता के जीवन की घटनाओं से जुड़े ऐसे 200 से भी अधिक स्थानों का पता लगाया है, जहां आज भी ऐसे स्मारक स्थल विद्यमान हैं, जहां श्रीराम और सीता रुके या रहे थे।

श्रीरामचरितमानस के अनुसार भगवान राम लंका में कुल 111 दिन रहे और सीताजी लंका में 435 दिन रहीं। लंका विजय के पश्चात् भगवान राम, सीता और लक्ष्मण लंका से अयोध्या लौटे थे। अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि श्रीराम को आखिर 14 वर्ष का वनवास क्यों? क्यों नहीं 14 से कम या 14 से अधिक? इस प्रश्न के अनेक उत्तर हमें मिल सकते हैं। इसके लिये हमें कैकेयी के विवाह पूर्व के जीवन में झांकना होगा। वहां से हमें कड़ी जुड़ती हुई मिलेगी कि 14 साल राम को वनवास माँगने के पीछे था यह राज।

रामायण के हर पन्ने पर अनेक रहस्य और रोमांच छुपा है। रामायण की सबसे बड़ी घटना भगवान राम का वनवास जाना है। माता कैकेयी ने महाराज दशरथ से भगवान के लिये 14 वर्षों के लिये वनवास मांगा था, जिसकी वजह से रावण का अंत हो सका। आइये जानते हैं इस घटना के पीछे क्या कारण हैं ...

आपको जानकर हैरानी होगी कि देवताओं ने करवाया था कैकेयी से यह काम। इसके पीछे एक रोचक कथा है।

जब युद्ध में गंभीर रूप से घायल हो गये थे राजा दशरथ

विवाह से पहले कैकेयी महर्षि दुर्वासा की सेवा किया करती थीं। कैकेयी की सेवा से प्रसन्न होकर महर्षि दुर्वासा ने कैकेयी का एक हाथ वज्र का बना दिया और आशीर्वाद दिया कि भविष्य में भगवान तुम्हारी गोद में खेलेंगे। समय का पहिया चलता रहा और कैकेयी का विवाह राजा दशरथ से हो गया। एक समय स्वर्ग में देवासुर संग्राम आरंभ हो गया। देवराज इंद्र ने राजा दशरथ को सहायता के लिये बुलाया। रानी कैकेयी भी महाराज की रक्षा के लिये देवासुर संग्राम में पहुंच गयीं। युद्ध के दौरान दशरथजी के रथ के पहिये से धुरी टूट गयी और रथ लड़खड़ाने लगा। ऐसे में कैकेयी ने धुरी की जगह अपनी उंगली लगा दी और महाराज की जान बचा ली।

कैकेयी की वीरता और साहस से राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए और तीन वरदान माँगने को कहा। कैकेयी ने प्रेमवश उस समय यह कहते हुए मना कर दिया कि इसकी जरूरत नहीं है, बाद में मांग लूंगी।

समय आने पर कैकेयी ने राम के लिये 14 वर्ष का वनवास मांग लिया। लेकिन 14 वर्ष का ही वनवास क्यों मांगा? इसके पीछे कई राज हैं।

पहला कारण था कि रावण को मारने की यह शर्त थी कि अगर व्यक्ति युवावस्था में 14 यानी 5 ज्ञानेंद्रियाँ, 5 कर्मेंद्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को वनवास में रखेगा तभी अपने अंदर के घमंड और दुर्दांत रावण को मार पायेगा।

दूसरा कारण यह था कि रावण की आयु में केवल 14 वर्ष ही शेष थे। प्रश्न उठता है कि यह बात कैकेयी कैसे जानती थी? ये

घटना घट तो रही थी अयोध्या में लेकिन योजना देवलोक की थी।

अजसु पिटारी तासु सिर गई गिरा मति फेरि।
अयो.का./12।।

सरस्वती ने मंथरा की मति में अपनी योजना की कैसेट फिट कर दी, उसने कैकेयी को वही सब सुनाया, समझाया, कहने को उकसाया जो सरस्वती को इष्ट था, इसके सूत्रधार हैं स्वयं श्रीराम, वे ही निर्माता, निर्देशक तथा अभिनेता हैं, सूत्रधार उर अंतरयामी।

मेघनाथ को वही मार सकता था, जो 14 वर्ष की कठोर साधना सम्पन्न कर सके। जो निद्रा को जीत ले, ब्रह्मचर्य का पालन कर सके, यह कार्य लक्ष्मण द्वारा सम्पन्न हुआ, आप कहेंगे वरदान में लक्ष्मण तो थे ही नहीं तो इनकी चर्चा क्यों?

परंतु भाई राम के बिना लक्ष्मण रह ही नहीं सकते, श्रीराम का यश यदि झंडा है तो लक्ष्मण उस झंडा के डंडा हैं। बिना डंडा के झंडा ....

कोपभवन में कोप का नाटक हुआ था। कैकेई को राम पर भरोसा था। कैकेयी माता ने अपने सबसे प्रिय राम को मात्र अयोध्या का स्वामी न बनाकर चौदहों भुवनों का स्वामी और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम बनाने के लिये अपने पति की मृत्यु जैसा भयानक पाप और कलंक सहर्ष अपने ऊपर ओढ़ लिया और हर जगह बदनाम हो गयीं।

भगवान राम ने एक आदर्श पुत्र, शिष्य, भाई, पति, मित्र और गुरु बनकर यही दर्शाया कि व्यक्ति को रिश्तों का निर्वाह किस प्रकार करना चाहिये। अयोध्या हमारा शरीर है, जो कि सरयू नदी यानी हमारे मन के पास है। अयोध्या का एक नाम अवध भी है। अ-वध अर्थात् जहाँ कोई वध या अपराध न हो। जब इस शरीर का चंचल मन सरयू सा शांत हो जाता है और इससे कोई अपराध नहीं होता तो ये शरीर ही अयोध्या कहलाता है। शरीर का तत्व, इस अयोध्या का राजा दशरथ है। दशरथ का अर्थ हुआ वो व्यक्ति जो इस शरीर रूपी रथ में जुते हुए दसों इंद्रिय रूपी घोड़ों को अपने वश में रख सके।

तीन गुण सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण दशरथ की तीन रानियाँ कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा हैं। दशरथ रूपी साधक ने अपने जीवन में चारों पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघन के रूप में प्राप्त किया था।

तत्व दर्शन करने पर हम पाते हैं कि धर्मस्वरूप भगवान राम स्वयं ब्रह्म हैं। शेषनाग भगवान लक्ष्मण वैराग्य हैं, मां सीता शांति और भक्ति हैं और बुद्धि का ज्ञान हनुमानजी हैं। रावण घमंड का, कुंभकरण अहंकार, मारीच और मेघनाद काम के प्रतीक हैं। मंथरा कुटिलता, सूपर्णखा काम और क्रोध हैं।

चूंकि काम, क्रोध और कुटिलता ने संसार को वश में कर रखा है, इसीलिये प्रभु राम ने सबसे पहले क्रोध यानी ताड़का वध ठीक वैसे ही किया, जैसे भगवान कृष्ण ने पूतना का किया था।

नाक और कान वासना के उपादान माने गये हैं, इसीलिये प्रभु ने सूपर्णखा के नाक और कान काटे। भगवान ने अपनी प्राप्ति का मार्ग स्पष्ट रूप में दर्शाया है। उपरोक्त भाव से अगर हम देखें तो पायेंगे कि भगवान सबसे पहले वैराग्य (लक्ष्मण) को मिले थे।

फिर वो भक्ति (माँ सीता) और सबसे बाद में ज्ञान (भक्त शिरोमणि हनुमानजी) के द्वारा हासिल किये गये थे। जब भक्ति (माँ सीता) ने लालच (मारीच) के छलावे में आकर वैराग्य (लक्ष्मण) को अपने से दूर किया तो घमंड (रावण) ने आकर भक्ति की शांति (माँ सीता की छाया) हर ली और उसे ब्रह्मा (भगवान) से दूर कर दिया।

1. माता कैकेयी यथार्थ जानती हैं, जो नारी युद्ध भूमि में दशरथ के प्राण बचाने के लिये अपना हाथ रथ के धुरे में लगा सकती हैं, रथ संचालन की कला में दक्ष हैं, वह राजनीतिक परिस्थितियों से अनजान कैसे रह सकती हैं।
2. मेरे राम का पावन यश 14 भुवनों में फैल जाये, और यह बिना तप के, रावण वध के संभव न था। अतः ....
3. मेरे राम केवल अयोध्या के ही सम्राट न रह जायें, विश्व के समस्त प्राणियों के हृदयों में सम्राट बनें, उसके लिये अपनी साधित, शोधित इंद्रियों तथा अंतःकरण को पुनश्चतप के द्वारा तदर्थ सिद्ध करीं।
4. सारी योजना का केंद्र राक्षस वध है। अतः दंडकारण्य को ही केंद्र बनाया गया। महाराज अनरण्यक के उस शाप का समय पूर्ण होने में 14 ही वर्ष हैं, जो उन्होंने राम को दिया था कि मेरे वंश का राजकुमार तेरा वध करेगा, जिससे भगवान राम ने रावण का वध किया और देवलोक की योजना पूरी की।

शनि की चाल से 14 साल रामायण और महाभारत दोनों में ही 14 वर्ष वनवास की बात हुई है। रामायण में भगवान को 14 वर्ष का वनवास भोगना पड़ा था। जबकि महाभारत में पांडवों को 13 वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास गुजारना पड़ा था। दरअसल, इसके पीछे ग्रह-गोचर भी मानते हैं। उन दिनों मनुष्य की आयु आज के जमाने काफी ज्यादा होती थी। इसलिये ग्रहों की दशावधि भी ज्यादा होती थी। शनि चालीसा में लिखा है-

राज मिलन बन रामहिं दीन्हां। कैकेई हूं की मति हरि लीन्हां।।

यानी शनि की दशा के कारण कैकेयी की मति मारी गयी और भगवान राम को शनि की समयावधि में वन-वन भटकना पड़ा और उसी समय रावण पर भी शनि की दशा आयी और वह राम के हाथों मर गया।

अथाह गहराई है मानस की

विविधता, व्यापकता और गहराई में अनन्यतम है श्रीरामचरित मानस। वह तात्कालिक भी है और सर्वकालिक भी। मानस समूचे विश्व के हर व्यक्ति के लिये है, उसके कल्याण के लिये है।

प्रो. अलका पाण्डेय (डी.लिट.)
हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

गोस्वामी तुलसीदास ने जिस समय रामचरितमानस काव्य की रचना की, वह अराजकता का युग था। उस समय बौद्ध विचारधारा का बिगड़ा हुआ रूप दिखाई दे रहा था। साथ ही आमजन के सामने समस्या यह थी कि वह इस्लाम के आदर्शों को भी अपनाने के लिए तैयार नहीं था। अतः देश की संस्कृति का कोई रूप पूरी तरह नहीं बन पा रहा था। ऐसी निराश, हताश जनता के सामने कोई भी स्थिर आदर्श नहीं था। ऐसे संकट के समय गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के द्वारा, राम कथा के माध्यम से, जीवन के उच्चतम आदर्श को स्थापित करने का प्रयास किया।

राम कथा भारतीय लोक जीवन में प्राण-वायु की भाँति व्याप्त है। वास्तव में राम कथा विविध मानवीय संबंधों और आदर्शों की कथा है और यही इसके लोक जीवन में समाहित होने का रहस्य है। विविध मानव संबंधों का सजीव, साकार एवं सक्रिय रूप राम कथा में स्पष्ट परिलक्षित होता है। ऐसी स्थिति में लोक जीवन में राम कथा की व्याप्ति सहज और स्वाभाविक है। राम और राम की जीवनवृत्ति भारतीय संस्कृति और परंपरा में गहराई से गुंथी हुई है।

गोस्वामी तुलसीदास के राम अयोध्या के राजा ही नहीं, बल्कि वे समस्त चर-अचर विश्व के राजा हैं। वह ज्योति पुरुष हैं। इसीलिए गोस्वामीजी ने श्रीराम का जीवन कवि की दृष्टि से कम, भक्त की दृष्टि से अधिक लिखा है। वह स्वयं कहते हैं-

जदपि कबित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं।।
बा.कां./9/7।।

रामचरितमानस राम की वाणी और उनके चरित्र से ओतप्रोत है। इसके अंतर्गत जीवन के उच्च आदर्शों, जीवनानुभवों और कर्तव्यों

को उस स्तर तथा उस गहरी भूमिका के साथ स्पष्ट किया गया है, जो सत्य के अधिकांश अंतर को अपने अंदर समेटे हुए है। तुलसी ने अपने मानस में, जीवन के आदर्शों में, राजा-प्रजा, माता-पिता, गुरु, मित्र, स्त्री, सेवक, शत्रु सभी के स्वरूप को अंकित किया है, जिसमें अलग-अलग कर्तव्यों का स्पष्ट संकेत मिलता है। वास्तव में, गोस्वामीजी का मुख्य उद्देश्य, जीवन के इन्हीं आदर्शों को स्पष्ट करना है।

वे समाज के समक्ष राम के व्यक्तिगत तथा परिवार के लोगों के आचरण को उपस्थित करते हैं और इस दृढ़ता और विश्वास के साथ उसके कर्तव्यों का स्पष्टीकरण कर देते हैं कि हमारे लोक की उलझन और समस्याओं के सुलझाव में हमें उनका महत्वपूर्ण प्रकाश प्राप्त होता है।

यदि हम राम के जीवन की गाथा के आदर्शों को ग्रहण करें तो जीवन की समस्त समस्या का उत्तर भी हमें मिल जाता है।

गोस्वामीजी ने राम को परमपुरुष मानकर, सिर्फ राम की ही नहीं, बल्कि भगवान की भी कथा कही है। उन्होंने धर्मनिष्ठा का प्रसार किया और भारतीय संस्कृति के सबसे प्रधान तत्व का भी प्रतिपादन किया। उदाहरण के लिए-

राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना।।
बा.कां./115/8।।
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।
बा.कां./7घ/2।।

गोस्वामीजी सीता और राम को अपना आराध्य मानते हैं। जब वह सारे संसार को सीता और राम के रूप में देखते हैं, तो इससे यह प्रकट होता है कि संसार के प्रत्येक व्यक्ति का, चाहे वह किसी जाति का हो, किसी धर्म का हो, किसी देश का हो, किसी वर्ण का हो, राजा हो या रंक, गरीब हो या अमीर, वह कितना आदर करते हैं। यह जनतंत्र की भावना के अनुरूप है, जिसमें प्रत्येक मनुष्य को बराबर माना गया है। यहाँ तुलसीदासजी मनुष्य मात्र को, प्रत्येक प्राणी को सीता राममय मानते हैं। अर्थात प्रत्येक को भगवान का रूप मानते हैं। ऐसे में किसी के साथ दुर्व्यवहार करना तो दूर, ऐसा सोचना भी उनकी विचारधारा के अनुकूल नहीं है।

गोस्वामीजी ने समस्त आगम, निगम, पुराण, उपनिषद आदि ग्रंथों का अध्ययन करके परंपरागत सारतत्वों को आत्मसात किया और सबका निचोड़ लेकर, अपनी अनुभूतियों को समेट कर रामचरितमानस रूपी ग्रंथ लोगों को दिया। उनका राम साकार, निराकार, द्वैत, अद्वैत की सीमाओं से परे शील, शक्ति और सौंदर्य की तीनों शक्तियों से समन्वित है। राम कथा साधन है, रामत्व प्राप्ति करना साध्य है और यही हमारी सांस्कृतिक सिद्धि भी है।

रामचरितमानस के सृजन में कवि का नैतिक दृष्टिकोण प्रधान रहा है। उन्होंने रामचरितमानस के माध्यम से नैतिक आस्था को प्रस्तुत किया है, जो मानव-जीवन की समृद्धता का आधार है। तुलसी का युग विषमताओं का युग था। मानव मूल्य नष्ट हो रहे थे, इसीलिए उन्होंने नैतिक आदर्श को प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया। मानस के आरंभ में संतों की वंदना से कवि का आशय स्पष्ट होता है।

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।
बा.कां./1/5-6।।

संत परोपकारी होते हैं और दूसरों के दुःख को सहन करते हैं। जबकि असंत बिना कारण ही दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं। संत का हृदय नवनीत के समान कोमल होता है, संवेदनशील और सहृदय होते हैं, जबकि असंतो की संगति सदैव दुखदाई होती है। पर निंदा सुनकर वह प्रसन्न होते हैं और दूसरों के ऐश्वर्यादि को देखकर ईर्ष्याभाव से भर उठते हैं। रामचरितमानस में गोस्वामीजी ने बहुत विस्तार से असंतो के विषय में बताया है-

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ।।
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई ।।
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।
उ.कां./38/1-4।।

तुलसी ने मानस में सत्संग के महत्व का चित्रण विशेष रूप से किया है, जो उनकी सात्विक वृत्तियों का परिचायक है। राम की उपासना करते हुए तुलसी की दो भावनाएँ मुख्य रूप से स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। पहली, स्वयं को संतुष्ट करने की भावना। दूसरी, समाज में नैतिक आदर्श को स्थापित करने की आकांक्षा। इसीलिए

रामचरितमानस में कवि के व्यक्तित्व का उत्कर्ष दिखाई देता है।

रामचरितमानस में तुलसीदास ने रचनाकार की पूरी आस्था लेकर, जीवन को संघर्ष, घुटन, विघटन से बचाकर उसे राममय बनाया है। रामचरितमानस में सत्य को सौंदर्य से आवेष्टित करके, शिव की स्थापना का सफल प्रयास किया गया है। यही उसकी सबसे बड़ी कसौटी है। इसमें कर्तव्य प्रधान व्यवहार भी परिलक्षित हुआ है और व्यक्तिगत प्रेम का निर्वाह भी दिखाई देता है।

अवधी भाषा में प्रचलित दोहा, चौपाई के माध्यम से जनमानस तक गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी बात पहुँचाने की चेष्टा की है। जन भाषा में लिखा गया यह महाकाव्य अत्यंत सरल है, जो हर हृदय में उतर सका है। विद्वानों के लिए इसमें अनेक दार्शनिक सिद्धांत भी हैं और सरल भक्ति हृदय के लिए यह ग्रंथ सर्व सुलभ भी है। इसीलिए इसकी महत्ता आज भी लोगों में व्याप्त है।

साहित्य किसी संप्रदाय का हिमायती नहीं होता। वह संधि और समझौते की शर्तों पर नहीं चलता है। निस्संदेह तुलसी का मानस, अपनी विविधता, व्यापकता और गहराई में अनन्यतम है। जीवन की कोई भी मार्मिक अनुभूति, विषम परिस्थिति, अंतर्द्वंद्व ऐसा नहीं है जो रामचरितमानस में स्थान न पा सका हो। सूक्ष्मता, स्पष्ट उतार-चढ़ाव, घात-प्रतिघात आदि बहुत भावात्मक गहनता के साथ इसमें अंकित हैं। जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की व्याख्या करते हुए इन चार आयामों में जीवन की समग्रता का वर्णन इसमें किया गया है। जीवन के ऊँचे लक्ष्यों को समेटना और ऊर्ध्वगामी चेतना की प्रक्रिया अपनाना, जीवन का लक्ष्य है। यह इसमें स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

कर्म करने की स्वाधीनता एवं कर्म की प्रतिष्ठा के साथ-साथ कर्म के अनुसार फल भोग की स्थिति का प्रतिपादन गोस्वामीजी ने किया है। लौकिक दृष्टि से कर्म के अनुसार फल भोग का सिद्धांत एवं पारलौकिक दृष्टि से सारे जगत का प्रपंच, मोहमूल और स्वप्नवत मानकर 'जगत मिथ्या' का सिद्धांत प्रतिपादित किया है। रामचरितमानस के उत्तरकांड में राम, हनुमान के सम्मुख लौकिक दृष्टि से अनिवार्य, कर्म फलभोग संबंधी विचार का प्रतिपादन करते हैं -

करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना।।
कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता।।
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत दुख जाने।।
त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक।।
उ.कां./40/4-7।।

राम का आदर्श और उनकी जीवन-पद्धति आज कल्पना से परे है। तुलसी के राम जो राजमहलों से उतरकर पत्थरों पर पैदल चले। न्याय और स्वतंत्रता की स्थापना के लिए लड़े। राम और रावण का महासंघर्ष राजत्व संबंधी दो दृष्टिकोणों का ही तो संघर्ष है, जो मध्य युग की राजव्यवस्था की सटीक व्याख्या है। शासन स्वदेशी हो और उसमे धर्मनिष्ठा का प्रसार हो।

वास्तव में तुलसी, समाज की तरह राजनीति को भी धर्म से अंतःसूत्रित करना चाहते हैं। इसीलिए प्रजासेवी, लोकरंजक राजा के रूप में उन्होंने राम की कल्पना की है और उनके व्यक्तिगत जीवन को स्वतंत्र रूप से उभरने नहीं दिया है। यह रामचरितमानस को युग की भूमिका देने के साथ ही, धर्म और लोक को भी एक सूत्र में बांधने का प्रयास करती है।

रामचरितमानस घटनात्मक काव्य नहीं है, बल्कि भक्तिमूलक चरित्र काव्य है। उनका मुख्य लक्ष्य राम का यश विस्तार है, कथा विवरण नहीं। उनकी भक्ति का लक्ष्य केवल राम की उपासना नहीं है, बल्कि जीवन के ऊँचे आदर्श की स्थापना करना और मानव कल्याण की कामना भी उनका लक्ष्य है। इस कामना की पूर्ति में उनकी आत्मा को संतोष मिलता है। इसीलिए गोस्वामीजी ने अपने आत्मिक सुख के लिए काव्य रचना की थी। तुलसीदास की दृष्टि विशाल थी और उन्होंने उसी व्यक्ति को और उसी वस्तु को सबसे अच्छा माना है जो सबका लाभ कराने वाली है, किसी एक का नहीं। उनका मानना है-

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।
बा.कां./13/9।।

वही कीर्ति, वही कविता और वही संपत्ति उत्तम है जो गंगाजल की तरह सबका हित करने वाली हो। यहाँ संपत्ति और साहित्य को ही सभी लोगों में बांटने की बात नहीं की गई है, बल्कि कीर्ति का भी ऐसा वितरण होना चाहिये कि उससे सभी लाभान्वित हो सकें।

रामचरितमानस देशकाल से परे मौलिक और भागवत वांग्मय है। राम की कृपा से ही इसका रहस्य समझ में आ सकता है। उसकी काव्य गरिमा का अंकन साधारण लेखनी के अधिकार के बाहर है, केवल इतना ही कहकर संतोष कर लेना पड़ता है-

कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें।।
बा.कां./8/11।।

इसका रहस्य गोस्वामीजी ही समझ सके अथवा भगवान की कृपा से विशेष अधिकारी ही समझते आ रहे हैं। कवित्त-विवेक न होने पर रामचरितमानस की रचना ही संभव नहीं थी। गोस्वामीजी का कवित्त-विवेक राम कृपा में आश्रित था, इसलिए उसका मर्म राम कृपा से ही समझा जा सकता है।

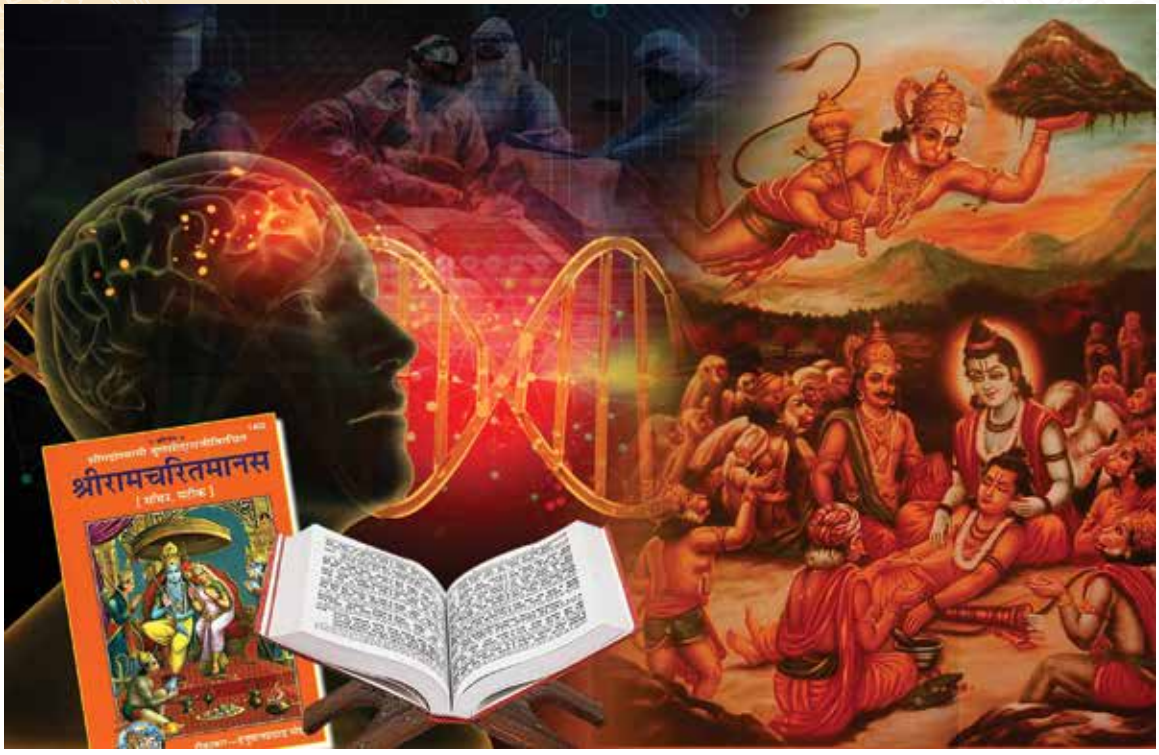

भव भेषज रघुनाथ जसु ...

समस्त समस्याओं का रामबाण इलाज है मानस का नित्य पाठ - वैज्ञानिक विश्लेषण

डॉ. प्रदीप कुमार सिंघल
राष्ट्रीय अध्यक्ष संस्कृति संज्ञान

मैं एक ऐलोपैथिक डॉक्टर हूँ। इस समय इंद्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल दिल्ली में कार्यरत हूँ। पिछले कुछ वर्षों में मैंने यह महसूस किया कि लोगों में शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक समस्याएँ लगातार बढ़ रही हैं। बहुत सोच-विचार और अपने अनुभव के आधार पर मैंने कुछ लोगों को नित्य सुबह जल्दी उठकर योग और स्नान करके परिवार के साथ बैठकर श्रीरामचरितमानस का कुछ समय के लिए पाठ करने की सलाह दी। मुझे यह देखकर बड़ा अच्छा लगा कि आगामी कुछ महीनों में इन लोगों की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में कमी आई। ऐसा क्यों हुआ इसका वैज्ञानिक विश्लेषण आगे करेंगे। इसी विचार के साथ मैंने संस्कृति संज्ञान संस्था की स्थापना की, जिसका संकल्प है-

1. घर-घर में हो श्रीरामचरितमानस का पाठ

2. परिवार और समाज हो संस्कारित एवम् स्वस्थ

3. तभी भारत बनेगा एक विकसित राष्ट्र और विश्व गुरु

सन् 2020 में जब कोविड की महामारी शुरू हुई, तब मैंने स्वदेशी जागरण हमारा परिवार के चिकित्सा प्रकोष्ठ के 20 चिकित्सकों की एक टीम भारतवर्ष के कोविड के मरीजों को परामर्श देने के लिए बनाई। मैं स्वयं उस समय नित्य 100 से 150 लोगों को फोन द्वारा परामर्श देता था। हमारी पूरी टीम ने कोविड-19 की महामारी के 3 वर्षों के दौरान 20 हजार से ज्यादा लोगों को परामर्श दिया। इस समय हमने एक प्रयोग किया, कोविड-19 का कोई खास इलाज तो है नहीं, जिन भी मरीजों के फोन आते थे वे बहुत ही घबराये हुए होते थे। अधिकतर कहते थे कि डॉक्टर साहब कोविड-19 हो गया है, हमारा ऑक्सीजन सैचुरेशन कम हो गया

है, हमारे हृदय और सांस की गति बढ़ रही है, हमारे लिए किसी अस्पताल में बिस्तर की व्यवस्था करा दीजिए, नहीं तो हम मर जाएंगे। हमने उन सबको बताया कि हम आपके लिए बिस्तर की व्यवस्था करेंगे, ऑक्सीजन सिलेंडर की भी व्यवस्था करेंगे, तब तक आप यह दवाई ले लो, लेकिन इसके साथ आप श्रीरामचरितमानस की एक किताब खरीद लो, ऑनलाइन भी मंगवा सकते हो और नित्य दिन में तीन बार 30 मिनट के लिए इसका पाठ करो। लोगों ने पूछा इससे क्या होगा? हमने कहा कि इससे लोगों को फायदा हो रहा है। आप पहले इसको शुरू करिए, फिर हम आपको बाद में बताएंगे कि इससे क्यों फायदा होता है। लोगों ने हमारी बात पर विश्वास किया और हमें यह देखकर बड़ा ही अच्छा लगा कि अधिकतर मरीजों में अगले 24 घंटे में बहुत ही अच्छा सुधार हुआ। उनका ऑक्सीजन सैचुरेशन भी सुधरने लगा, उनकी हृदय और सांस की गति भी सामान्य स्थिति में आ गई। हमारे द्वारा परामर्श किये गये अधिकतर मरीज घर पर ही ठीक हो गए। इसका वैज्ञानिक विश्लेषण मैं आगे करूँगा।

कुछ लोगों ने सवाल पूछा कि श्रीरामचरितमानस का परिवार के साथ नित्य पाठ करने से हमारे परिवार में सुख, शांति और समृद्धि आएगी, इस पर हम कैसे विश्वास करें। मैंने उन्हें जवाब दिया कि 'यदि आप बीमार हैं, आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो आप किसी डॉक्टर के पास इस आशा से जाते हैं कि मैं डॉक्टर के पास जाऊँगा, वह मुझे दवा देंगे और मैं 100 फीसदी ठीक हो जाऊंगा।

अगर आप इसी आस्था से कि 'श्रीरामचरितमानस का परिवार के साथ नित्य पाठ करने से हमारे परिवार में सुख, शांति समृद्धि आएगी तो न केवल आपके परिवार में वरन् पूरे समाज और राष्ट्र में सुख, शांति और समृद्धि आएगी।' आप अपनी जिंदगी में कोई भी लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं तो रामचरितमानस पढ़ने से पहले पूरी श्रद्धा से उस लक्ष्य का संकल्प लें। यह प्रक्रिया नित्य करने से आप यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अधिक ऊर्जा से कार्य करेंगे।

'भय' नहीं, विश्वास

धार्मिक दृष्टि से मैं दो चीज आपको बताना चाहता हूँ। एक है 'श्रद्धा और विश्वास' और दूसरा है 'भय'। आपने देखा होगा करोड़ों लोग मंदिर जाते हैं, वैष्णो देवी मंदिर जाते हैं और बड़े-बड़े मंदिर जाते हैं। वहाँ जाकर हजारों रुपया दान भी करते हैं। लेकिन ऐसा करने से भी इन लोगों में अपने धर्म में आस्था नहीं आती है और उनका शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य अच्छा होने के बजाय और खराब ही होता है।

श्रद्धा और विश्वास के साथ जब हम श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ करते हैं, तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जो परिवर्तन होते हैं उन्हें दो भागों में समझा जा सकता है। **एक है तात्कालिक-** रामचरितमानस का पाठ करने के लिए हम रात को जल्दी सोते हैं, सुबह जल्दी उठते हैं फिर नहाते हैं। यह दिनचर्या हमारे शरीर के जेनेटिक सिस्टम के अनुरूप है, क्योंकि हजारों साल से हम यह करते आ रहे हैं। इससे हमारे शरीर में सकारात्मक रेडिकल्स उत्पन्न होते हैं। जबकि, इसके विपरीत यदि हम देर से सोते हैं, देर से जागते हैं, तो नकारात्मक रेडिकल्स पैदा होते हैं, जो शरीर को हानि पहुँचाते हैं। रामचरितमानस का पाठ करने के पश्चात हम सोचते हैं कि आज तो हमने रामचरितमानस पढ़ी है, आज दिन अच्छा रहेगा। श्रीरामचरितमानस के रचनाकार गोस्वामी तुलसीदास ने बालकाण्ड के आरंभ में ही लिखा है-

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।
बा.का./श्लोक 2।।

अर्थात्- समस्त चराचर जगत का कल्याण करने वाले शंकर ही 'विश्वास' हैं और भवानी 'श्रद्धा' हैं। श्रद्धा और विश्वास के प्रति हमारा अंतःकरण दृढ़ हो जाये तो बुरे तत्वों का संहार निश्चित है, इसमें किसी तरह के शक की कोई गुंजाइश नहीं है। श्रद्धा मनुष्य के उन आधारभूत सिद्धांतों में से एक है, जिससे शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक और अध्यात्मिक यानी कि चतुर्दिक विकास होता है। शिव संसार के बुरे तत्वों के संहारक हैं।

इसका सामान्य अर्थ यही हुआ कि विश्वास हमारी बहुत बड़ी शक्ति है। इसे पुष्ट करने के लिये भवानी अर्थात् श्रद्धा का होना बहुत जरूरी है। विश्वास का जागरण श्रद्धा से ही होता है। एक बार जब विश्वास जग जाता है, तो जीवन में दुखों के अंत की शुरुआत हो जाती है और समय के साथ सुख अपने पूर्ण रूप में परिलक्षित होने लगता है।

हमने पाया कि श्रद्धा और विश्वास से उत्पन्न सकारात्मक सोच आते ही आपके शरीर में कुछ ऐसे हारमोंस बनते हैं, जो आपको न केवल खुश रखते हैं, आपकी नकारात्मक सोच से बनने वाले फ्री रेडिकल्स (हानिकारक हारमोंस) को भी बेअसर करते हैं। आपने सुना और पढ़ा होगा कि जिस व्यक्ति के शरीर में जितने ज्यादा फ्री रेडिकल्स बनेंगे, वह व्यक्ति उतना ही ज्यादा बीमार

होगा और अनेक भयंकर बीमारियाँ जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, कैंसर, हृदयरोग इत्यादि के होने की भी संभावना अधिक होगी। फ्री रेडिकल्स नकारात्मक सोच की वजह से बनते हैं, इसके दूसरे अन्य कारण भी हैं, लेकिन नकारात्मक सोच एक महत्वपूर्ण कारण है। इसी वजह से जो बच्चे बार-बार बीमार पड़ते थे, उनको और कोविड के मरीजों को फायदा हुआ।

'मानस' से मानसिक ऊर्जा

अब बात करते हैं श्रीरामचरितमानस पाठ के **दीर्घकालिक प्रभाव** की। वैज्ञानिक रूप से यह सिद्ध हो चुका है कि विचारों में शक्ति होती है। विचार ही हमारे संकल्प बनते हैं और संकल्प पूरे होते हैं क्योंकि उनका कोई विकल्प नहीं होता है। मनुष्य 90 प्रतिशत से ज्यादा कार्य, अपने **अवचेतन मस्तिष्क (सबकॉन्शियस माइंड)** से करता है। जैसे हम खाना खाते हैं, गाड़ी चलाते हैं, कपड़े पहनते हैं इत्यादि। इसलिए यदि हम कुछ मास के लिए किसी भी संस्कार में रहते हैं तो उसका असर हमारे अवचेतन मस्तिष्क में समाहित हो जाता है और हमारा व्यवहार भी उसी तरह से परिवर्तित हो जाता है। जब हम श्रीरामचरितमानस नित्य कुछ समय के लिए पढ़ते हैं तो उसके चौपाइयों, दोहों और छंदों से काफी सकारात्मक और जीवन के लिए उपयोगी बातें हमारे अवचेतन मस्तिष्क में समाहित हो जाती हैं। इससे आपका व्यवहार परिवार और समाज के लिए सकारात्मक हो जाता है। परिवार और समाज के लोग आपको पसंद करने लगते हैं। इससे आपको जो खुशी मिलती है, उससे भी आपके शरीर के अंदर सकारात्मक हारमोंस बनते हैं, जो आपको खुश, प्रसन्नचित्त और स्वस्थ रखते हैं। इससे आपको अपनी कार्यशैली, व्यवहारशैली एवं व्यापारशैली में भी सकारात्मक योगदान मिलता है, जो आपके परिवार, समाज और देश के हित में है।

इसी वजह से कोविड के जिन मरीजों ने रामचरितमानस पढ़ना जारी रखा, उनमें कोविड की जटिलताएँ (कॉम्प्लिकेशंस) बहुत ही कम हुईं। इसी तरह से जो बच्चे बार-बार बीमार पड़ते थे, श्रीरामचरितमानस पढ़ने से उनकी दिनचर्या में सुधार हुआ, जिससे उनके शरीर में सकारात्मक हार्मोन बनने से उनका विकास अच्छा हुआ और प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने से बार-बार बीमार होने की समस्या में भी काफी सुधार हुआ।

श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ करने से सकारात्मक हार्मोन पैदा होते हैं जो शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को संतुलित रखते हैं। इसका वैज्ञानिक विश्लेषण भी हम करेंगे। आजकल विश्व की विख्यात दवा निर्माता कंपनियाँ **गायत्री मंत्र** पर शोध कर रही हैं। चूहों और अन्य प्रायोगिक जानवरों पर इसके प्रभाव का अध्ययन किया जा रहा है। इसके परिणाम बहुत ही अच्छे हैं, इन जानवरों को कुछ महीने गायत्री मंत्र सुनाने से वजन अच्छा बढ़ रहा है, वे ज्यादा खुश नजर आ रहे हैं। इसका कारण उनके शरीर के अंदर गायत्री मंत्र सुनने के बाद बन रहे सकारात्मक हारमोंस जैसे सेरोटोनिन इत्यादि हैं, इन हारमोंस को अलग करके इनके इंजेक्शन और गोलियाँ बनाई जा सकती हैं, जो अनेक मानसिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं के इलाज एवं शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में प्रयोग की जा सकती हैं। गायत्री मंत्र भी रामायण के दोहे और चौपाइयों से ही बना है। जल्द ही श्रीरामचरितमानस पर भी परीक्षण शुरू हो जाएंगे। हमारी संस्था का मानना है कि अगर आप श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ अपने परिवार के साथ सुबह कुछ समय के लिए करेंगे तो इंजेक्शन या टेबलेट लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी, आप और आपका परिवार हमेशा खुश, प्रसन्नचित्त और स्वस्थ रहेगा।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि गोस्वामी तुलसीदास रचित श्रीरामचरितमानस समस्त विश्व के कल्याण के लिए एक अनमोल औषधि है। यह न केवल शारीरिक रोगों बल्कि 'मानस' रोगों का समूल इलाज करने में सक्षम है।

तुलसीदास ने लिखा है-

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि।।
कि.का./30क।।

अर्थात् श्रीराम का यश संसार के सभी रोगों की अचूक दवा है। जो स्त्री-पुरुष इसे सुनेंगे, श्रीरामजी उनकी समस्त मनोकामनाओं को पूरा करेंगे।

इसी तरह जब गंगा नदी पार करने के लिए प्रभु श्रीराम केवट से अनुरोध करते हैं, तो वह कहता है-

चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।।
अयो.का./99/4।।

अर्थात् सब लोग ऐसा कहते हैं कि आपके चरणों की धूल में कोई जड़ी है, जो अपने स्पर्श से पत्थर बन चुके मनुष्य को भी जिंदा कर देती है।

इसी तरह गोस्वामीजी ने लिखा है-

सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला।।
बा.का./2/8।।

अर्थात् अच्छे लोगों का साथ आनंद और कल्याण का मूल यानी जड़ी है। सत्संग की प्राप्ति ही सिद्धि यानी फल है और बाकी सभी साधन इसके फूल हैं।

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।।
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं।।
उ.का./121ख/7,8।।

अर्थात् श्रीरामजी की भक्ति संजीवनी जड़ी है। श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही इसका अनुपान यानी दवा के साथ लिया जाने वाला मधु आदि है। यदि ऐसा संयोग बने तो रोगों का नाश हो जाता है, नहीं तो करोड़ों प्रयत्नों से भी वे नहीं जाते हैं।

ये उदाहरण हमारे जीवन में श्रीरामचरितमानस की चौपाइयों के प्रभाव को बताने के लिये हैं। पूरा ग्रंथ ही हमें जीवन को जीने की कला ही नहीं सिखाता है, बल्कि सांसारिक सुख-दुःख से ऊपर उठकर जीवन के असली उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायता करता है।

मैं बच्चों का डॉक्टर हूँ। मेरे पास 24-25 वर्ष के उन लोगों के फोन आते हैं, जिनको मैंने उनके बचपन में देखा था। कोई व्यापार करता है तो कोई ऑफिस में कार्य करता है। वे बताते हैं कि हमें कार्य करते समय तनाव रहता है, घबराहट होती है, डिप्रेशन भी शुरू हो गया है, काफी दवाई हम ले रहे हैं, लेकिन फिर भी फायदा नहीं हो रहा है, कुछ सलाह दीजिए।

मैंने उनको सलाह दी कि स्वस्थ रहने के लिए आपके मन का शांत होना और एक सकारात्मक सोच रखना नितांत आवश्यक है। आप नित्य सुबह जल्दी 6:00 बजे तक जाग जाइए, स्नान और कुछ समय योग-प्राणायाम करने के पश्चात् 15 या 20 मिनट के लिए श्रीरामचरितमानस का पाठ कीजिए। दोपहर में अगर कार्य करते समय कुछ तनाव या घबराहट होती है तो कुछ समय के लिए रामचरितमानस के इस मंत्र का जाप कर सकते हैं। अगर मंत्र आपको याद नहीं है तो उसे अपने मोबाइल फोन से सुन सकते हैं।

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा।।
बा.का./51/7।।

जो भगवान श्रीराम ने पहले से ही रच रखा हैं, वही होगा, तुम्हारे कुछ करने से वो बदल नहीं सकता। इससे इन सबको काफी लाभ हुआ। अब ये सभी लोग और इनके साथ अन्य लोग भी श्रीरामचरितमानस का नित्य सुबह पाठ करते हैं।

पूरे परिवार को होता है लाभ

अधिकतर परिवारों में अत्यधिक बीमारियों का कारण, उन परिवारों में नित्य आपसी झगड़े का होना है। बच्चों का डॉक्टर होने के कारण अक्सर मेरे संपर्क में परिवार के सारे सदस्य ही आ जाते हैं और वह धीरे-धीरे मुझे अपनी समस्याएँ भी बताने लगते हैं। मैंने उनको सलाह दी कि आपके परिवार में झगड़े का कारण आप लोगों के दिमाग का अशांत होना और नकारात्मक सोच है। मेरे सुझाव पर उन्होंने नित्य सुबह श्रीरामचरितमानस का पाठ शुरू किया। आपको जानकर अच्छा लगेगा कि न केवल इन परिवारों में झगड़े बहुत कम हुए वरन् परिवार के सदस्यों का स्वास्थ्य भी अच्छा हुआ। एक शब्द

में कहें तो उनके परिवार का चतुर्दिक विकास शुरू हो गया।

पिछले 5 वर्षों में मैंने गर्भ संस्कार पर भी शोध किया है। गर्भवती महिलाएँ भी मेरे पास परामर्श करने आती हैं कि डॉक्टर साहब यह बताइए कि हमारे गर्भ में पल रहा बच्चा कैसे स्वस्थ रहे। मैंने उनको सलाह दी कि आप स्त्री विशेषज्ञ की सलाह के साथ एक कार्य और कीजिए। नित्य सुबह उठकर अपने पति के साथ श्रीरामचरितमानस का पाठ कुछ समय के लिए अवश्य कीजिए। तकरीबन 100 से अधिक महिलाओं को मैंने यह परामर्श दिया और आपको आश्चर्य होगा यह जानकर कि 90 प्रतिशत से अधिक महिलाओं में सामान्य प्रसव (डिलीवरी) हुआ, जबकि आजकल बड़े-बड़े अस्पतालों में सामान्य प्रसव (नॉर्मल डिलीवरी) की दर केवल 60 से 70 प्रतिशत है, बाकी 30 से 40 प्रतिशत में ऑपरेशन से बच्चा होता है।

कुछ लोगों ने मुझसे पूछा कि इसका क्या कारण है तो मैंने उनको बताया कि जो भी महिलाएँ श्रीरामचरितमानस का पाठ कर रही हैं, उनका मन शांत रहता है, उनकी सोच सकारात्मक रहती है। जिससे उनके शरीर के अंदर कुछ ऐसे हारमोंस बनते हैं जो उनको स्वस्थ रखते हैं, प्रसन्न रखते हैं, जिसका सीधा प्रभाव गर्भ में पल रहे बच्चे पर पड़ता है और जब ये महिलाएँ अस्पताल में प्रसव के लिए जाती हैं तो उनके मन में कोई भय नहीं होता, सोच सकारात्मक रहती हैं, जिससे कि इन्हें सामान्य प्रसव (नॉर्मल डिलीवरी) होती है। इसके विपरीत जो महिलाएँ रामचरितमानस नहीं पढ़ रही हैं, वे जब प्रसव (डिलीवरी) के लिए अस्पताल में जाती हैं तो उनके अंदर एक घबराहट होती है। जिसकी वजह से गर्भ में जो बच्चा है, उसके हृदय की गति बढ़ जाती है और जैसे ही स्त्रीरोग विशेषज्ञ को ज्ञात होता है कि बच्चे की हृदय गति बढ़ रही है, वह तुरंत ऑपरेशन की तैयारी शुरू कर देते हैं, इस वजह से ऑपरेशन की दर ज्यादा है।

पिछले कुछ सालों के अनुभव के आधार पर मैंने यह महसूस किया है कि जिन परिवारों में श्रीरामचरितमानस का पाठ नित्य होता है, उनके बच्चे संस्कारित होते हैं। उनका स्वास्थ्य अच्छा होता है। अपने माता-पिता और समाज के लोगों की इज्जत करना जानते हैं। अपनी पढ़ाई और भविष्य पर केंद्रित होते हैं। ऐसे ही युवा भारतवर्ष को अनुशासित, भ्रष्टाचार रहित, विकसित राष्ट्र एवं विश्व गुरु बनाने की क्षमता रखते हैं।

उत्तरकांड में अनेक दोहे हैं, जो शारीरिक मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को संतुलित रखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।।
उ.का./सो.89 क।।

गुरु के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? अथवा वैराग्य के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? इसी तरह वेद और पुराण कहते हैं कि श्रीहरि की भक्ति के बिना क्या सुख मिल सकता है।

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु।।
उ.का./90क।।

बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती, भक्ति के बिना श्रीरामजी पिघलते नहीं और श्रीरामजी की कृपा के बिना जीव स्वप्न में भी शान्ति नहीं पाता।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।।
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।
उ.का./120ख/29,30।।

सब रोगों की जड़ मोह है। उन व्याधियों से फिर और बहुत से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वात है, लोभ अपार कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाता रहता है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई।।
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।।
उ.का./120ख/31,32।।

यदि कहीं ये तीनों भाई (वात,पित्त और कफ) प्रीति कर लें (मिल जायँ) तो दुःखदायक सन्निपात रोग उत्पन्न होता है। कठिनता से प्राप्त होने वाले जो विषयों के मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) हैं, उनके नाम कौन जानता है।

ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई।।
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।
उ.का./120ख/33,34।।

ममता दाद है, ईर्ष्या खुजली है, हर्ष-विषाद गले के रोगों की अधिकता है (गलगंड, कण्ठमाला या घेघा आदि रोग हैं), पराये सुख को देखकर जो जलन होती है, वही क्षयी है। दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है।

अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।
तृस्ना उदरबुद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी।।
उ.का./120ख/35,36।।

अहंकार अत्यंत दुःख देनावाला डमरू (गाँठ का) रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरूआ (नसों का) रोग है। तृष्णा

बड़ा भारी उदरवृद्धि (जलोदर) रोग है। तीन प्रकार (पुत्र, धन और मान) की प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी हैं।

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।।
उ.का./120ख/37।।

मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। इस प्रकार अनेकों बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ।

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हि संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।।
उ.का./121क।।

एक ही रोग के वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत-से असाध्य रोग हैं। ये जीव को निरंतर कष्ट देते रहते हैं, ऐसे दशा में वह समाधि (शांति) को कैसे प्राप्त करे?

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।।
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं।।
उ.का./121ख/7,8।।

श्रीरघुनाथजी की भक्ति संजीवनी जड़ी है। श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवा के साथ लिये जाने वाला मधु आदि) है। इस प्रकार संयोग हो तो वे रोग भले ही नष्ट हो जायँ, नहीं तो करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते।

किसी भी रोग के इलाज के लिए तुरंत कार्रवाई

लंका कांड के एक प्रसंग में जब लक्ष्मण मूर्छित हो जाते हैं तब निश्चित समय में तुरंत कार्रवाई करने से ही अच्छा परिणाम आया।

जामवंत कह बैद सुषेना। लंकाँ रहइ को पठई लेना।।
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता।।
लं.का./54/7,8।।

जामवंत ने कहा-लंका में सुषेण वैद्य रहता है, उसे ले आने के लिये किसको भेजा जाय? हनुमानजी छोटा रूप धरकर गये और सुषेण को उसके घर समेत तुरंत ही उठा लाये।

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा।।
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ।।
लं.का./57/7,8।।

हनुमानजी ने पर्वत को देखा, पर औषध न पहचान सके। तब हनुमानजी ने एकदम से पर्वत को ही उखाड़ लिया। पर्वत लेकर हनुमानजी रात ही में आकाश मार्ग से चले और अयोध्यापुरी के ऊपर पहुँच गये।

हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना।।
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई।।
लं.का./सो.61/1,2।।

श्रीरामजी हर्षित होकर हनुमानजी से गले लगकर मिले। प्रभु परम सुजान और अत्यंत ही कृतज्ञ हैं। तब वैद्य ने तुरंत उपाय किया, लक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे।

तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला।।
सु.का./46/6।।

हे कृपालु! आप जिस पर अनुकूल होते हैं, उसे तीनों प्रकार के भवशूल नहीं व्यापते।

इसी दृष्टिकोण को केंद्र में रखते हुए संस्कृति संज्ञान संस्था का संकल्प है कि 2030 तक भारतवर्ष के हर परिवार में कुछ समय के लिए नित्य श्रीरामचरितमानस का पाठ परिवार के सदस्य अवश्य करें, ताकि भारतवर्ष एक स्वस्थ, अनुशासित, भ्रष्टाचार रहित, विकसित राष्ट्र और विश्वगुरु बन सके।

श्रीरामचरितमानस से प्रेरणा

श्रेष्ठकर्म हेतु प्रोत्साहन - मानस के अनकों दोहों और चौपाइयों से

डॉ. प्रदीप कुमार सिंघल, राष्ट्रीय अध्यक्ष संस्कृति संज्ञान
डॉ एन के गोयल, वरिष्ठ सलाहकार संस्कृति संज्ञान
सत्य प्रकाश पांडे, राष्ट्रवादी चिंतनधारा के वरिष्ठ लेखक
पवन सेठी, संयोजक संपर्क समिति संस्कृति संज्ञान

श्रीरामचरितमानस के विभिन्न कांडों में बहुत सारे प्रसंग और दोहे हैं, जो हमें जीवन में अच्छा कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसका बहुत ही सकारात्मक प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर पड़ता है, जो हमारे मानसिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य को अच्छा करता है, ऐसे ही कुछ दोहों पर हम इस लेख में चर्चा करेंगे।

बालकांड में ऐसे कई प्रसंग आते हैं जिसमें तुलसीदास ने बहुत ही प्रेरक करने वाले दोहों के द्वारा श्रीरामचरितमानस के पात्रों के चरित्र को दर्शाया है।

विश्वामित्र द्वारा राम को राक्षसों के वध के लिये प्रेरित करना

वन में राक्षसों ने बहुत ही आतंक मचाया हुआ है, वह मुनियों को बहुत ही परेशान करते हैं, उनके यज्ञों में विघ्न डालते हैं और उनको मार डालते हैं। यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचाते थे, जिससे मुनि दुःख पाते थे।

गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी।।
तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा।।
बा.का./205/5,6।।

गाधि के पुत्र विश्वामित्रजी के मन में चिंता छा गयी कि ये पापी

राक्षस भगवान के बिना न मरेंगे। तब श्रेष्ठ मुनि ने मन में विचार किया कि प्रभु ने पृथ्वी का भार हरने के लिये अवतार लिया है।

विश्वामित्र ने सोचा कि यह बहुत अच्छा समय है, दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण बहुत ही वीर हैं, उन्होंने बहुत ही अच्छी शिक्षा पाई है, इसलिए उनके द्वारा इन राक्षसों का वध कराया जाए। इससे राम और और लक्ष्मण को, जो युद्ध विद्या उन्होंने सीखी है, उसका प्रदर्शन करने का मौका मिलेगा, जिससे वह आगे के कार्य करने के लिए प्रेरित होंगे और राक्षसों का वध होगा व उनका मनोबल भी गिरेगा। इसलिए वह राजा दशरथ के पास जाते हैं।

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही।।
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा।।
बा.का./206/9,10।।

हे राजन! राक्षसों के समूह मुझे बहुत सताते हैं। इसलिये मैं तुमसे कुछ माँगने आया हूँ। छोटे भाई सहित श्रीरघुनाथजी को मुझे दो। राक्षसों के मारे जाने पर मैं सनाथ हो जाऊँगा।

दशरथ अपने पुत्रों को देने में संकोच करते हैं-

सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं।।
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा।।
बा.का./207/5,6।।

सभी पुत्र मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं। उनमें भी हे प्रभो! राम को तो देते नहीं बनता। कहाँ अत्यंत डरावने और क्रूर राक्षस और कहाँ परम किशोर अवस्था के मेरे सुन्दर पुत्र।

मुनि वशिष्ठ ने राजा दशरथ को प्रेरित किया-

तब बसिष्ट बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा।।
बा.का./207/8।।

तब वसिष्ठजी ने राजा को बहुत प्रकार से समझाया, जिससे राजा का संदेह नाश को प्राप्त हुआ।

मुनि विश्वामित्र और वशिष्ठ की प्रेरणा से राम-लक्ष्मण जाने के लिए तैयार हो गए।

पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन।।
बा.का./सो.208ख।।

पुरुषों में सिंहरूप दोनों भाई मुनि का भय हरने के लिये प्रसन्न होकर चले। वे कृपा के समुद्र, धीरबुद्धि और सम्पूर्ण विश्व के कारण के भी कारण हैं।

मार्ग में चले जाते हुए मुनि ने ताड़का को दिखाया। शब्द सुनते ही वह क्रोध करके दौड़ी।

एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।
बा.का./208ख/6।।

श्रीरामजी ने एक ही बाण से उसके प्राण हर लिये और दीन जानकर उसको निजपद दिया।

विश्वामित्र ने राम को और प्रेरित किया-

तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही। बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही।।
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा।।
बा.का./208ख/7,8।।

तब ऋषि विश्वामित्र ने प्रभु को मन में विद्या का भंडार समझते हुए भी ऐसी विद्या दी, जिससे भूख-प्यास न लगे और शरीर में अतुलित बल और तेज का प्रकाश हो।

राम ने मुनियों से निडर होकर यज्ञ करने को कहा और वह यज्ञ की रखवाली पर रहे-

सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही।।
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा।।
बा.का./209/3,4।।

यह समाचार सुनकर मुनियों का शत्रु क्रोधी राक्षस मारीच अपने सहायकों को लेकर दौड़ा। श्रीरामजी ने बिना फलवाला बाण उसको मारा, जिससे वह सौ योजन के विस्तार वाले समुद्र के पार जा गिरा।

पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा।।
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव मुनि झारी।।
बा.का./209/5,6।।

फिर सुबाहु को अग्निबाण मारा। इधर छोटे भाई लक्ष्मणजी ने राक्षसों की सेना का संहार कर डाला। इस प्रकार श्रीरामजी ने राक्षसों को मारकर ब्राह्मणों को निर्भय कर दिया। तब सारे देवता और मुनि स्तुति करने लगे।

अहिल्या को न्याय

सभी ऋषि और मुनियों ने राम को प्रेरित किया। उनको नई-नई शक्तियाँ और विद्या दी। विश्वामित्र ने राम से कहा कि आपको और एक अच्छा कार्य करना है, अहिल्या को न्याय दिलवाना है। गौतम मुनि ने उसे अपवित्र स्त्री मानकर त्यागा तथा उसका सामाजिक बहिष्कार किया था।

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।
बा.का./210।।

गौतम मुनि की स्त्री अहिल्या शापवश पत्थर की देह धारण किये बड़े धीरज से आपके चरण कमलों की धूलि चाहती है। हे रघुवीर! इस पर कृपा कीजिये।

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहइ लाभ संकर जाना।।
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।।
बा.का./210/छं.3।।

मुनि ने जो मुझे शाप दिया, सो बहुत ही अच्छा किया। मैं उसे अत्यंत अनुग्रह मानती हूँ कि जिसके कारण मैंने संसार से छुड़ाने वाले श्रीहरि को नेत्र भरकर देखा। इसी को शंकरजी सबसे बड़ा लाभ समझते हैं। हे प्रभु! मैं बुद्धि की बड़ी भोली हूँ, मेरी एक विनती है। हे नाथ! मैं और कोई वर नहीं माँगती, केवल यही चाहती हूँ कि मेरा मनरूपी भौंरा आपके चरणकमल की रज के प्रेमरूपी रस का सदा पान करता रहे।

श्रीराम को उनके कर्म के लिये प्रेरित करना

विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को जनकपुरी ले गए जहाँ पर सीताजी का स्वयंवर होना था।

> **विश्वामित्र की सोच थी कि स्वयंवर में श्रीराम की शक्ति का प्रदर्शन हो, जिससे पूरा विश्व उन्हें जान पाए और विश्व की राक्षसी ताकतों में उनका भय व्याप्त हो और राम भी उनका विनाश करने के लिए प्रेरित हों।**

राजा जनक ने विश्वामित्र का स्वागत किया।

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा।।
बिप्रबृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे।।
बा.का./214/1,2।।

राजा ने मुनि के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किया। मुनियों के स्वामी विश्वामित्रजी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। फिर सारी ब्राह्मण मंडली को आदरसहित प्रणाम किया और अपना बड़ा भाग्य जानकर राजा आनंदित हुए।

सीताजी के स्वयंवर में जब कोई राजा शिव का धनुष नहीं तोड़ पाया तब विश्वामित्र ने राम को धनुष तोड़ने का आदेश दिया।

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी।।
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा।।
बा.का./253/5,6।।

विश्वामित्रजी शुभ समय जानकर अत्यंत प्रेमभरी वाणी बोले- हे राम! उठो, शिवजी का धनुष तोड़ो और हे तात! जनक का सन्ताप मिटाओ।

राम ने धनुष बड़ी फुर्ती से उठाया और तोड़ डाला। सब अचंभित होकर गुणगान करने लगे।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़े।।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा।।
बा.का./260/7,8।।

लेते, चढ़ाते और जोर से खींचते हुए किसी ने नहीं लखा (अर्थात् यह कार्य इतनी तीव्रता से हुआ कि कोई समझ नहीं सका)। सबने श्रीरामजी को खड़े देखा। उसी क्षण श्रीरामजी ने धनुष को बीच से तोड़ डाला। भयंकर कठोर ध्वनि से लोक भर गये।

विश्वामित्र की प्रेरणा से राम ने धनुष तोड़ा। स्वयं परशुराम ने भी काफी संवाद के बाद राम को आशीर्वाद दिया और प्रेरित किया।

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गये बनहि तप हेतू।।
अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने।।
बा.का./284/7,8।।

हे रघुकुल के पताका स्वरूप श्रीरामचंद्रजी! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। ऐसा कहकर पशुरामजी तप के लिये वन को चले गये। दुष्ट राजा लोग बिना ही कारण के डर से डर गये, वे कायर चुपके से जहाँ-तहाँ भाग गये।

> **स्वयंवर में आये समस्त राजा भी राम से प्रभावित हुए, राम ने तो परशुरामजी को भी हरा दिया। इस तरह से विश्वामित्र ने राम को प्रेरित करके उनके शक्ति प्रदर्शन द्वारा पूरे विश्व को उनका लोहा मानने के लिए तैयार किया।**

राम का भरत को राज्य का उत्तरदायित्व संभालने के लिये प्रोत्साहित करना

अयोध्या कांड में जब भरतजी राम से मिलने वन में आए तो राम ने उनको प्रेरित किया कि वह वापस जाकर राज को अच्छी तरह से संभालें।

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुर प्रसाद रखवारा।।
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू।।
अयो.का./305/1,2।।

गुरुजी का प्रसाद ही घर में और वन में समाज सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा समस्त धर्मरूपी पृथ्वी को धारण करने में शेषजी के समान है।

सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी।।
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई।।
अयो.का./305/5,6।।

इसे विचारकर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भाई! मेरी विपत्ति सभी ने बाँट ली है, परन्तु तुमको तो अवधि (चौदह वर्ष) तक बड़ी कठिनाई है।

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ।।
अयो.का./306।।

सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिये। तुलसीदास जी कहते हैं कि सेवक-स्वामी की ऐसी प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं।

राम द्वारा हनुमान को सीता की खोज के लिये प्रेरित करना

किष्किंधा कांड में सीता की खोज के लिए भगवान राम ने हनुमान को चुना और उन्हें इस कार्य को करने के लिए प्रेरित किया।

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
कि.का./22/9,10।।

सबके पीछे पवनसुत श्री हनुमानजी ने सिर नवाया। कार्य का विचार करके प्रभु ने उन्हें अपने पास बुलाया। उन्होंने अपने कर-कमल से उनके सिर का स्पर्श किया तथा अपना सेवक जानकर उन्हें अपने हाथ की अँगूठी उतारकर दी।

सीताजी की सुध न मिलने पर सब चिंतित हैं तब अंगद कहते हैं।

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं।
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लएँ करब का भ्राता।।
कि.का./25/1,2।।

यहाँ वानरगण मन में विचार कर रहे हैं कि अवधि तो बीत गयी, पर काम कुछ न हुआ। सब मिलकर आपस में बात करने लगे कि हे भाई! अब तो सीताजी की खबर लिये बिना लौटकर भी क्या करेंगे? इस परिस्थिति में जामवंत ने अंगद सहित सब वानरों को प्रेरित किया।

जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी।।
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु।।
कि.का./25/11,12।।

जामवंत ने अंगद का दुःख देखकर विशेष उपदेश की कथाएँ कहीं। हे तात! श्रीरामजी को मनुष्य न मानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा समझो।

जामवंत की प्रेरणा से ही गीध संपाति ने सीताजी का पता बताया-

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका।।
तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई।।
कि.का./27/11,12।।

त्रिकूट पर्वत पर लंका बसी हुई है। वहाँ स्वभाव से निडर रावण रहता है। वहाँ अशोक नाम का उपवन है, जहाँ सीताजी रहती हैं। वे सोच में मग्न बैठी हैं। सब बंदरों के मन में अत्यंत विस्मय हुआ। सब ने अपने-अपने बल के बारे में कहा, पर समुद्र के पार जाने में सभी ने संदेह प्रकट किया। तब जामवंत ने हनुमान को प्रेरित किया।

जामवंत ने हनुमान को समुद्र पार कर लंका जाने के लिये प्रेरित किया

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना।।
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना।।
कि.का./29/3,4।।

ऋक्षराज जामवंत ने श्री हनुमानजी से कहा-हे हनुमान! हे बलवान! सुनो, तुमने यह क्या चुप साध रखी है? तुम पवनपुत्र हो और बल में पवन के समान हो। तुम बुद्धि-विवेक और विज्ञान की खान हो।

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होई तात तुम्ह पाहीं।।
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा।।
कि.का./29/5,6।।

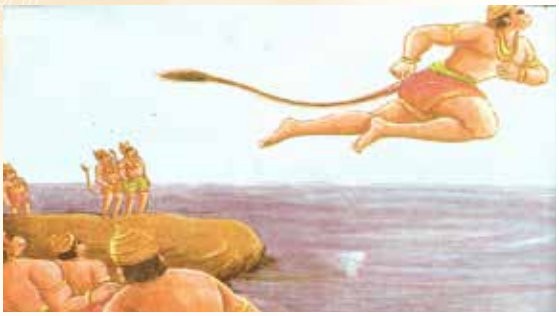

जगत में कौन-सा ऐसा कठिन काम है जो हे तात! तुमसे न हो सके। श्रीरामजी के कार्य के लिये ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। यह सुनते ही हनुमानजी पर्वत के आकार के हो गये।

प्रेरणा पाकर हनुमानजी बोले-

सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी।।
जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही।।
29/9,10।।

और सहायकों सहित रावण को मारकर त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ। हे जामवंत! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित सीख देना।

हनुमानजी द्वारा सीताजी का मनोबल बढ़ाना

सुंदरकांड अध्याय में हनुमानजी जब अशोक वाटिका पहुँचते हैं तो सीता को बहुत दुखी पाते हैं।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला।।
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा।।
सु.का./11/7,8।।

सीताजी कहने लगीं-विधाता ही विपरीत हो गया। न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी। आकाश में अंगारे प्रकट दिखायी दे रहे हैं, पर पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता।

हनुमानजी ने सीताजी को प्रोत्साहित करने के लिए राम की मुद्रिका डाल दी।

कपि करि हृदयँ विचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरिष उठि कर गहेउ।।
सु.का./11/सो.12।।

तब हनुमानजी ने हृदय में विचार कर अँगूठी डाल दी, मानो अशोक ने अंगारा दे दिया। सीताजी ने हर्षित होकर उठकर उसे हाथ में ले लिया। जब हनुमानजी ने सीता से कहा कि हम राक्षसों को मारकर आपको ले जाएंगे तब सीताजी ने कहा सब वानर तुम्हारे ही समान नन्हें-नन्हें से होंगे। राक्षस तो बड़े बलवान योद्धा हैं।

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा।।
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा।।
सु.का./15/7,8।।

अतः मेरे हृदय में बड़ा भारी संदेह होता है। यह सुनकर हनुमानजी ने अपना शरीर प्रकट किया। सोने के पर्वत के आकार का शरीर था, जो युद्ध में शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने वाला, अत्यंत बलवान और वीर था।

राम ने हनुमान को प्रेरित किया

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सु.का./31/5,6।।

हे हनुमान! सुन, तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता।

जामवंत जी ने नल नील को समुद्र पर सेतु बांधने के लिए प्रेरित किया

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई।।

राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं।।
लं.का./ श्लोक3/5,6।।

जामवंत ने नल-नील दोनों भाइयों को बुलाकर उन्हें सारी कथा कह सुनायी। मन में श्रीरामजी के प्रताप को स्मरण करके सेतु तैयार करो, कुछ भी परिश्रम नहीं होगा।

बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी।।
राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू।।
लं.का./ श्लोक3/7,8।।

फिर वानरों के समूह को बुला लिया और कहा-आप सब लोग मेरी कुछ विनती सुनिये। अपने हृदय में श्रीरामजी के चरण-कमलों को धारण कर लीजिये और सब भालू और वानर एक खेल कीजिये।

राम द्वारा सेना का प्रोत्साहन

जब कुंभकरण ने वानर सेना को तितर-बितर कर दिया, पूरी सेना व्याकुल हो गई, तब कमलनयन श्रीरामजी बोले- हे सुग्रीव! हे विभीषण और हे लक्ष्मण! सुनो, तुम सेनाओं को संभालना। मैं इस दुष्ट के बल और सेना को देखता हूँ।

सुनु सुग्रीव विभीषन अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन।।
लं.का./67।।

रावण के साथ युद्ध में जब सेना भयभीत हुई।

बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे।।
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसल धनी।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी।।
लं.का./छं. 88।।

बहुत से राम-लक्ष्मण देखकर वानर-भालू मन में मिथ्या डर से बहुत ही डर गये। लक्ष्मणजी सहित वे मानों चित्रलिखे से जहाँ के तहाँ खड़े देखने लगे। अपनी सेना को आश्चर्यचकित देखकर कोसलपति भगवान हरि ने हंसकर धनुष पर बाण चढ़ाकर, पलभर में सारी माया हर ली। वानरों की सारी सेना हर्षित हो गयी।

बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर।।
लं.का./89।।

फिर श्रीरामजी सबकी ओर देखकर गंभीर वचन बोले-हे वीरों! तुम सब बहुत ही थक गये हो, इसलिये अब द्वंद्व युद्ध देखो।

विभीषण को प्रभु की प्रेरणा

बंधु दसा बिलोकि दुख कीन्हा। तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा।।
लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो।।
लं.का./104/5,6।।

उन्होंने भाई की दशा देखकर दुःख किया। तब प्रभु श्रीरामजी ने छोटे भाई को आज्ञा दी। लक्ष्मणजी ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया तब विभीषण प्रभु के पास लौट आये।

कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका।।
लं.का./104/7।।

प्रभु ने उनको कृपापूर्ण दृष्टि से देखा। सब शोक त्यागकर रावण की अंत्येष्टि क्रिया करो।

राम ने मंदोदरी को प्रेरित किया

मंदोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि।।
लं.का./105।।

मंदोदरी आदि सब स्त्रियाँ उसे तिलांजलि देकर मन में श्रीरघुनाथजी के गुण समूहों का वर्णन करती हुई महल को गयीं।

रामचरितमानस के अनेक प्रसंग इसी तरह से मानव जीवन को प्रेरित करते हैं ताकि वह अपनी उच्चतम क्षमता के अनुसार कार्य कर सके, जिससे उसके परिवार, समाज और देश का विकास हो।

सफल जीवन-यापन हेतु मानस की चौपाइयाँ

मानस में है जीवन के झंझावातों से बचाव का रामबाण समाधान

डॉ. प्रदीप कुमार सिंघल, राष्ट्रीय अध्यक्ष संस्कृति संज्ञान
उदय कौशिक, वरिष्ठ सलाहकार संस्कृति संज्ञान
तृप्ति दुबे, राष्ट्रीय संयोजक संस्कृति संज्ञान

माता-पिता की आज्ञा मानना

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें।।
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई।।
अयो.का./314/5,6।।

गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने पर पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। ऐसा विचार कर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधि भर उसका पालन करो।

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन।।
अयो.कां./174।।

जो अनुचित और उचित का विचार छोड़कर पिता के वचनों का पालन करते हैं, वे (यहाँ) सुख और सुयश के पात्र होकर अंत में इन्द्रपुरी (स्वर्ग) में निवास करते हैं।

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी।।
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू।।
अयो.कां./176/3,4।।

गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहृद् (मित्र) की वाणी सुनकर प्रसन्न मन से उसे अच्छी समझकर करना (मानना) चाहिए। उचित-अनुचित का विचार करने से धर्म जाता है और सिर पर पाप का भार चढ़ता है।

अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं।।
बा.कां./204/4।।

राम अपने छोटे भाइयों और सखाओं के साथ भोजन करते हैं और माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हैं।

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।
अयो.कां./40/7,8।।

हे माता! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है, जो पिता-माता के वचनों का अनुरागी (पालन करने वाला) है। (आज्ञा पालन द्वारा) माता-पिता को संतुष्ट करने वाला पुत्र, हे जननी! सारे संसार में दुर्लभ है।

कर्म प्रधान

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।
अयो.का./218/4।।

उन्होंने विश्व में कर्म को ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है।

बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी।।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।
अयो.कां./91/3,4।।

तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस से सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले-हे भाई! कोई किसी को सुख-दुःख का देने वाला नहीं है। सब अपने ही किए हुए कर्मों का फल भोगते हैं।

विपत्ति के समय परीक्षा

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी।।
अर.का./4/7।।

धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री-इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है।

विनम्रता

फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ।।
अर.का./40।।

फलों के बोझ से झुककर सारे वृक्ष पृथ्वी के पास आ लगे हैं, जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी संपत्ति पाकर (विनय से) झुक जाते हैं।

काम क्रोध लोभ प्रबल

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ।।
अर.का./38क।।

हे तात! काम, क्रोध और लोभ-ये तीन अत्यंत प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञान के धाम मुनियों के भी मनों को पल भर में क्षुब्ध कर देते हैं।

अच्छे मित्र के लक्षण

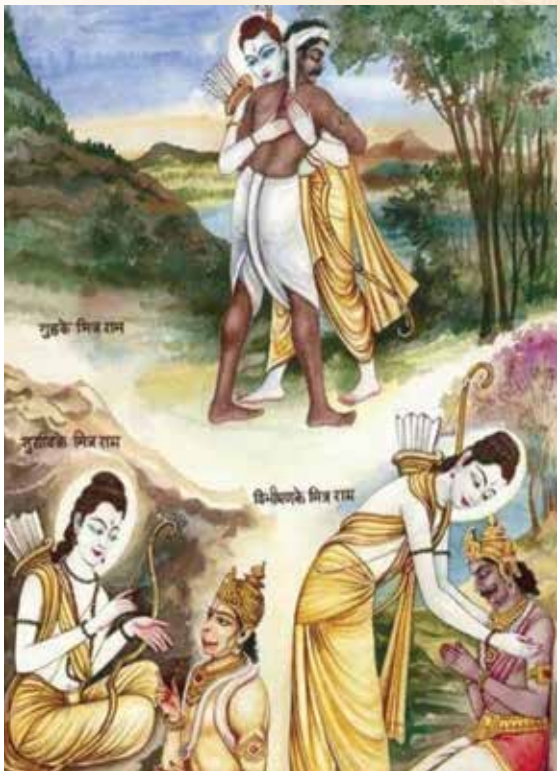

जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा।।
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।।
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।।
आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई।।
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई।।
कि.का./6/4-9।।

जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं? मित्र का अर्थ है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे। देने लेने से मन में शंका न रखे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय में तो सदा सौ गुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत मित्र के गुण ये हैं। जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है-हे भाई! जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है।

नीति शास्त्र-दूसरे को केवल भय दिखाकर ही समझाना

तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।। कि.का./18।।

तब दया की सीमा श्रीरघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को समझाया कि हे तात! सखा सुग्रीव को केवल भय दिखलाकर ले आओ (उसे मारने की बात नहीं है)।

सुखी जीवन यापन

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।
सु.कां./39ख/5,6।।

हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदय में रहती है, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकार की संपदाएँ (सुख की स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाम में विपत्ति (दुःख) रहती है।

चरित्र की पहचान

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी।।
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा।।
सु.कां./57/3,4।।

ममता में फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा, अत्यंत लोभी से वैराग्य का वर्णन, क्रोधी से शम (शांति) की बात और कामी से भगवान की कथा, इनका वैसा ही फल होता है, जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है (अर्थात् ऊसर में बीज बोने की भाँति यह सब व्यर्थ जाता है)।

राम में आस्था

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान।।
सु.कां./60।।

श्रीरघुनाथजी का गुणगान संपूर्ण सुंदर मंगलों का देने वाला है। जो इसे आदर सहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन) के ही भवसागर को तर जाएँगे।

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया।।
अयो.कां./129/1,2।।

जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह हैं, न लोभ है, न क्षोभ है, न राग है, न द्वेष है और न कपट, दम्भ और माया ही है-हे रघुराज! आप उनके हृदय में निवास कीजिए।

उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्रीरघुबीर प्रभाउ।।
लं.कां./94।।

शिव कहते हैं- हे उमा! विभीषण क्या कभी रावण के सामने आँख उठाकर भी देख सकता था? परंतु अब वही काल के समान उससे भिड़ रहा है। यह श्रीरघुवीर का ही प्रभाव है।

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ।।
अयो.कां./171।।

मुनिनाथ ने बिलखकर (दुःखी होकर) कहा-हे भरत! सुनो, भावी (होनहार) बड़ी बलवान है। हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश, ये सब विधाता के हाथ हैं।

किस मनुष्य से दुश्मनी नहीं करनी चाहिए

नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों।।
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा।।
लं.कां./5/5,6।।

हे नाथ! वैर उसी के साथ करना चाहिए, जिससे बुद्धि और बल के द्वारा जीत सके। आप में और रघुनाथ में निश्चय ही कैसा अंतर है, जैसा जुगनू और सूर्य में।

प्रीति और वैर

प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि।।
लं.कां./23ग।।

प्रीति और वैर बराबरी वाले से ही करना चाहिए, नीति ऐसी ही है। सिंह यदि मेढ़कों को मारे, तो क्या उसे कोई भला कहेगा?

आत्म प्रशंसा से बचें

अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।।
बा.कां./273/6।।

आपने अपने ही मुँह से अपनी करनी अनेकों बार बहुत प्रकार से वर्णन की है।

सनातन धर्म में आस्था

जब तेहिं कीन्हि राम कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा।।

हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना।।

लं.कां./31ख/1,2।।

जब उसने राम की निंदा की, तब तो कपिश्रेष्ठ अंगद अत्यंत क्रोधित हुए, क्योंकि शास्त्र ऐसा कहते हैं कि जो अपने कानों से भगवान विष्णु और शिव की निंदा सुनता है, उसे गो-वध के समान पाप होता है।

प्रतिद्वंदी को हतोत्साहित करने की नीति

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी।।
सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा।।

लं.कां./33ख/9,10।।

(अंगद ने कहा-) अरे मूर्ख! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो श्रीरामजी लौट जाएँगे, मैं सीताजी को हार गया। रावण ने कहा-हे सब वीरो! सुनो, पैर पकड़कर बंदर को पृथ्वी पर पछाड़ दो।

बुरा समय आने पर भ्रमित होना

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा।।
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं।।

लं.कां./36/7,8।।

काल दण्ड (लाठी) लेकर किसी को नहीं मारता। वह धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हर लेता है। हे स्वामी! जिसका काल (मरण समय) निकट आ जाता है, उसे आप ही की तरह भ्रम हो जाता है।

उपदेशानुसार आचरण

तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ पावन।।
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे।।

लं.कां./77/1,2।।

रावण ने उनको ज्ञान का उपदेश किया। वह स्वयं तो नीच है, पर उसकी कथा (बातें) शुभ और पवित्र हैं। दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं। पर ऐसे लोग अधिक नहीं हैं, जो उपदेश के अनुसार आचरण भी करते हैं।

संत पुरुष की पहचान

जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा।।
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं।।

लं.कां./89छं.।।

व्यर्थ बकवाद करके अपने सुंदर यश का नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ, सुनो! संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं-पाटल (गुलाब), आम और कटहल के समान। एक (पाटल) फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल दोनों देते हैं एवं एक (कटहल) में केवल फल ही लगते हैं। इसी प्रकार (पुरुषों में) एक कहते हैं (करते नहीं), दूसरे कहते और करते भी हैं तथा एक (तीसरे) केवल करते हैं, पर वाणी से कहते नहीं।

जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी।।

अयो.कां./129/7।।

जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर विशेष रूप से दुःखी होते हैं।

अपने सहयोगी की रक्षा करना

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा।।
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला।।

लं.कां./93/1,2।।

अत्यंत भयानक शक्ति को आती देख और यह विचार कर कि मेरा प्रण शरणागत के दुःख का नाश करना है, राम ने तुरंत ही विभीषण को पीछे कर लिया और सामने होकर वह शक्ति स्वयं सह ली।

अर्धांगिनी के प्रति सम्मान

प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही।।

लं.कां./98/13।।

परंतु प्रभु उसके हृदय में बाण इसलिए नहीं मारते कि इसके हृदय में जानकी (आप) बसती हैं।

जननी सम जानहिं परनारी।

अयो.कां./129/6।।

तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे।।

अयो.कां./129/8।।

अर्थात्, जो पुरुष अपनी पत्नी के अलावा किसी और स्त्री को अपनी माँ समान समझता है, उसी के हृदय में भगवान का निवास स्थान होता है।

असंत और दुष्ट लोगों के लक्षण

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं।।

कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी।।
अयो.कां./167/1,2।।

जो लोग वेदों को बेचते हैं, धर्म को दुह लेते हैं, चुगलखोर हैं, दूसरों के पापों को कह देते हैं, जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय और क्रोधी हैं तथा जो वेदों की निंदा करने वाले और विश्वभर के विरोधी हैं।

लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा।।
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी यहु संमत मोरा।।
अयो.कां./167/3,4।।

जो लोभी, लम्पट और लालचियों का आचरण करने वाले हैं, जो पराए धन और पराई स्त्री की ताक में रहते हैं, हे जननी! यदि इस काम में मेरी सम्मति हो तो मैं उनकी भयानक गति को पाऊँ।

नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं।
अयो.कां./188/8।।

बिष की बेलें अमृत फल कभी नहीं फलतीं।

आत्म-निरीक्षण

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना।।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।।
अयो.कां./171/3,4।।

सोच उस ब्राह्मण का करना चाहिए, जो वेद नहीं जानता और जो अपना धर्म छोड़कर विषय-भोग में ही लीन रहता है। उस राजा का सोच करना चाहिए, जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणों के समान प्यारी नहीं है।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू।।
अयो.कां./171/5।।

उस वैश्य का सोच करना चाहिए, जो धनवान होकर भी कंजूस है और जो अतिथि सत्कार तथा शिवजी की भक्ति करने में कुशल नहीं है।

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग।।
अयो.कां./172।

उस गृहस्थ का सोच करना चाहिए, जो मोहवश कर्म-मार्ग का त्याग कर देता है, उस संन्यासी का सोच करना चाहिए, जो दुनिया के प्रपंच में फँसा हुआ और ज्ञान-वैराग्य से हीन है।

सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी।।
अयो.कां./172/2।।

सोच उसका करना चाहिए जो चुगलखोर है, बिना ही कारण क्रोध करने वाला है तथा माता, पिता, गुरु एवं भाई-बंधुओं के साथ विरोध रखने वाला है।

सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी।।
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरि जन होई।।
अयो.कां./172/3,4।।

सब प्रकार से उसका सोच करना चाहिए, जो दूसरों का अनिष्ट करता है, अपने ही शरीर का पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है एवं वह तो सभी प्रकार से सोच करने योग्य है, जो छल छोड़कर हरि का भक्त नहीं होता।

प्रेरक

कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर।।
अयो.कां./179।।

कारण से कार्य कठिन होता ही है, इसमें मेरा दोष नहीं। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा भयानक और कठोर होता है।

संयम रखना

सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा।।
अयो.कां./191/7।।

जल्दी में कोई काम करके मूर्ख लोग पछताते हैं।

अच्छी संगत बुराई को सुधारती है

करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई।।
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना।
अयो.कां./193/7,8।।

कर्मनाशा नदी का जल गंगाजी में पड़ जाता है (मिल जाता है), तब कहिए, उसे कौन सिर पर धारण नहीं करता? जगत् जानता है कि उलटा नाम (मरा-मरा) जपते-जपते वाल्मीकिजी ब्रह्म के समान हो गए।

स्वस्थ दिनचर्या

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।।
बा.कां./204/7,8।।

रघुनाथ प्रातःकाल उठकर माता-पिता और गुरु को मस्तक नवाते हैं और आज्ञा लेकर नगर का काम करते हैं। उनके चरित्र देख-देखकर राजा मन में बड़े हर्षित होते हैं।

सरल स्वभाव लेकिन बहुत प्रभावशाली

बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं।
बा.कां./222/4।।

इनके संबंध में कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि ये देखने में तो छोटे हैं, पर इनका प्रभाव बहुत बड़ा है।

असफलता के लक्षण

लोभी लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई।।
हरि पद बिमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नरनाहा।।
बा.कां./266/3,4।।

लोभी-लालची सुंदर कीर्ति चाहे, कामी मनुष्य निष्कलंकता (चाहे तो) क्या पा सकता है? और जैसे हरि के चरणों से विमुख मनुष्य परमगति (मोक्ष) चाहे, तुम्हारा लालच भी वैसा ही व्यर्थ है।

परिवारिक प्रेम की सोच

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।।
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।
अयो.कां./9/5,7।।

हम सब भाई एक ही साथ जन्मे, खाना, सोना, लड़कपन के खेल-कूद सब साथ-साथ ही हुए। पर इस निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात हो रही है कि और सब भाइयों को छोड़कर राज्याभिषेक एक बड़े का ही (मेरा ही) होता है।

नारी शक्ति

काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ।।
अयो.कां./47।।

आग क्या नहीं जला सकती! समुद्र में क्या नहीं समा सकता! अबला कहाने वाली प्रबल स्त्री (जाति) क्या नहीं कर सकती! और जगत् में काल किसको नहीं खाता!

गुरु और स्वामी का आदर

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि।।
अयो.कां./63।।

स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदय में भरपेट पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है।

दलितों का सम्मान

लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा।।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता।।
अयो.कां./193/3,4।।

(वे कहते हैं-) जो लोक और वेद दोनों में सब प्रकार से नीचा माना जाता है, जिसकी छाया के छू जाने से भी स्नान करना होता है, उसी निषाद से अँकवार भरकर (हृदय से चिपटाकर) श्रीरामचन्द्रजी के छोटे भाई भरतजी (आनंद और प्रेमवश) शरीर में पुलकावली से परिपूर्ण हो मिल रहे हैं।

कार्य सोच समझकर करना

अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ।
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं।।
अयो.का./230/3,4।।

कोई भी काम हो, उसे अनुचित-उचित खूब समझ-बूझकर किया जाए तो सब कोई अच्छा कहते हैं। वेद और विद्वान् कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी काम को करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं।

किन लोगों से बैर न करें

तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना।।
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी।।
अर.कां./25/3,4।।

तब मारीच ने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जानने वाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया-इन नौ व्यक्तियों से विरोध (वैर) करने में कल्याण (कुशल) नहीं होता।

अपने सहयोगियों की सराहना

ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे।।
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही।।
उ.कां./15/5,6।।

मेरे हित के लिए तुम लोगों ने घरों को तथा सब प्रकार के सुखों को त्याग दिया। इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय लग रहे हो। छोटे भाई, राज्य, संपत्ति, जानकी, अपना शरीर, घर, कुटुम्ब और मित्र।

आदर्श राज्य

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज।।
उ.कां/22।।

श्रीरामचंद्रजी के राज्य में दण्ड केवल संन्यासियों के हाथों में है और भेद नाचने वालों के नृत्य समाज में है और 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए ही सुनाई पड़ता है (अर्थात् राजनीति में शत्रुओं को जीतने तथा चोर-डाकुओं आदि को दमन करने के लिए साम, दान, दण्ड और भेद-ये चार उपाय किए जाते हैं। रामराज्य में कोई शत्रु है ही नहीं, इसलिए 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिए दण्ड किसी को नहीं होता, 'दण्ड' शब्द केवल संन्यासियों के हाथ में रहने वाले दण्ड के लिए ही रह गया है तथा सभी अनुकूल होने के कारण भेदनीति की आवश्यकता ही नहीं रह गई। 'भेद' शब्द केवल सुर-ताल के भेद के लिए ही कामों में आता है)।

रणभूमि में विनम्रता के प्रतीक श्रीराम

विन्रमता में त्रिलोक की अमोघ शक्तियों को भी परास्त करने की शक्ति निहित है। राम विनम्रता, साहस व शक्ति का संगम हैं। उनकी विनम्रता के आगे परशुरामजी के अहंकार को भी नतमस्तक होना पड़ा। भगवान श्रीकृष्ण ने भी भीम को त्रिलोक की सर्वाधिक बलशाली शक्ति नारायण अस्त्र के सामने नतमस्तक होने को कहा था।

कैप्टन संतोष कुमार द्विवेदी
पूर्व आईएएस, समाजसेवी, चिंतक एवं लेखक

हरि अनंत हरि कथा अनंता।।
बा.कां./139/5।।

इतिहास साक्षी है, हमारे शास्त्रों में भी अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं कि बड़े धर्मयुद्ध में विजय प्राप्ति के लिये विनम्रता और धैर्य अर्थात् धीरज का होना अत्यंत आवश्यक है। विनम्रता व्यक्ति को शांति, शक्ति और ऊर्जा प्रदान करती है।

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनात् धर्मं ततः सुखम्।।

आइये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी द्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस में इस संदर्भ पर दृष्टि डालें, जिसमें उन्होंने कहा है-

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी।।
अर.का./4/7।।

विनम्रता एक दिव्य और अलौकिक गुण है, साहस और शक्ति ये दो गुण एक व्यक्ति को (वीर) श्रेष्ठ बनाते हैं। यदि किसी व्यक्ति में साहस विद्यमान है तो शक्ति स्वयं ही उसके आचरण में आ जाएगी, परंतु जहाँ तक एक व्यक्ति को वीर बनाने में सहायक गुण होते हैं। वहीं, दूसरी ओर इसकी अधिकता एक व्यक्ति को अभिमानी व उद्दंड बना देती है। कारणवश या अकारण ही वे इसका प्रयोग करने लगते हैं। परंतु यदि विनम्रता इन गुणों के साथ आकर मिल जाती है तो वह उस व्यक्ति को श्रेष्ठतम वीर की श्रेणी में ला देती है, जो साहस और शक्ति में अहंकार का समावेश करती है। विनम्रता उसमें सदाचार व मधुरता भर देती है, वह किसी भी स्थिति को सरलतापूर्वक शांत कर सकती है।

जहाँ परशुरामजी साहस व शक्ति का संगम हैं। वहीं, राम विनम्रता, साहस व शक्ति का संगम हैं। उनकी विनम्रता के आगे परशुरामजी के अहंकार को भी नतमस्तक होना पड़ा। नहीं तो लक्ष्मणजी के द्वारा परशुरामजी को शांत करना सम्भव नहीं था।

आइये शेषावतार लक्ष्मण और इन्द्रजीत मेघनाद के अद्भुत और ऐतिहासिक युद्ध में विनम्रता के मर्म को समझने का प्रयास करते हैं।

सुबह मेघनाद से लक्ष्मण का अंतिम युद्ध होने वाला था। वह मेघनाद, जो अब तक अविजित था, जिसकी भुजाओं के बल पर रावण युद्ध कर रहा था, अप्रितम योद्धा! जिसके पास सभी दिव्यास्त्र थे।

सुबह लक्ष्मणजी भगवान राम से आशीर्वाद लेने गए। उस समय भगवान राम पूजा कर रहे थे। पूजा समाप्ति के पश्चात प्रभु श्रीराम ने हनुमानजी से पूछा-अभी कितना समय है युद्ध होने में?

हनुमानजी ने कहा-प्रभु अभी कुछ समय है। यह तो प्रातःकाल है।

भगवान राम ने लक्ष्मणजी से कहा- यह पात्र लो और भिक्षा माँगकर लाओ, जो पहला व्यक्ति मिले उसी से कुछ अन्न मांग लेना...

सभी बड़े आश्चर्य में पड़ गये, आशीर्वाद की जगह भिक्षा! लेकिन लक्ष्मणजी को जाना ही था।

लक्ष्मणजी जब भिक्षा मांगने के लिये निकले तो उन्हें सबसे पहले रावण का एक सैनिक मिल गया। आज्ञा अनुसार मांगना ही था। यदि भगवान की आज्ञा न होती तो उस सैनिक को लक्ष्मणजी वहीं मार देते, परंतु वे उससे भिक्षा मांगते हैं...

सैनिक ने अपनी रसद से लक्ष्मणजी को कुछ अन्न दे दिए...

लक्ष्मणजी ने वह अन्न लेकर भगवान राम को अर्पित कर दिए...

तत्पश्चात् भगवान राम ने उन्हें आशीर्वाद दिया... विजयी भव!

भिक्षा का मर्म किसी की समझ नहीं आया। कोई पूछ भी नहीं सकता था... फिर भी यह प्रश्न तो रह ही गया...

फिर भीषण युद्ध हुआ।

अंत में मेघनाद ने त्रैलोक्य की अंतिम शक्तियों को लक्ष्मणजी पर चलाया, ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र, सुदर्शन चक्र। इन अस्त्रों की कोई काट न थी...

लक्ष्मणजी ने सिर झुकाकर विनम्रतापूर्वक इन दिव्यास्त्रों को प्रणाम किया, सभी अस्त्र उनको आशीर्वाद देकर वापस चले गए।

उसके बाद राम का ध्यान करके लक्ष्मणजी ने मेघनाद पर वाण चलाया। वह हँसने लगा और उसका सिर कटकर जमीन पर गिर गया और मेघनाद वीरगति को प्राप्त हो गया। उसी दिन संध्याकालीन समय भगवान राम शिव की आराधना कर रहे थे, वह प्रश्न तो अब तक रह ही गया था। हनुमानजी ने पूछ लिया। प्रभु वह भिक्षा का मर्म क्या है?

भगवान मुस्कराने लगे बोले- मैं लक्ष्मण को जानता हूँ, वह अत्यंत क्रोधी है। लेकिन युद्ध में बहुत ही विनम्रता की आवश्यकता पड़ती है। विजयी तो वही होता है जो विनम्र हो। मैं जानता था मेघनाद ब्रह्मांड की चिंता नहीं करेगा। वह युद्ध जीतने के लिये दिव्यास्त्रों का प्रयोग करेगा।

इन अमोघ शक्तियों के सामने विनम्रता ही काम कर सकती थी। इसलिये मैंने लक्ष्मण को सुबह झुकना बताया। एक वीर शक्तिशाली व्यक्ति जब भिक्षा मांगेगा तो विन्रमता स्वयं प्रभावित होगी। लक्ष्मण ने मेरे नाम से बाण छोड़ा था। यदि मेघनाद उस बाण के सामने विनम्रता दिखाता तो मैं भी उसे क्षमा कर देता।

भगवान श्रीरामचंद्रजी एक महान राजा के साथ अद्वितीय सेनापति भी थे। युद्धकाल में विनम्रता शक्ति संचय का भी मार्ग है। वीर पुरुष को शोभा भी देता है। इसलिए किसी भी बड़े धर्मयुद्ध में विजय प्राप्ति के लिये विनम्रता और धैर्य का होना अत्यंत आवश्यक है।

भगवान श्रीराम का वनगमन मार्ग

14 वर्ष के वनवास में अयोध्या से लंका तक तय किया गया वनमार्ग

डा. सुनील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'
सेवानिवृत्त अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, संत तुलसीदास पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, कादीपुर, सुल्तानपुर, उ. प्र.

श्रीरामचरितमानस में प्रभु श्रीराम का वनगमन पथ हमें उत्तर से लेकर दक्षिण तक भारत के भूगोल से परिचित कराता है। राम वनगमन प्रकरण भारतीय सांस्कृतिक चेतना का स्वर्णिम अध्याय है। अपने वनगमन के दौरान प्रभु श्रीराम जहाँ-जहाँ जाते हैं, उस स्थान पर रहने वाले समस्त जड़-चेतन के साथ सम्पूर्ण स्थान में होने वाले परिवर्तन के बारे में गोस्वामीजी लिखते हैं-

धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ।।
अयो.का./121/6।।

वह देश, पर्वत, वन और गांव धन्य है और वही स्थान धन्य है जहाँ-जहाँ ये जाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास का भाव, भावगाम्भीर्य और शब्द अनुपम है। गोस्वामीजी ने मानस में जिस प्रसंग को उठाया है, उसे सजीव कर दिया है। पाठक के मनोमस्तिष्क में सारा दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है। राम वनगमन एक मार्मिक प्रकरण है जिसका प्रारंभ अयोध्या काण्ड में होता है। राजा दशरथ ने श्रीराम को 14 वर्ष के लिये वनवास की अवधि निर्धारित कर दी, यद्यपि वे चाहते नहीं थे, परंतु कैकेयी के समक्ष विवश थे।

रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई।।
अयो.का./78/8।।

राम तुरंत मुनि का वेष बनाकर और माता-पिता को सिर नवाकर चल दिये।

श्रीराम का वनगमन अयोध्या पर महाविपत्ति का आगमन था। अयोध्या डरावनी दिखने लगी। मानो चारों ओर कालरात्रि आ गयी हो। राम के वियोग में सभी नर-नारी दुःखी थे। यहां तक कि पशु-पक्षी भी श्रीराम के वनगमन में अत्यंत दुःखी थे। श्रीराम के साथ नगरवासी भी चले जा रहे थे। किसी को रघुबीर का वियोग अच्छा नहीं लग रहा था। श्रीराम वनगमन के प्रकरण में प्रथम दिवस तमसा के तट पर विश्राम करते हैं (आज अयोध्या से सुल्तानपुर राजमार्ग पर लगभग 15 किलोमीटर पर तमसा नदी है)।

बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ।।
अयो.का./84।।

बच्चों और बूढ़ों को घरों में छोड़कर सब लोग साथ हो लिये। पहले दिन श्रीरघुनाथजी ने तमसा नदी के तीर पर निवास किया।

अवध की जनता श्रीराम का साथ छोड़ना नहीं चाहती थी। इसलिये जब दो पहर रात बीत गयी, तब श्रीराम ने मंत्री सुमंत से प्रेमपूर्वक कहा कि आप रथ को इस प्रकार चलायें कि किसी को यह पता ही न चले कि रथ किस ओर गया। इन लोगों से साथ छुड़ाने का कोई अन्य मार्ग नहीं है। फिर श्रीराम, लक्ष्मण और सीता रथ पर सवार होते हैं और मंत्री सुमंत रथ हांक देते हैं।

राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ।
सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ।।
अयो.का./85।।

जब तमसा तट से रथ आगे बढ़ा तब वह **श्रृंगबेरपुर** पहुँचता है। गोस्वामीजी ने बीच में किसी स्थल का निर्देश नहीं दिया, जहां यह रथ रुका हो (भरत की यात्रा में सई नदी (उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ शहर से सटे उत्तर में) का उल्लेख आया है, पर श्रीराम की यात्रा में नहीं)।

सई तीर बसि चले बिहाने। सृंगबेरपुर सब निअराने।।
अयो.का./188/1।।
सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई।।
अयो.का./86/1।।

श्रीराम श्रृंगबेरपुर से गंगाजी को देखकर रथ से उतर जाते हैं और बड़े हर्ष के साथ उनको दण्डवत प्रणाम करते हैं। श्रीराम की मान्यता है कि गंगा सब सुखों को करने वाली तथा सब पीड़ाओं को हरने वाली हैं। इसी बीच निषादराज को श्रीराम के आगमन का पता चलता है। वे बंधु-बांधवों के साथ श्रीराम का स्वागत करते हैं सारा वातावरण अत्यंत मार्मिक और भावनात्मक बन जाता है। निषादराज श्रीराम सीता एवं लक्ष्मण को गंगा पार उतारते हैं।

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता।।
अयो.का./101/1।।

यहाँ का प्रकरण अत्यंत मार्मिक है। श्रीराम केवट को उतराई देना चाहते हैं पर उनके पास धन के नाम पर कुछ है ही नहीं। सीता श्रीराम के हृदय की बात जानकर अपनी अँगूठी उतराई के रूप में केवट को देना चाहती हैं। पर निषाद भी विलक्षण प्राणी है। वह कहता है कि आप जो कुछ लौटती बार देंगे हम सहर्ष ले लेंगे। श्रीराम गंगाजी में स्नान करने के पश्चात पूजन करते हैं। सीता हाथ जोड़कर गंगाजी से सकुशल लौटने की याचना करती हैं। गंगाजी भी पति, देवर के साथ सीता को सकुशल लौटने का आशीर्वाद देती हैं। श्रीराम उस दिन वृक्ष के नीचे निवास करते हैं और अगले दिन प्रातःकाल की सब क्रियाएँ करके तीर्थों के राजा प्रयाग के दर्शन किये।

प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई।।
अयो.का./104/2।।

गोस्वामीजी ने **तीर्थराज प्रयाग** का जितना भव्य और दिव्य वर्णन किया है, वह पढ़ने और अनुभव करने लायक है। तीर्थराज का रूपक, अत्यंत मनोहर है। तीर्थराज के मंत्री का नाम सत्य है। उनकी प्यारी पत्नी श्रद्धा है और श्रीबेनीमाधवजी के समान उनके हितकारी मित्र हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों से तीर्थराज का भण्डार भरा है। वह पुण्य प्रदेश ही इस राजा का देश है। प्रयाग का क्षेत्र ही दुर्गम, मजबूत और सुन्दर किला है। संपूर्ण तीर्थ ही इसके श्रेष्ठ वीर सैनिक हैं, जो पाप की सेना को कुचल डालने वाले और बड़े रणधीर हैं। त्रिवेणी संगम ही उसका अत्यंत सुशोभित सिंहासन है। अक्षय वट क्षेत्र है। यमुना और गंगाजी की तरंगें ही चंवर हैं। श्रीराम अब आगे की ओर बढ़ते हैं।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दंडवत मुनि उर लाए।।
अयो.का./105/7।।

श्रीराम ने ज्यों ही मुनिवर **भरद्वाज** को दण्डवत प्रणाम किया, त्यों ही मुनिवर ने उन्हें गले लगा लिया। ऋषिवर ने श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता जी को नाना प्रकार के मधुर फल दिये, जिसे सबने प्रेम से रुचिपूर्वक ग्रहण किया। इस बीच श्रीराम का दर्शन करने अनेक मुनि आते हैं। श्रीराम रात्रि में भरद्वाज ऋषि के आश्रम में रुकते हैं, फिर आगे।

बिदा किए बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम।।
अयो.का./109।।

यमुना स्नान के बाद श्रीराम का वनगमन आगे की ओर गतिमान होता है। मार्ग में अनेक लोग श्रीराम से प्रेमपूर्वक रीति से मिलते हैं। वे लोग आश्चर्य व्यक्त करते हैं कि वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे बालकों को वन भेज दिया है।

जे पुर गांव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं।।
अयो.का./112/1।।

श्रीराम वनगमन के मध्य जो गांव और पुरवे रास्ते में बसे हैं, उन पर नागों और देवताओं के नगर भी ईर्ष्या करते हैं कि किस पुण्यवान ने, किस शुभ घड़ी में इनको बसाया था, जो आज इतने धन्य हो रहे हैं। रास्ते में मिलने वाले लोग भी श्रीराम के साथ चलना चाहते हैं पर श्रीराम ने सबको प्रियवाणी बोलकर लौटा दिया।

लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिये लाइ मन साथ।।
अयो.का./118।।

श्रीराम का वनगमन उत्सव बन गया है। जहाँ-जहाँ श्रीराम जाते हैं, वहां के लोग उनके अपने बन जाते हैं। सूर्य कुलरूपी कुमुदिनी को प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा स्वरूप श्रीरामचंद्रजी के दर्शन कर गांव-गांव में ऐसा ही आनन्द हो रहा है।

गावँ-गावँ अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू।।
अयो.का./121/1।।

श्रीराम वनगमन मार्ग में कठिनाइयों का ढेर भी है। माता सीता कोमल हैं। यात्रा की यातनाओं से पीड़ित हो जाती हैं। पति श्रीराम, पत्नी सीता की पीड़ा को देख और समझ रहे हैं पर वह कुछ सहयोग नहीं कर सकते जिससे कष्ट कम हो। सीता को थकी हुई जानकर समीप के वट वृक्ष के समीप ठहर जाते हैं।

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी।।
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई।।
अयो.का./123/3,4।।

श्रीराम वनगमन मार्ग पर्यावरण संरक्षण का प्राणवान प्रमाण है। यहाँ के वन की शोभा अद्भुत और सरोवरों की शोभा विलक्षण है। पर्वतों का दिव्य सौन्दर्य आँखों को बरबस आकृष्ट कर लेने वाला है। पक्षियों का मुधर कुंजन हृदय को प्रसन्नता दे रहा है।

देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए।।
अयो.का./123/5।।

आदि कवि की अनेक विधि प्रशंसा करने के पश्चात् श्रीराम उनसे पूछते हैं कि अब वे कहां जाकर निवास करें। इस प्रश्न के उत्तर में **महर्षि वाल्मीकि** ने जिन स्थानों का नाम लिया है, वे अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ- हे श्रीराम आप वहां जायें, जिनके कान समुद्र की भांति आपकी सुन्दर कथा रूपी अनेकों सुन्दर नदियों से निरंतर भरते रहते हैं-आदि आदि। फिर कहा कि-

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू।।
अयो.का./131/3।।

अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।।
अयो.का./131/7।।

चित्रकूट अद्भुत पर्वत है। अत्रि आदि ऋषियों की महिमा सामान्य व्यक्ति नहीं कह सकते। श्रीराम चित्रकूट, अत्रि आश्रम तथा **मंदाकिनी** क्षेत्र में आते हैं।

चित्रकूट रघुनंदनु छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए।।
अयो.का./133/5।।

इसी प्रकरण में श्रीराम **कामदगिरि** जाते हैं।

श्रीराम के आने से कामद गिरि की महिमा बढ़ जाती है।

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा।।
अयो.का./278/1।।

श्रीराम के साथ रहना हर तरह से श्रेयस्कर है। जब परमात्मा अनुकूल हो तभी ऐसा संयोग बनता है।

मंदाकिनि मज्जनु तिहु काला। राम दरसु मुद मंगल माला।।
अटनु राम गिरि बन तापस थल। असनु अमिअ सम कंद मूल फल।।
अयो.का./279/6,7।।

श्रीराम चित्रकूट में रहकर अनेक प्रकार के चरित्र करते हैं।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना।।
अर.का./2/1।।

श्रीराम **अत्रि** के आश्रम जाते हैं। ऋषि अत्रि प्रसन्न होते हैं।

अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ।।
अर.का./2/4।।

इसी प्रकरण में **अनुसुइया** सीता संवाद भी है।

अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता।।
अर.का./4/1।।

इसके पश्चात् श्रीराम **मुनि सरभंग** के आश्रम की ओर जाते हैं। उन्हें मार्ग में बिराध नामक असुर मिलता है, जिसके सामने आते ही श्रीराम ने उसे मार डाला।

पुनि आये जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा।।
अर.का./6ख/8।।

सरभंग ऋषि का श्रीराम के प्रति प्रेम अद्भुत है। वे सरभंग ऋषि ब्रह्मलोक जा रहे थे। पर उन्होंने ज्यों ही सुना कि श्रीराम आयेंगे, उन्होंने यात्रा स्थगित कर दी। फिर श्रीराम की यात्रा आगे बढ़ती है।

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे।।
अर.का./8/5।।

श्रीराम को मार्ग में हड्डियों का ढेर दिखायी पड़ा। ये वही अस्थि समूह हैं, जो मुनियों के हैं और मुनियों को राक्षसों ने मार डाला था। श्रीराम राक्षस विनाश की प्रतिज्ञा करते हैं। आगे श्रीराम **सुतीक्ष्ण** के आश्रम में जाते हैं।

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना।।
अर.का./9/1।।

सुतीक्ष्ण की श्रीराम विषयक भक्ति निष्ठा अद्भुत है। वे श्रीराम की भक्ति में सब कुछ भूल जाते हैं। सुतीक्ष्ण से मिलने के पश्चात श्रीराम **ऋषि अगस्त** के पास जाते हैं।

एवमस्तु करि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा।
अर.का./11/1।।

श्रीराम अगस्त से कहते हैं कि आप सब जानते हैं कि मैं यहाँ क्यों आया हूँ? मुझे वही मंत्र दीजिये जिससे मुनिद्रोहियों का वध हो। ऋषि अगस्त श्रीराम की बहुविधि प्रशंसा करते हैं। फिर वे पंचवटी जाने की सलाह देते हैं, जो दण्डकवन में स्थित है।

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ।।
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू।।
अर.का./12/15,16।।

चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी निअराई।।
अर.का./12/18।।

यहीं श्रीराम की गिद्धराज जटायु से भेंट होती है। श्रीराम गोदावरी के निकट पर्णकुटी बनाकर रहने लगे।

गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परम गृह छाइ।।
अर.का./13।।

यहीं पंचवटी में शूर्पणखा आती है और

पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा।।
अर.का./16/4।।

पंचवटी में बसकर श्रीराम मुनियों और देवताओं को सुख देने वाले आचरण करते हैं।

पंचबटीं बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक।।
अर.का./20ख/4।।

रावण ने सीता का अपहरण कर लिया। वे मारीच को मारकर अपने गोदावरी के तट पर बने आश्रम पर लौट आते हैं।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ।।
अर.का./29ख/5।।

सीता रहित आश्रम को देखकर श्रीराम नाना प्रकार का विलाप करते हैं। श्रीराम लताओं तथा पक्षियों से सीता का पता पूछते हुए चलते हैं। सीता अतीव सुन्दरी हैं। जब सीता श्रीराम के पास थीं तब सौन्दर्य के सारे उपमान खिसियाए हुए से थे। सीता के सौन्दर्य के आगे इन सबका सौन्दर्य दो कौड़ी का हो गया था। पर आज जब सीता श्रीराम के पास नहीं है, जब सारे उपमान हर्षित हैं, क्योंकि जिनसे उनकी स्पर्धा थी (सीता के अंग प्रत्यंग के सौन्दर्य से), वह सीता अब श्रीराम के पास नहीं है। श्रीराम विलाप करते हुए आगे बढ़ते हैं।

आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा।।
अर.का./29ख/18।।

गिद्धराज जटायु का तर्पण अत्यन्त मार्मिक स्थिति है। पक्षिराज जटायु ने सीता की रक्षा करने में अपने प्राणों की बाजी लगा दी। श्रीराम ने घायल अवस्था में जटायु को देखा। जटायु ने सीता हरण की घटना सुनायी और बताया कि रावण सीता का अपहरण कर दक्षिण दिशा में ले गया है। जटायु ने कहा कि प्रभु आपसे मिलने की इच्छा के कारण ही अभी तक मैंने जीवन धारण कर रखा है। अब मैं चलना चाहता हूं। श्रीराम ने कहा कि शरीर को बनाये रखिये, लेकिन जटायु ने इसे अस्वीकार कर दिया। जटायु श्रीराम के परमधाम चला गया। फिर श्रीराम लक्ष्मण के साथ सीता को खोजते हुए आगे बढ़ते हैं।

पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई।।
अर.का./32/4।।

आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता।।
अर.का./32/6।।

श्रीराम ने कबंध वध किया और उसे ब्राह्मणों का सम्मान करने का उपदेश दिया। कबंध पूर्व जन्म में गंधर्व था जो ऋषि दुर्वासा के शाप से राक्षस हो गया था। श्रीराम कृपा करके कबंध को गंधर्व रूप देकर आगे बढ़े। श्रीराम **सबरी के आश्रम** आये।

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा।।
अर.का./33/5।।

सबरी का प्रकरण पठनीय, मानवीय तथा स्मरणीय है। वह अशिक्षित अकुलीन नारी थी। फिर भी अपनी भक्ति एवं अद्भुत निष्ठा के बल पर श्रीराम की आत्मीय बन गयी। श्रीराम ने उसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया। सबरी ने ही श्रीराम से पंपा सरोवर जाने को कहा। जहाँ उन्हें सुग्रीव मिलेंगे और वे सीता की खोज में सहायता करेंगे।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई।।
अर.का./35/11।।

सबरी के आश्रम से श्रीराम आगे बढ़ते हैं। मार्ग में प्राकृतिक दृश्य अति सुंदर हैं। जब हिरन श्रीराम आदि को देखकर भय से भागने लगते हैं, तब हिरनियां उन्हें समझाती है कि तुम मत डरो ये तो स्वर्ण मृग ढूंढने आये हैं। गोस्वामीजी का काव्यात्मक व्यंग्य विद्या का यह उत्तम उदाहरण है, चारों ओर लताओं से घिरे हुए वृक्ष मिल रहे हैं। अंततः

पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा।।
अर.का./38ख/6।।

श्रीराम की वनगमन यात्रा चल रही थी। ऐसे मे ऋष्यमूक पर्वत दिखायी पड़ा।

आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया।।
कि.का./श्लोक 2/1।।

ऋष्यमूक पर्वत पर सचिवों के साथ सुग्रीव रह रहे थे। उन्होंने जब बलशाली श्रीराम और लक्ष्मण को आते देखा तब उन्हें भय की अनुभूति हुई। उन्होंने हनुमानजी को यह पता करने को कहा कि देखो ये दोनों वीर कौन आ रहे हैं। यहीं श्रीराम और हनुमान की प्रथम भेंट होती है। श्रीराम ने बालि का वध किया। सुग्रीव को राज्य मिला और श्रीराम ने प्रवर्षण पर्वत पर ठिकाना बनाया।

जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रबरषन गिरि पर छाए।।
कि.का./11/10।।

प्रवर्षण पर्वत पर रहते समय कुछ दिन बीत गये। सुग्रीव को श्रीराम ने बुलवाया और सीता की खोज के लिये कहा। लंकाधीश रावण का वध कर सीता को लाना है, मार्ग में समुद्र है। श्रीराम समुद्र तट पर जाते हैं।

अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गये रघुराई।।
सु.का./50/6।।

श्रीराम शिव के परम अनुरागी हैं। वे श्रीरामेश्वरम् में भगवान शिव का लिंग स्थापित करते हैं।

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।
लं.कां./1/6।।

नल नील तथा अन्य के सहयोग से सेतुबंध का निर्माण होता है। श्रीराम सेतुबंध के तट पर चढ़कर समुद्र के विस्तार को देखते हैं।

सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई।।
लं.कां./3/3।।

सेतुबंध पर अपार भीड़ लग गयी। सेतुबंध से सब सागर के पार उतरने लगे। अन्ततः श्रीराम आदि भी सागर पार उतर कर डेरा स्थापित करते हैं।

सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा।।
लं.कां./4/3।।

श्रीराम के आदेश से उनकी सेना आगे बढ़ती है, वे फिर **सुबेल** पर्वत पर ठहरते हैं। सुबेल पर्वत का शिखर अत्यंत मनोरम है। यहाँ प्राकृतिक दृश्य मनोहर है। इसी पर्वत पर परम भाग्यशाली अंगद और हनुमान अनेकों प्रकार से प्रभु श्रीराम के चरण कमलों को दबाते हैं।

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा।।
लं.कां./10/1।।

अन्ततः युद्ध की रणभेरी बज गयी। दोनों सेनाएँ आमने-सामने हो गयीं। दोनों ओर के योद्धा युद्ध के लिये तैयार हो गये। श्रीराम जब रावण से लड़ने रणभूमि में उतरते हैं, तब उनके पास रथ नहीं रहता है, ऐसी विषम परिस्थिति में विभीषण चिंतित हो जाते हैं।

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा।।
लं.कां./79/1।।

जब देवताओं ने भी श्रीराम को पैदल देखा तब वे भी चिन्तित हो गये। उनके मन में अनेक प्रकार की शंकाएँ उठने लगी। श्रीराम कैसे जीतेंगे। इन्द्र ने तुरंत अपना रथ भेज दिया। सारथि मातलि प्रसन्नतापूर्वक रथ ले आया।

देवन्ह प्रभुहि पयादें देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेषा।।
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा।।
लं.कां./88/1,2।।

श्रीराम की विजय हुई। विजयश्री के साथ श्रीराम पुष्पक विमान में अयोध्या लौटने के लिये तैयार हुए। सर्वत्र जयघोष होने लगा कि-

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सबु कोई।।
लं.कां./118ग/3।।

श्रीराम वनगमन की कथा यहीं पूर्ण होती है। इसके आगे तो श्रीराम आदि का अवध को लौटना ही वर्णित है।

श्रीराम वन गमन के प्रमुख स्थल

अयोध्या-तमसा, श्रृंगबेरपुर, प्रयाग-भरद्वाज आश्रम, यमुना, वाल्मीकि आश्रम, चित्रकूट, कामदगिरि, मंदाकिनी, अत्रि आश्रम, सुतीक्ष्ण आश्रम, अगस्त्य आश्रम, पंचवटी, दण्डकारण्य, गोदावरी, सबरी आश्रम, पंपा सरोवर, ऋष्यमूक पर्वत, सागर तट, श्रीरामेश्वरम, सेतुबंध, सुबेल पर्वत (लंका में स्थित) राम-रावण रण स्थल।

श्रीराम का लंका से आगमन का मार्ग

श्रीराम सीता आदि के साथ पुष्पक विमान में आरूढ़ होते हैं। वे मार्ग में पड़ने वाले स्थानों का परिचय सीता को देते हैं।

इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुख धाम।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम।।
लं.कां./119क।।

मैंने यहाँ पुल बांधा और सुखधाम श्रीशिवजी की स्थापना की। तदन्तर कृपानिधान श्रीराम ने सीताजी सहित **श्रीरामेश्वरम महादेव** को प्रणाम किया।

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा।।
कुंभजादि मुनिनायक नाना। गए रामु सब कें अस्थाना।।
सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आए जगदीसा।।
लं.कां./119ख/1-3।।

विमान शीघ्र ही वहाँ चला आया जहाँ परम सुन्दर दण्डकवन था और अगस्त्य आदि बहुत से मुनिराज रहते थे। श्रीरामजी इन सबके स्थानों में गये। सम्पूर्ण ऋषियों से आशीर्वाद पाकर जगदीश्वर श्रीरामजी **चित्रकूट** आये।

पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता।।
तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा।।
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोक हरि लोक निसेनी।।
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि।।
लं.कां/119ख/6-9।।

फिर पवित्र **गंगाजी** के दर्शन किये। श्रीरामजी ने कहा हे सीते! इन्हें प्रणाम करो।

फिर **तीर्थराज प्रयाग** को देखो, जिसके दर्शन से ही करोड़ों जन्मों के पाप भाग जाते है। फिर परम पवित्र **त्रिवेणीजी** के दर्शन करो, जो शोकों को हरने वाली और श्रीहरि के परम धाम के लिये सीढ़ी के समान है। फिर अत्यन्त पवित्र **अयोध्यापुरी** के दर्शन करो, जो तीनों प्रकार के तापों और भव रोग का नाश करने वाला है।

सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम।।
लं.कां./120क।।

यों कहकर कृपालु श्रीरामजी ने सीताजी सहित अवधपुरी को प्रणाम किया। सजलनेत्र और पुलकितशरीर होकर श्रीरामजी बार बार हर्षित हो रहे हैं।

पुनि प्रभु आइ त्रिबेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्ह।।
लं.कां./120ख।।

फिर त्रिवेणी में आकर प्रभु ने हर्षित होकर स्नान किया और वानरों सहित ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिये।

तुरत पवनसुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ।।
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही।।
मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी।।
इहाँ निषाद सुना प्रभु आए। नाव नाव कहँ लोग बोलाए।।
सुरसरि नाघि जान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो।।
तब सीताँ पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी।।
दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा।।
लं.कां./120ख/3-9।।

पवनपुत्र हनुमानजी तुरंत ही चल दिये। तब प्रभु **भरद्वाजजी** के पास गये। मुनि ने उनकी अनेकों प्रकार से पूजा की और स्तुति की और फिर आशीर्वाद दिया।

दोनों हाथ जोड़कर तथा मुनि के चरणों की वन्दना करके प्रभु विमान पर चढ़कर फिर चले। यहाँ जब निषादराज ने सुना कि प्रभु आ गये, तब उसने नाव कहाँ है, नाव कहाँ है, पुकारते हुए लोगों को बुलाया। इतने में ही विमान गंगाजी को लांघकर आ गया और प्रभु की आज्ञा पाकर वहाँ किनारे पर उतरा। तब सीताजी बहुत प्रकार से गंगाजी की पूजा करके फिर उनके चरणों पर गिरीं। गंगाजी ने मन में हर्षित होकर आशीर्वाद दिया-हे सुन्दरी! तुम्हारा सुहाग अखण्ड हो।

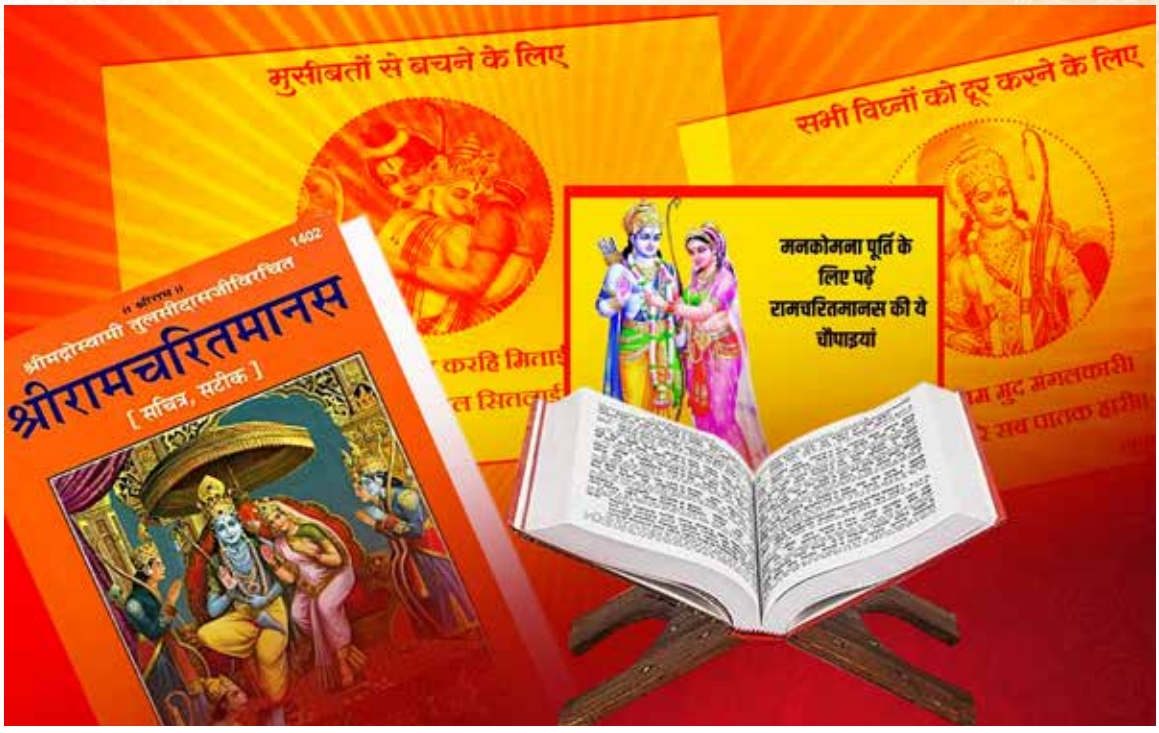

सिद्ध सम्पुट चौपाइयाँ

जीवन में सफल और यश प्राप्त करने हेतु मानस की चौपाइयाँ

आचार्य राघवेंद्र दास
विरक्त साधु, संत रामानंद सम्प्रदाय साधु एवं दार्शनिक

भारतीय लोक में दशरथ पुत्र राम को उत्कृष्ट पुत्र, पिता, पति और राजा के रूप में सम्मान प्राप्त है। लोक हृदय में अपने दिव्य गुणों और लीलाओं द्वारा श्रीराम परब्रह्म के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। उत्तर-भारतीय लोक में रामकथा के माध्यम से सामान्य जनों तक श्रीराम की महिमा को देशज भाषा में पहुँचाने का श्रेय 'गोस्वामी तुलसीदासजी' को प्राप्त है। लोकमान्य है कि देशज भाषा के इस ग्रंथ को काशी विश्वनाथ ने अधिकृत ग्रंथ की मान्यता दी, अनंतर इस ग्रंथ का उपयोग अज्ञात घटनाओं को जानने में और विघ्न-बाधा को शमित करने आदि में होने लगा। उक्त ग्रंथ के पाठ के लिये मास, नवाह्न व चौबीस घंटे पारायण की परम्परा प्रचलित है। इन पाठ-पारायणों में कुछ विशिष्ट चौपाइयों का प्रयोग भिन्न-भिन्न कार्यों की सिद्धि के लिए किया जाता है। इस प्रक्रिया को सम्पुट पाठ कहा जाता है। इसका प्रयोग दोहा, सोरठा व श्लोक के पूर्व व पर में चौपाई पाठ करना होता है। इन पाठ-पारायणों में अंग-न्यास व हवन प्रभृति में भी मानस की चौपाइयों का ही प्रयोग होता है। यहाँ कुछ सम्पुट चौपाइयों के अर्थ व प्रयोजन-प्रयोग का उल्लेख करेंगे।

खोयी हुई वस्तु को प्राप्त करने के लिए

निम्न चौपाई में कहा गया है कि श्रीरघुनाथजी गई वस्तु को पुनः प्राप्त कराने वाले, दीनबंधु, सरल स्वभाव, सर्वशक्तिमान और सबके स्वामी हैं।

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू।।
बा.का./12/7।।

जानकीजी की कृपा प्राप्त करने व बुद्धि निर्मल करने के लिए

अधोलिखित चौपाई में कहा गया है कि राजा जनक की पुत्री, जगत् की माता और करुणा निधान श्रीरामजी की प्रियतमा

श्रीजानकीजी के दोनों चरण कमलों की प्रार्थना करता हूँ, जिनकी कृपा से निर्मल बुद्धि की प्राप्ति होती है।

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।
बा.का./17/7,8।।

जीवन में विपत्तियों के नाश हेतु

इस चौपाई में भक्तों के विपत्ति नाशक श्रीराघवेंद्र सरकार की वंदना की गई है जो धनुष-बाणधारी हैं-

राजिवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक।।
बा.का./17/10।।

विष का प्रभाव शांत करने हेतु

जीवन में किसी भी प्रकार का विष हमें विनष्ट कर सकता है, विष से अर्थ जीवन में विषयों की अधिकता अथवा किसी भी ऐसे तत्व की अधिकता से है जो हमारा विनाश कर सकता है। श्रीराम नाम के प्रभाव को श्रीशिवजी जानते हैं इसीलिए कालकूट नामक भयंकर विष ने उन्हें अमृत का ही फल दिया।

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को।।
बा.का./18/8।।

परिक्षा में सफल होने व विद्या प्राप्ति के लिए

भगवान श्रीराम भक्तों पर निरंतर कृपाशील बने रहते है। राघवेंद्र सरकार बाल्यकाल में गुरु-गृह अध्ययन करने गये और अल्पकाल में ही समस्त विद्यायें आ गईं अर्थात प्राप्त हो गईं।

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती।।
बा.का./27/3।।
गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई।।
बा.का./203/4।।
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी।।
बा.का./104/6।।

दरिद्र-नाश व सुख-सम्पति की प्राप्ति के लिए

भगवान श्रीराम शिव के पूज्य और प्रियतम अतिथि हैं। जो मनुष्य सकामभाव से रामजी के चरित्र को सुनते और गाते हैं, वे अनेकों प्रकार के सुख और संपत्ति पाते हैं।

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के।।
बा.का./31/8।।
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं।।
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ।।
बा.का./293/2,3।।
जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं।।
उ.का./14ख/3।।

अपने प्रिय व्यक्ति को प्राप्त करने के लिए

जिसका जिस पर सत्य प्रेम होता है वह उसे अवश्य प्राप्त होता है।

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।।

बा.का./258/6।।

निन्दा और विरोध को शांत करने के लिए

देवताओं की सेना जो लूटने आई थी, वही गुणदायक अर्थात् हितकारी और रक्षक बन गई, भगवान श्रीराम की कृपा ने उलझन सुधार दी।

रामकृपाँ अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी।।

अयो.का./316/3।।

कठिन क्लेश-नाश के लिए

श्रीभरतजी का चरित्र कलियुग के कठिन पापों और क्लेशों को हरने वाला है, महामोह रूपी रात्रि को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है।

हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू।।

अयो.का./325/6।।

मुकदमा जीतने के लिए

हनुमानजी अपने पिता के समान ही बल वाले हैं और बुद्धि, विवेक व विज्ञान के सागर हैं, उनके लिए इस संसार का कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है।

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना।।
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं।।

कि.का./29/4,5।।

शत्रु को मित्र बनाने के लिए

विष भी अमृत, शत्रु भी मित्र, आग भी शीतलता का कारण और सागर भी गाय के खुर के समान भगवान श्रीराम की कृपा से हो जाता है।

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई।।

सु.का./4/2।।

संकट नाश के लिए

इस चौपाई में जानकीजी हनुमानजी से कहती हैं कि हनुमान! प्रभु से कहना यद्यपि आप सब प्रकार से पूर्ण काम हैं (आपको किसी प्रकार की कामना नहीं है), तथापि दीनों (दुःखियों) पर दया करना आपका विरद है (और मैं दीन हूँ) अतः उस विरद को याद करके, हे नाथ! मेरे भारी संकट को दूर कीजिए।

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।

सु.का./26/4।।

शरीर की मुक्ति के लिए

सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामजी ने एक लाख बाण छोड़े, वे ऐसे चले मानो पंखवाले काल सर्प चले हों।

सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा।।

ल.का./67/3।।

शत्रु नाश, शत्रु शमन व शत्रुता नाश के बंधुत्व स्थापित करने हेतु

जिनके नाम स्मरण मात्र से शत्रुओं का नाश होता है, उनका वेदों में प्रसिद्ध शत्रुघ्न नाम है। हाथ में शारंग, धनुष और कमर में तरकस सजाकर श्रीरघुनाथजी शत्रु सेना को दलन करने चले।

जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा।।

बा.का./196/8।।

कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा।।

लं.का./67/1।।

बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप बिषमता खोई।।

उ.का./19ग/8।।

रोग-नाश के लिए

श्रीरामजी की कृपा से ऐसा संयोग बन जाये तो सभी रोगों का नाश हो, रामराज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं होता।

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा।।

उ.का./121ख/5।।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।

उ.का./20/1

मानस में ज्योतिष शास्त्र

त्रेता युग में पूर्णतः विकसित थीं ज्योतिष गणनाएँ

बाल्मीकि ने ज्योतिष को प्रतिष्ठा दी तो मानस में तुलसी ने इसे पराकाष्ठा प्रदान की

पं. सतीश शर्मा
सीनियर नेशनल वाइस प्रेसीडेन्ट, इण्डियन कांउसिल ऑफ एस्ट्रोलॉजिकल साइंसेज

तुलसीदास प्रकाण्ड विद्वान् थे और श्रीरामचरितमानस की रचना से पूर्व उन्होंने समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था। रामचरितमानस के अन्त में उन्होंने श्रीरामायणजीकी जो आरती लिखी है, उसमें यह उल्लेख भी किया है।

गावत बेद पुरान अष्टदस। छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस।।
मुनि जन धन संतन को सरबस। सार अंस संमत सबही की।।
(श्रीरामायणजी की आरती)

यह अलग विषय है कि संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी उन्होंने लोकभाषा में रामचरितमानस की रचना की। रामचरितमानस में उन्होंने ज्योतिष के पाँचों स्कन्ध और सामुद्रिक शास्त्र का खुलकर प्रयोग किया है। मनोविज्ञान, सौन्दर्य शास्त्र और उपमाओं का अद्भुत प्रयोग किया है। ज्योतिष के होरा, संहिता, स्वप्न और शकुन के साथ-साथ मेदिनी ज्योतिष के विषय पर भी उन्होंने कई जगह लिखा है। मेदिनी ज्योतिष में मेघ, वर्षा, प्रलय, उल्कापात, रोहिणी का शकटवेध जैसे विषय आते हैं। कहीं वो राहु के बारे में बताते हैं, तो कहीं वे पुच्छल तारे के बारे में।

रामचरितमानस की रचना के सम्बन्ध में वे पंचाङ्ग का प्रयोग करते हैं-

संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा।
नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा।।
बा.कां. 33/4,5।।

श्रीहरि के चरणों पर सिर रखकर संवत् 1631 में इस कथा का आरंभ करता हूँ। चैत मास की नवमी तिथि मंगलवार को श्रीअयोध्याजी में यह चरित्र प्रकाशित हुआ।

मुहूर्त को उन्होंने अत्यधिक महत्त्व दिया। रामचरितमानस के बालकाण्ड में वे एक जगह लिखते हैं कि-

सज्जन सकृत सिन्धु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई।।
बा.कां./7घ/14।।

अर्थात् सज्जन व्यक्ति दूसरों की सफलता से उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं, जैसे पूर्ण चन्द्र को देख समुद्र बढ़ने लगता है।

श्रीराम और सीताजी के विवाह को लेकर तुलसीदासजी लिखते हैं-

मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहनु मासु सुहावा।
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू।।
बा.का./सो.311/5,6।।

इन चौपाइयों में हेमन्त ऋतु, अगहन मास, ग्रह, तिथि, योग, नक्षत्र और वार का उल्लेख है। यह लग्न पत्रिका भिजवाने का मुहूर्त है। बारात का स्वागत भी बाद में गोधूलि लग्न में किया गया है।

हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।।
बा.का./3ख/3।।

भगवान की यशरूपी पूर्णिमा के चन्द्र के लिए राहु के समान हैं। यह उल्लेख उन्होंने दुष्टों के लिए किया है जो हर कार्य में बाधा देते हैं। रामचरितमानस के बालकाण्ड में ऐसी बहुत सारी चौपाइयाँ हैं, जिनमें ग्रह-नक्षत्रों आदि का खुल कर उल्लेख है और कहीं-कहीं तो तुलसीदास अपनी ओर से कहते हैं और कहीं-कहीं वे रामचरितमानस के पात्रों के मुँह से कहलवाते हैं। मैंने वाल्मीकि रामायण से भी उन सभी ज्योतिष प्रसंगों की पुष्टि की है, जिनका उल्लेख तुलसीदास ने भी किया है।

बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि।।
बा.का./14छ।।

यहाँ स्वयं तुलसीदास ग्रंथ रचना से पूर्व देवता, ब्राह्मण, पण्डित और ग्रह इन सभी की आराधना करते हैं।

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा। साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा।।
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू।।
बा.का./14छ/5,6।।

परन्तु उन्होंने शिव-पार्वती का उल्लेख करते हुए बताया है कि कलियुग के लिए शिव-पार्वती ने शाबर मंत्रों की रचना की, जिनका जप नहीं होता है, जिनका शब्द विन्यास भी बेमेल है, परन्तु शिवजी के प्रताप से इनका प्रभाव देखने को मिलता है।

तुलसीदासजी पर्वतराज हिमाचल का उल्लेख करते हुए कहते हैं।

हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिबर लिए बोलाई।।
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई।।
बा.का./90/3,4।।

हिमाचल ने मुनियों को सम्मानपूर्वक बुला लिया और उनसे शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी का शोध करके वैदिक विधि से पार्वती के विवाह का समय निश्चय कर लिया। विवाह लग्न को लेकर उन्होंने तीन-चार चौपाइयाँ और रची हैं।

रामचरितमानस में बालकाण्ड, सुन्दरकाण्ड और लंकाकाण्ड में ग्रह-नक्षत्रों का खुलकर उल्लेख है। भगवान राम के जन्म का उल्लेख बालकाण्ड में इस प्रकार से आया है।

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता।।
मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा।।
बा.का./190/1,2।।

अर्थात् चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की नवमी, अभिजित मुहूर्त जिस समय दोपहर थी, न बहुत सर्दी थी, न गर्मी थी, तब भगवान का जन्म हुआ। उनकी प्रशंसा में तुलसीदास ने सामुद्रिक शास्त्र के भी लक्षण लिखे हैं।

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे।
कटि किंकिनी उर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा।।
बा.का./198/3,4।।

अर्थात् पदतल में वज्र, ध्वजा और अंकुश के चिह्न सुशोभित हैं। कमर में करधनी है और पेट पर तीन रेखाएँ हैं, जिसको त्रिवली कहा जाता है। नाभि के लक्षण वे ही जान सकते हैं, जिन्होंने उसको देखा हो।

गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू।।
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू।।
बा.का./280/5,6।।

राजा जनक के यहाँ भगवान राम से पूर्व तो लक्ष्मण ने ही परशुराम से संवाद कर लिए। वे लक्ष्मण के बारे में सोचते हैं, 'क्रोध तो लक्ष्मण कर रहे हैं और दोष मुझ पर आ रहा है। स्वभाव का सीधापन भी बड़ा दोष हो जाता है। लोग तो टेढ़े व्यक्ति की आराधना करते हैं, जैसे कि टेढ़े चन्द्रमा को राहु भी ग्रास नहीं बनाते।' इसमें छिपा हुआ ज्योतिष यही है कि पूर्ण चन्द्र को तो ग्रहण लगता है, परन्तु चन्द्रमा की जब कलाएँ होती हैं अर्थात् टेढ़ा चन्द्रमा होता है, उसे राहु भी ग्रहण नहीं लगाता।

सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसें। सुर गुर संग पुरंदर जैसें।।

करि कुल रीति बेद बिधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ।।
बा.का. 301/1,2।।

विवाह के पूर्व जनक के महल की ओर प्रस्थान करते हैं तब दशरथजी वसिष्ठ के साथ हैं, जैसे कि देवगुरु बृहस्पति के साथ इन्द्ररूपी दशरथ हों। वेद की विधियाँ और कुल की रीति का पालन हो रहा है। इसमें ज्योतिष संकेत यह है कि वेद-विधियों में आवश्यक रूप से मंत्र, मुहूर्त, ग्रह-नक्षत्रों की अभ्यर्थना इत्यादि समाहित रहती है। बारातियों ने विश्राम किया। फिर मंगल कार्यों के लिए प्रसिद्ध मूल लग्न का दिन आ गया। हेमन्त ऋतु, अगहन का महीना, ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग और वार श्रेष्ठ थे। इन पर ब्रह्माजी ने विचार किया और उस लग्न पत्रिका को नारदजी के साथ जनकजी के यहाँ भिजवा दिया। वही मुहूर्त जनकजी के ज्योतिषियों ने निकाल रखा था।

पठै दीन्हि नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई।।
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता।।
बा.का./311/7,8।।

त्रेता युग में भी ज्योतिष का विकास अच्छा हो चुका था। स्वप्न और शकुन को बड़ी मान्यता थी। सुन्दरकाण्ड के शकुनों की चर्चा तो आगे करेंगे, परन्तु यहाँ बालकाण्ड में भी तुलसीदास ने दोहा लिखा है-

होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभीं बजाइ।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ।।
बा.का./347।।

अर्थात् अच्छे शकुन हो रहे हैं, देवता दुंदुभी बजा रहे हैं, पुष्प वर्षा कर रहे हैं और देव वधुएँ नाच रही हैं और मंगल गीत गा रही हैं।

विवाह प्रसंग में ही बालकाण्ड के नवाह्न परायण, तीसरे विश्राम में फिर मुहूर्त का उल्लेख आया-

सुदिन सोधि कल कंकन छोरे।।
बा.का./359/1।।

अर्थात् अच्छा मुहूर्त देखकर कंकण खोले गये। यह प्रसंग बारात के अयोध्या लौट आने के पश्चात् का है।

अयोध्या काण्ड में ही कैकेयी का प्रसंग प्रमुख हो उठता है। मंथरा कैकेयी को भ्रमित करते हुई कहती है-

पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची।।
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरीं सेवा बस राऊ।।
अयो.का./20/7,8।।

अर्थात् 'मैंने ज्योतिषियों से पूछा तो उन्होंने रेखा खींचकर अर्थात् गणित करके कहा है कि भरत ही राजा होंगे। हे रानी! अगर उपाय करो तो मैं बताऊँ, तुम्हारी बात तो राजा मानेंगे ही।

जब दशरथ ने कैकेयी की बात मान ही ली तो हारे मन से उन्होंने कैकेयी को कहा कि मैं सबेरे ही दूत भेज दूँगा, भरत और शत्रुघ्न नानी के घर से आ जायेंगे तथा अच्छे दिन मुहूर्त का शोधन करके डंका बजा करके मैं भरत को राज्य दे दूँगा। हर बात में, हर गतिविधि में मुहूर्त की कितनी प्रतिष्ठा थी, यह इससे प्रकट होता है।

अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता।।
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई। देउँ भरत कहुँ राजु बजाई।।
अयो.का./30/7,8।।

त्रेतायुग में ज्योतिष की इतनी ज्यादा प्रतिष्ठा थी, जिसका उल्लेख रामचरितमानस में खुलकर आया है। यद्यपि तुलसीदासजी ने सैकड़ों बार ज्योतिष का प्रयोग बताया है, परन्तु मैं केवल उन्हीं घटनाओं के सम्बन्ध में ज्योतिष का उल्लेख कर रहा हूँ, जिन घटनाओं को आम जनता भी जानती है।

जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति।।
अयो.का./52।।

अयोध्या काण्ड के दोहे में स्वाति नक्षत्र के दिन वर्षा का उल्लेख है। कहावत है कि स्वाति नक्षत्र के दिन वर्षा होती है, उसी से सीप में मोती बनता है। उधर चातक और चातकी इस नक्षत्र में वर्षा की कामना करते हैं। उल्लेख है कि जिस लग्न को सभी स्त्री-पुरुष इस प्रकार चाहते हैं, जिस प्रकार से प्यासे चातक और चातकी स्वाति नक्षत्र की वर्षा को चाहते हैं। यह प्रकरण राजमाता कौशल्या व अन्य सभी का है जो कि वन गमन के लिए तैयार बैठे थे। यह अद्भुत है।

सुन्दरकाण्ड में स्वप्न और शकुन शास्त्र के अच्छे उल्लेख हैं। अशोक वाटिका में त्रिजटा ने स्वप्न देखा और माता सीता को बताया।

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।।

नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।
सु.का./10/3-6।।

स्वप्न था कि एक बंदर ने लंका जला दी, राक्षसों की सारी सेना मार डाली गई, रावण नंगा है, गधे पर सवार है, उसके सिर मुँडे हुए हैं, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं। वह दक्षिण दिशा को जा रहा है और लंका विभीषण को मिल गई है तथा सब भगवान रामचन्द्र की दुहाई दे रहे हैं। तब भगवान ने माता सीता को बुलाया।

त्रिजटा ने दावा किया कि यह स्वप्न चार दिन में ही फलीभूत हो जायेगा। ज्योतिष के स्वप्न स्कन्ध का यह प्रकट उल्लेख है, क्योंकि दक्षिण दिशा में यमपुरी है और अर्यमा (प्रेतराज) दक्षिण के दिग्पाल हैं। इस स्वप्न में रावण के पराभव की घोषणा छिपी हुई है।

सुन्दरकाण्ड के ही 34वें दोहे में उल्लेख है कि जैसे ही भगवान राम ने युद्ध के लिये प्रस्थान किया तो माता सीता को अच्छे शकुन हुए और जो शकुन उन्हें हुए वही शकुन रावण के लिए अपशकुन हुए।

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती।।
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं।।
जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई।।
सु.का./34/5-7।।

एक प्रकरण तब का है, जब भगवान राम वनगमन के समय लक्ष्मण और सीता के साथ पैदल चल रहे हैं और वनवासी उन्हें देख रहे हैं। मानो 'वसंत ऋतु और कामदेव के बीच में कामदेव की पत्नी रति चल रही हो।' तुलसीदास ने उपमा और ज्योतिष का एक साथ प्रयोग किया और कहते हैं कि मानो 'चन्द्रतनय बुध और चन्द्रमा के बीच में चन्द्रप्रिया रोहिणी (नक्षत्र) शोभायमान हो।' यह मेदिनी ज्योतिष का एक श्रेष्ठ योग है।

बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई।।
उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही।।
अयो.का./122/3,4।।

यहाँ स्वप्न और शकुन शास्त्र का एक कथन अयोध्या काण्ड में कहा गया है। राम के वनगमन का प्रसंग तो हो गया था, परन्तु भरत को अभी तक पता नहीं था। 'जब से अयोध्या में अनर्थ प्रारम्भ हुआ है, तभी से भरतजी को अपशकुन होने लगे। रात को भयानक स्वप्न देखते थे और करोड़ों तरह की बुरी-बुरी कल्पनाएँ होती थी।' एक-एक निमिष एक वर्ष के समान बीत रहा था। नगर में प्रवेश करते समय अपशकुन हुए और कौए बुरे स्थान पर बैठकर बुरी तरह से काँव-काँव कर रहे थे।

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें।।
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना।।
अयो.का./156/5,6।।

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई।।
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।।
अयो.का./157/3,4।।

जब भरत राम को वन से वापस लेने के लिए आ रहे थे तो उनकी सेना देखकर निषादराज भरत को शत्रु समझ कर आक्रमण को तैयार हो गये। अपनी सेना को आदेश दिया 'लड़ाई का ढोल बजाओ' । इतना होते ही बायें ओर से छींक हुई। तुरन्त ही किसी ने कहा कि जीत होगी। परन्तु एक वृद्ध व्यक्ति ने निषादराज को सलाह दी कि शगुन अच्छा है, विरोध नहीं होगा। भरत से मिल लेने से लड़ाई नहीं होगी।

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू।।
एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए।।
बूढ़ु एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी।।
रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं।।
अयो.का./191/3-6।।

जब भगवान राम वनगमन के समय लक्ष्मण और सीता के साथ पैदल चल रहे हैं और वनवासी उन्हें देख रहे हैं। मानों 'वसंत ऋतु और कामदेव के बीच में कामदेव की पत्नी रति चल रही हो।' तुलसीदास ने उपमा और ज्योतिष का एक साथ प्रयोग किया और कहते हैं कि 'मानो चन्द्रतनय बुध और चन्द्रमा के बीच में चन्द्रप्रिया रोहिणी (नक्षत्र) शोभायमान हो।' यह मेदिनी ज्योतिष का एक श्रेष्ठ योग है।

भरत जब भगवान राम को नहीं समझा पाये तो सब की सलाह के विपरीत अयोध्या लौटकर उन्होंने सभी ज्योतिषियों को बुलाया और अच्छा मुहूर्त निकालकर भगवान की चरण-पादुकाओं को सिंहासन पर विराजमान किया। त्रेतायुग में मुहूर्त निकाल कर कार्य करने की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि।।
अयो.का./323।।

भरत के चरित्र को लेकर तुलसीदासजी यह उल्लेख करते हैं कि आकाश में विश्वास ही उनका ध्रुव तारा है। चौदह वर्ष की वनवास अवधि का ध्यान ही पूर्णिमा है। भगवान श्रीराम की स्मृति आकाश गंगा जैसी प्रकाशित है और उनका अनंत प्रेम ही कलंकरहित चन्द्रमा है। वे अपने समाज में नक्षत्रों की तरह सुशोभित हैं। ज्योतिष और उपमाओं का इतना सुन्दर सम्मिश्रण तुलसीदास के कवि-हृदय की कल्पना है।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी।।
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा।।
अयो.का./324/5,6।।

अगस्त्य तारे के उदय से वर्षा ऋतु को समाप्त होना माना जाता है। तुलसीदास ने अगस्त्य ऋषि और अगस्त्य तारे का उल्लेख विभिन्न प्रकरणों में किया है। यहाँ कहते हैं कि 'अगस्त्य तारा उदय हो गया है, उसने मार्ग के जल को सोख लिया है। जिस प्रकार संतोष लोभ को सोख लेता है।' यह वह समय है जब वनगमन काल में वर्षा ऋतु समाप्त होने को है।

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा।।
कि.का./15ख/3।।

तुलसीदास ने एक प्रसंग, जिसमें ज्योतिष, दर्शन और विद्याविलास शामिल है, लंकाकाण्ड में कहा है, जब भगवान राम अपने सभासदों के साथ प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं।

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक।।
ल.का./11ख।।

पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी।।
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी।।
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा।।
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई।।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई।।
मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई।।
कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा।।
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं।।
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा।।
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी।।
ल.का./11ख/1-10।।

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास।।
ल.का./12क।।

उपरोक्त चौपाइयों में लंकाकाण्ड का एक सुन्दर प्रसंग है। श्रीराम ने चन्द्रमा को उदय होते हुए देखा तो सबसे कहने लगे कि देखो चन्द्रमा सिंह के समान निडर है। यह दिशारूपी पर्वत की गुफा में रहने वाला तेजस्वी, प्रतापी और हाथी के मस्तक को विदीर्ण करते हुए वन में निर्भीक विचर रहा है। भगवान ने प्रश्न किया कि चन्द्रमा में जो कालापन है वह क्या है? सुग्रीव ने कहा कि चन्द्रमा में पृथ्वी की छाया दिखाई दे रही है। किसी ने कहा कि चन्द्रमा को राहु ने मारा था, यह वही काला निशान है। किसी ने कहा कि ब्रह्मा ने कामदेव की पत्नी रति का जब मुख बनाया तो चन्द्रमा का सार भाग निकालकर मुख बना दिया। रति तो सुन्दर हो गई, परन्तु चन्द्रमा के हृदय में छेद है। इस पर भगवान ने कहा कि विष चन्द्रमा का प्यारा भाई है क्योंकि दोनों समुद्र मंथन से निकले थे। इसीलिए उसने विष को अपने हृदय में स्थान दे रखा है। विषयुक्त यह चन्द्रमा विरहशील नर-नारियों को जलाता है। इस प्रकरण का पटाक्षेप हनुमान करते हैं कि 'हे प्रभु! चन्द्रमा आपका प्रिय दास है। आपकी सुन्दर श्याम मूर्ति चन्द्रमा के हृदय में बसती है, वही श्यामलता चन्द्रमा में है।'

पूरे रामचरितमानस में तुलसीदासजी शोध शब्द का प्रयोग ज्योतिष के संदर्भ में करते हैं। जिसका तात्पर्य ज्योतिष की गणनाओं से है। उनका कवि हृदय ग्रह-नक्षत्रों को उपमाएँ प्रदान करने में और हर प्रसंग को लालित्य के साथ प्रस्तुत करने में निष्णात है। वे बार-बार वेद-विधि का वर्णन करते हैं, जिसका तात्पर्य है कि वेद और वेदांगों में वर्णित विषयों का समग्र पालन। ऐसा प्रतीत होता है कि त्रेता युग में ज्योतिष गणनाएँ अपने सम्पूर्ण विकास पर आ गई थी। जहाँ वाल्मीकि ने ज्योतिष को प्रतिष्ठा दी है, तुलसीदास ने रामचरितमानस में ज्योतिष को पराकाष्ठा प्रदान कर दी है। भगवान राम, उनका वंश और समस्त प्रजा ज्योतिष का प्रयोग करती हुई जान पड़ती है।

श्रीरामचरितमानस में शगुन-अपशगुन विमर्श

भारतीय समाज में शुभ-अशुभ का महत्व-मानस में सजीव चित्रण

उमेश पाठक
वरिष्ठ साहित्यकार

आर्यावर्त की सनातन संस्कृति में किसी भी कार्य को आरम्भ करने से पूर्व शुचि शुभ समय का (शुभ मुहूर्त) अवलोकन किया जाता है। यह ग्रन्थों के वर्णन देख, प्राकृतिक स्थिति देखकर या मानवीय मन व शरीर के अंगों के संकेत से जाना-समझा जाता है। जब समय अनुकूल हो और प्रकृति व शरीर के संकेत शुभ हों, सकारात्मक हों, तब शुभ 'शगुन' माना जाता है।

देव या आर्य संस्कृति 'शगुन' या 'अपशगुन' का बड़ी गहराई से अध्ययन व अनुपालन करती है। राक्षस संस्कृति में शगुन-अपशगुन का कोई विचार नहीं किया जाता है। जहाँ आर्य सनातनी शगुन के संकेत से प्रफुल्लित हो जाते हैं, वहीं अपशगुन के संकेत से खिन्न हो जाते हैं। राक्षस इस विषय को कुछ भी नहीं मानते, उनके यहाँ अपशगुन ही होते हैं, शगुन नहीं।

शुभ-अशुभ, हित-अनहित, शगुन-अपशगुन से सभी प्रभावित होते हैं, यहाँ तक कि अवतारी परमात्मा भी, जब वे भूमि पर अवतारी लीलाएँ कर रहे होते हैं। विश्व-वन्दित तुलसीदासजी द्वारा सृजित 'श्रीरामचरितमानस' महाकाव्य में शगुन-अपशगुन का अनेक स्थानों पर वर्णन किया गया है।

तुलसीदास के रामचरितमानस में वे 'शगुन' को 'सगुन' लिखते हैं यानि तालव्य 'श' के स्थान पर दन्त्य 'स' व्यन्जन का प्रयोग। इसी प्रकार सगुण और सगुन दोनों ही शब्द के लिये सगुन ही लिखते हैं। यानी तुलसीदास 'ण' व्यन्जन के स्थान पर 'न' व्यन्जन का प्रयोग करते हैं। 'श' व्यन्जन का प्रयोग तुलसीदासजी ने केवल संस्कृत के श्लोकों में ही किया है, अन्य स्थानों पर नहीं।

तुलसीदासजी ने शगुन (सगुन) के लिये व 'सगुण' साकार ईश्वर दोनों के लिये 'सगुन' शब्द का ही प्रयोग किया है। 'सगुन' शब्द रामचरितमानस में साठ स्थानों पर तुलसीदासजी ने प्रयोग किया है, जिसमें साकार सगुण परमात्मा व सगुन (शगुन) दोनों ही समाहित हैं। 'अपशगुन' शब्द सात स्थानों पर प्रयुक्त है।

भगवान श्रीरामजी के प्राकट्य के पूर्व तुलसीदासजी 'सगुन' शब्द का प्रयोग न करते हुए भी समय, प्रकृति, लोक व शरीर के सकारात्मक भाव संकेत से शुभ 'सगुन' का वर्णन किया है।

जा दिन तें हरि गर्भहिं आये। सकल लोक सुख संपति छाए।।
बा.का./189/6।।

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल।।
बा.का./190।।

जड़ और चेतन सब हर्ष से भर गये। श्रीराम का जन्म सुख का मूल है।

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता।।
मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा।।
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ।।
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा।।
सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना।।
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा।।
बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी।।
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा।।
बा.का./190/1-8।।

पवित्र चैत्र का महीना था, नवमी तिथि थी। शुक्लपक्ष और भगवान का प्रिय अभिजीत मुहूर्त था। दोपहर का समय था। न बहुत सर्दी थी, न गर्मी थी। वह पवित्र समय सब लोकों को शांति देने वाला था।

शीतल, मंद और सुगंधित पवन बह रहा था। देवता हर्षित थे और संतों के मन में चाव था। वन फूले हुए थे, पर्वतों के समूह मणियों से जगमगा रहे थे और सारी नदियाँ अमृत की धारा बहा रही थीं।

जब ब्रह्माजी ने वह अवसर जाना, तब सारे देवता विमान सजा-सजाकर चले। निर्मल आकाश देवताओं के समूहों से भर गया। गंधर्वो के दल गुणों का गान करने लगे और सुन्दर अलियों में सजा-सजाकर पुष्प बरसाने लगे। आकाश में घमाघम नगाड़े बजने लगे। नाग, मुनि और देवता स्तुति करने लगे और बहुत प्रकार से अपनी-अपनी सेवा भेंट करने लगे।

इसी प्रकार 'सगुन' का प्रयोग किये बिना ही आंगिक संकेत (अंगो का फड़कना) से 'शुभ सगुन' का वर्णन तुलसीदासजी ने मानस बालकाण्ड में सीताजी व रामजी के पुष्प वाटिका में जनकपुर में मिलन के समय वर्णित किया है-सीताजी गौरी पूजन के लिये पुष्प वाटिका में आईं और रामजी वहाँ पुष्प लेने के लिये पहुँचे हैं-

पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं।।
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा।।
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता।।
बा.का./230/2-4।।

रामजी के दायें अंग फड़कने लगते हैं, जो शुभ सगुन के संकेत हैं। जब जानकीजी गौरी पूजन कर रही हैं, तब वे पार्वतीजी के चरणों को पकड़कर कहती हैं कि आप मनरुपी नगर में निवास करती हैं, मेरे मन में जो है, उसे पूरा करें तब-

बिनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी।।
बा.का./235/5।।

पार्वतीजी के गले की माला खिसक गयी और मूर्ति मुस्कुरा गयी, सीताजी ने उसे प्रसाद समझ कर अपने सिर पर रख लिया। इस प्रकार यह शुभ संकेत 'सगुन' है।

रावण द्वारा सीताहरण के समय किसी प्रकार का अपसगुन संकेत सीता को नहीं होता है, लेकिन जब लक्ष्मण आश्रम में सीता को अकेला छोड़कर राम की ओर चले जाते हैं और जब लक्ष्मण को देखकर राम कहते हैं कि मुझे शंका और मन का संकेत हो रहा है कि आश्रम में सीता नहीं हैं-

जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली।।
निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं।।
अर.कं./29ख/2,3।।

रामचरितमानस में 'सगुन' शब्द का प्रयोग तुलसीदासजी शिव विवाह प्रसंग में करते हैं। जब उनकी वरयात्रा जाने के लिये तैयार होती है-

लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान।।
बा.का./91।।

शंकरजी का विचित्र वरवेष श्रृंगार कर दिया जाता है। अनेक प्रकार के वाहन और अनेक प्रकार के विचित्र वेश वाले वरयात्री वरयात्रा में चल रहे हैं-

कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू।
बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू।।
बा.का./92/7।।

नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि।।
बा.का./सो. 93।।

जब यह बारात पार्वतीजी की नगरी में पहुँचती है, तब-

हियँ हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी।।
बा.का./94/3।।

जब भगवान शंकर के समाज को देखा तो बारात देखने आऐ लोगों के हाथी, घोड़े, रथ के बैल डरकर भाग गये-

सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे।।
बा.का./94/4।।

वहाँ बारात में-

तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा।।
बा.का./94 छं.।।

ऐसी विचित्रता में सगुन अपसगुन कुछ नहीं है। बाराती भोजन करने बैठते हैं और स्त्रियाँ गारी गीत गाती हैं।

नारिबृंद सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी।।
बा.का./98/8।।

विवाह सकुशल सम्पन्न हो जाता है।

सगुन अपसगुन के संदर्भ में ध्यातव्य है कि धनुष भंग होने के उपरांत वहाँ एकत्र कुछ राजा लोग उपद्रव करने का मन बनाते हैं कि सीताजी को राम से छीन लो। तभी वहाँ भृगुनन्दन परशुरामजी आ जाते हैं। यह एक नवीन समस्या हो जाती है, पर यहाँ किसी को सगुन-अपसगुन का पूर्वाभास नहीं होता है।

अयोध्या से भगवान राम की वरयात्रा जाने की तैयारी शुरू हो जाती है। लोग अपने रथों में बैठकर नगर के बाहर एकत्र होने लगते हैं। तब सुन्दर सगुन हो रहे हैं-

चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबहि जो जेहि कारज जात।।
बा.का./299।।

बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता।।
चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई।।
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा।।
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी।।
लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा।।
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई।।
छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी।।
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना।।
बा.का./302/1-8।।

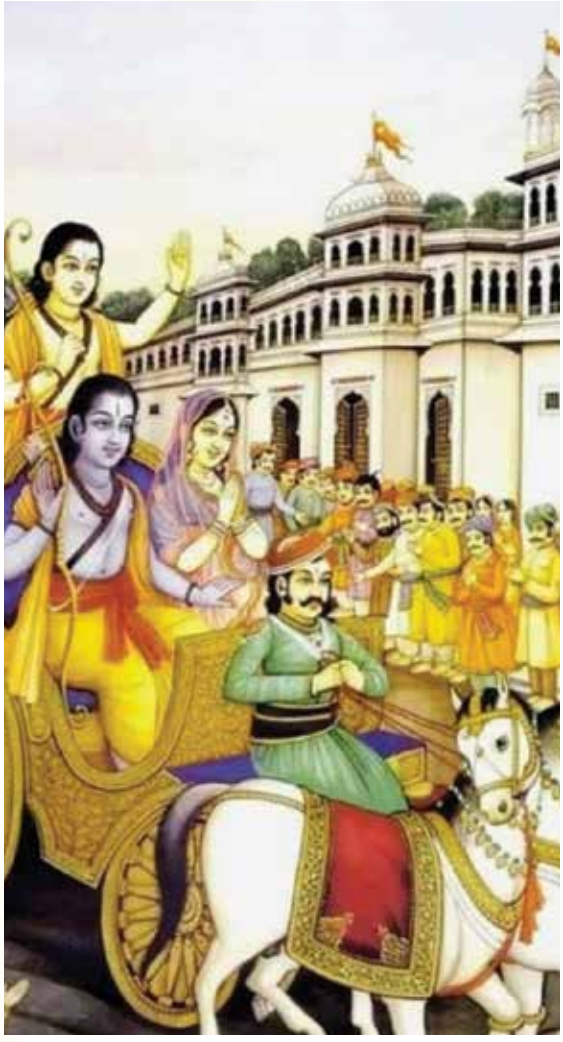

बारात ऐसी बनी है कि उसका वर्णन करते नहीं बनता। सुन्दर शुभदायक शकुन हो रहे हैं। नीलकंठ पक्षी बायीं ओर चारा ले रहा

है, मानो संपूर्ण मंगलों की सूचना दे रहा है। दाहिनी ओर कौआ सुंदर खेत में शोभा पा रहा है। नेवले का दर्शन भी सब किसी ने पाया। तीनों प्रकार की हवा अनुकूल दिशा में चल रही है। सुहागिनी स्त्रियाँ भरे हुए घड़े और गोद में बालक लिये आ रही हैं। लोमड़ी फिर-फिरकर दिखायी दे जाती है। गायें सामने खड़ी बछड़ों को दूध पिलाती हैं। हिरणों की टोली घूमकर दाहिनी ओर को आयी, मानो सभी मंगलों का समूह दिखायी दिया। सफेद सिर वाली चील विशेष रूप से कल्याण कह रही है। श्यामा बायीं ओर सुन्दर पेड़ पर दिखायी पड़ी। दही, मछली और दो विद्वान ब्राह्मण हाथ में पुस्तक लिये हुए सामने आये।

यहाँ ध्यातव्य है कि नीलकंठ पक्षी व श्यामा पक्षी को तुलसीदासजी बायें ओर बता रहे हैं, शुभ सगुन है? विश्ववन्द्य तुलसीदासजी के मत से यह सभी शुभ कल्याणमय सगुन है-

मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार।।
बा.का./303।।

इससे अग्रिम पंक्ति में तुलसीदासजी ने यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है-

मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें।।
बा.का./303/1।।

यहाँ तुलसीदासजी ने 'सगुन' शब्द को 'शुभ संकेत' व 'ब्रह्म' दोनों के अर्थ में प्रयोग किया है।

विवाह के इस प्रसंग में तुलसीदासजी ने 'सगुनों (सगुन का बहुवचन) का मानवीकरण भी किया है-

सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे।
बा.का./303/3।।

तुलसीदासजी ने सगुन के अनेक प्रकारों में 'सुगन्धित द्रव्य' को भी 'सगुन' का एक रूप माना है। राजा जनक (धीरध्वज) श्रीराम की वरयात्रा की अगवानी के लिये आते हैं तो भेंट के लिये अनेक वस्तुएँ लाते हैं, उनमें सुगन्धित द्रव्य भी हैं-

मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए।।
बा.का./304/5।।

तुलसीदास राम जानकी विवाह में सप्तपदी के लिये शुभ मुहूर्त का प्रयोग न कर लोक शब्दावली का प्रयोग करते हैं-

धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल।।
बा.का./312।।

यहाँ ध्यातव्य है बिप्रन्ह शब्द का प्रयोग है। ये मिथिला के ब्राह्मण हैं, जो सप्तपदी का शुभ समय बता रहे हैं। जब जानकी का वैवाहिक जीवन देखा जाता है तो वह सुखद नहीं है, तो मिथिला की पांण्डित्य परंपरा की विद्वता पर प्रश्न चिन्ह लगता है। यह भी ध्यान दिया जाय कि तुलसीदासजी ने यहाँ वशिष्ठजी का उल्लेख नहीं किया है। बात जनकजी के विप्र लोग कर रहे हैं, जो मिथिला के हैं, जो सतानंद आदि हैं।

इस अवसर पर तुलसीदास लिखते हैं-सतानन्दजी सचिवों को बुलाते हैं, जो सभी प्रकार के मांगलिक उपकरणों से सजे हैं।

संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे।।
सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता।।
बा.का./312/3,4।।

इस अवसर पर देवता लोग सुमंगल जानकर आते हैं और पुष्प वर्षा करते हैं।

सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना। बरषहिं सुमन बजाइ निसाना।।
बा.का./313/1।।

सीताजी की विदाई के समय भी शुभ मंगल सगुन होते हैं। तुलसीदास ने यहाँ उनका उल्लेख किया है।

सीय चलत ब्याकुल पुरबासी। होहिं सगुन सुभ मंगल रासी।।
बा.का./338/3।।

इस अवसर पर दशरथ विप्रों को दान आदि देकर सम्मानित करते हैं। उनकी चरण धूलि मस्तक पर धारण कर आशीर्वाद लेते हैं और गिरिजानन्दन का स्मरण कर अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं।

सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगलमूल सगुन भए नाना।।
बा.का./338/8।।

जब बारात वापस अयोध्या पहुँचती है, उससे पूर्व अयोध्या की सजावट की जाती है। जो परोक्ष रूप से सगुन का प्रतीक है। यहाँ तुलसीदास मांगलिक चिन्हों का उल्लेख करते हैं-नगर की गलियाँ अरगजे से सीचीं गईं, चौक पूरे गए, तोरणों, ध्वज-पताकाओं, मण्डपों, सुपारी, केला, आम, मौलसिरी, कदम्ब, पान की लताएँ जो फलों सहित थे, लगाये गए। वृक्ष लताओं के चारों ओर अलंकृत थंवला बनाये गए, जो बहुत सुन्दर थे।

गलीं सकल अरगजाँ सिंचाईं। जहँ तहँ चौकें चारु पुराईं।।
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना।।
सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला।।
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी।।
बा.का./343/5-8।।

अयोध्या की ऐसी मंगल सगुन मनोहरता को देख कर कामदेव का मन भी मोहित हो गया।

रचना देखि मदन मनु मोहा।।
बा.का./344/1।।

वधुओं के आगमन के समय दशरथ की तीनों रानियाँ सभी प्रकार के मांगलिक चिन्हों से सज जाती हैं। सगुन की सुगन्धित वस्तुओं का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी।।
रचीं आरतीं बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना।।
बा.का./345/7,8।।

स्वर्ण की थालियों में मांगलिक वस्तुओं को रखकर वे माताएँ, पुत्रों और पुत्रवधुओं के परिछन के लिये जाती हैं। उस समय सुगन्धित धूप के धुँए के बादल सावन के काले मेघ से छा गये हैं। देवता कल्पवृक्ष के फूलों की माला बरसा रहे हैं। सुन्दर मणियों से बने बन्दनवार इन्द्रधनुष की सतरंगी छटा बिखेर रहे हैं। सजी-धजी सुन्दर स्त्रियाँ जो अपने छतों (अटा) पर आती-जाती विद्युतमाला को लजा रही हैं। वाद्य यंत्रों की घोर ध्वनि हो रही है। देवगण पवित्र सुगन्धित जल की बरसा कर रहे हैं। उससे अयोध्यावासी ऐसे सुखी हो रहे हैं, जैसे वर्षा से खेती होती है। उस समय वशिष्ठजी राजा दशरथ को अयोध्या में प्रवेश का आदेश देते हैं। राजा शिव परिवार का स्मरण कर नगर में प्रवेश करते हैं।

होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभीं बजाइ।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ।।
बा.का./347।।

शुभ मांगलिक वस्तुओं के परिगणन में तुलसीदासजी ने सभी तीर्थों का जल, अनेक औषधियों, मूल, फूल, फल को भी गिना है। रेशमी और ऊनी वस्त्र शुभ सगुन के प्रतीक हैं। ध्वज पताका, तोरण, कलस, सजे हुए घोड़े और हाथी, मांगलिक वस्तुएँ, स्त्री-पुरूषों के अंगों का फड़कना भी सगुन, अपसगुन का संकेत देता है, जो बाएँ-दायें के अनुसार माने जाते हैं।

रामजी को उनके राज्याभिषेक का पता नहीं है। दोनों के अंग फड़क रहे हैं। भरत बहुत दिनों से अपने ननिहाल कैकय देश में हैं तो रामजी और सीताजी अंगों के फड़कने को आपसी वार्तालाप में, भरतजी के आगमन का संकेत मानते हैं।

भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी।
भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं।
अयो. का./6/6,7।।

जब रामजी के राज्याभिषेक का समाचार रनिवास में पहुँचता है, तब सभी रानियाँ आनन्द-मग्न हो जाती हैं। देवी-देवता पूजती हैं। दान करती, चौक पूरती हैं। मंगल गीत गाती हैं।

इसके उपरान्त सगुन प्रसंग अयोध्याकाण्ड में तब आता है, जब भरत रामजी को मनाने जाते हैं। भरतजी का सैन्यदल देखकर निषादपति अपने योद्धाओं को सावधान करते हैं। युद्ध का वाद्य बजाने को कहते हैं। उसी समय बायीं ओर छींक होती है। किसी शुभ कार्य में छींक का होना अशुभ संकेत होता है। यहाँ युद्ध की तैयारी होने लगी तो छींक होना यानि युद्ध नहीं होगा, यह संकेत है। इस बात को एक अनुभवी सगुन विचारक कहता है-युद्ध क्षेत्र में विजय होगी।

एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए।
अयो. का./191/4।।

तभी एक वृद्ध व्यक्ति सगुन विचार कर कहता है, युद्ध नहीं होगा।

बूढ़ु एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी।
रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं।।
अयो. का./191/5,6।।

रामचरितमानस में सातों काण्ड में तुलसीदासजी ने सगुन शब्द का प्रयोग किया है।

भरतजी राम से मिलने जा रहे हैं। निषादराज गुह उन्हें कामदगिरि और पयस्वनी नदी का संकेत कर बता रहे हैं कि रामजी वहीं कुटी बनाकर रह रहे हैं। रामजी से मिलन का आभास सभी लोगों को होने लगता है।

मंगल सगुन होंहि सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू।।
अयो.का./224/1।।

भरतजी की राम मिलन की आतुरता को देखकर निषाद अपने देह की सुधबुध भूल गए और सुधि आने पर अपने आप से वार्ता करने लगे (भक्त और भगवान दोनों एक-दूसरे के मन की बात जान लेते हैं)। ये जो मंगल सगुन हो रहे हैं, उनमें आभास हो रहा है कि चिन्ता और चिन्तन समाप्त होगा, सभी को हर्ष प्राप्त होगा, लेकिन बाद में परिणाम यह होगा कि सभी दुःखित होंगे।

यहाँ विचारणीय है कि शूद्र वर्ण का निषाद ज्ञानी है, अनुभवी है। उसे परिणाम का पूर्वाभास हो जाता है। परोक्ष रूप से वह भविष्य का ज्ञाता है।

अरण्य व **किष्किन्धा कांड** में सगुन की कोई बात है तो यहाँ सगुन (सगुण ईश्वर) के लिये प्रयोग किया है।

सुन्दरकाण्ड में सगुन की चर्चा तुलसीदास तब करते हैं, जब वानरराज सुग्रीव लंका चढ़ाई के लिये अपने सैनिकों को बुलाते हैं और सेना के साथ रामजी हर्षित होकर प्रस्थान करते हैं। यहाँ तुलसीदास ने सगुन क्या-क्या हुए, यह नहीं लिखा है, लेकिन बहुत से सगुन हुए हैं। उधर अशोक वाटिका में जानकीजी को शुभ संकेत होने लगते हैं। उनके बायें अंग फड़कने लगते हैं और उस समय जो-जो सगुन राम-जानकी को हो रहे हैं, उसके विपरीत रावण को वहीं अपशकुन हो रहे हैं।

हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना।।
सु.का./34/4।।

प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं।।
जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई।।
सु.का.34/6,7।।

तुलसीदास सगुन-असगुन विचार के प्रबल समर्थक हैं। यह एक विज्ञान है, जो अंतःकरण की भित्ति पर अंकित होता है। (जैसे तरंग उत्सर्जित करने वाला यंत्र और तरंग को पकड़ने वाला यंत्र) पढ़ा जाता है।

रावण और उसके सैनिक अपने बल के गर्व में सगुन-असगुन का विचार नहीं करते हैं।

अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।।
ल.का./ छं.77।।

तुलसीदासजी का मानना है शुभ सगुन उसे ही प्राप्त होते हैं, जो रामासक्त है, राम से विमुख होकर कभी नहीं है।

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम।।
ल.का./78।।

राम-रावण युद्ध के समय रामजी के बाण से रावण को मूर्छा आ जाती है। सारथी रथ लेकर भाग जाता है। उधर जानकी बहुत व्यथित दुखित हैं कि प्रभु दुष्ट का संहार क्यों नहीं कर रहे हैं, तब त्रिजटा सीताजी को समझाती है कि प्रभु रावण के हृदय में बाण इसलिये नहीं मार रहे हैं कि उसके हृदय में आप बसती हो और आपके हृदय में प्रभु व प्रभु के हृदय में सभी लोक। जब सीताजी के हृदय में विरह दुःख की पराकाष्ठा हो जाती है, तब उनके बायें अंग फड़कने लगते हैं, उनके मन को यह स्थिति धीरज बंधाती है।

सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा।।
ल.का./99/6।।

घोर युद्ध के उपरांत भगवान रावण का संहार कर देते हैं, जानकीजी को प्रभु के पास लाया जाता है। लंका से अयोध्या वापस आने को विमान पर सभी चढ़ते हैं, उस अवसर पर सगुन होने लगते हैं।

सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर।।
उ.का./श्लोक3/3,4।।

भरतजी की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा फड़कने लगती है।

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन विचार।।
उ.का./श्लोक3/7,8।।

प्रभु श्रीरामजी अयोध्या पहुँच जाते हैं। सभी लोग उनका स्वागत करते हैं। वे सभी से मिलते हैं। उस समय शुभ सगुन होते हैं। आकाश में नगाड़े बजते हैं और भगवान अपने महल की ओर गमन करते हैं।

होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान।।
उ.का./9ख।।

असगुन

रामचरितमानस में असगुन का प्रसंग भरत के साथ पहली बार व्यक्त होता है, जब वे ननिहाल में हैं और वहाँ अयोध्या से जो दूत उन्हें बुलाने भेजे गये हैं, वे उन्हें कहते हैं कि गुरु वशिष्ठजी ने उन्हें बुलाया हैं। यह सुनकर भरतजी हवा के वेग से वहाँ से चलते हैं। उन्हें पल मात्र भी वर्ष के समान लग रहा है। नगर में प्रवेश करते ही उन्हें असगुन होने लगते हैं।

कौवे बुरी तरह काँव-काँव कर रहे हैं, गधे और सियार बोल रहे हैं, प्रकृति शोभाहीन है, नगर भयानक लग रहा है। घोड़े, हाथी, नर-नारी सब दुखी लग रहे हैं। ऐसा लगता है लोग अपनी संपत्ति खो बैठे हैं, हाट बाजार देखे नहीं जाते हैं।

असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।।
अयो.कां/157/4।।

राक्षस संस्कृति अपसगुनों को नकारती है। पूरे रामचरितमानस में इसे देखा जाता है। पहले खर-दूषण फिर रावण यही करता है।

सूपनखा के नाक-कान जब लक्ष्मणजी काट देते हैं तब वह रोती हुई खर-दूषण के पास जाती है, वे दोनों सेना को लेकर सूपनखा को आगे करके चलते हैं। उस समय अनगिनत असगुन हो रहे हैं पर वे उसे नहीं मानते, क्योंकि मृत्यु के वशीभूत हैं।

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी।।
अर.का./17/7।।

जब रामचंद्रजी की सेना लंका की ओर प्रस्थान करती है, तब सीताजी को अनेक प्रकार के सगुन होने लगते हैं और रावण को उसी समय असगुन होते हैं।

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई।।
सु.का./34/7।।

रावण अपनी रंगशाला में नृत्य आदि देख रहा है। मंदोदरी के आभूषणों की बिजली जैसी चमक हो रही है। वाद्य यंत्र बज रहे हैं, रावण का वैभव और अभिमान झलक रहा है। उस समय रामजी एक बाण का संधान करते हैं, जिससे मंदोदरी के कर्णफूल, रावण का छत्र व मुकुट भूमि पर गिर जाते हैं।

इस चमत्कार को कोई समझ नहीं पाता है। रावण की सारी सभा भयभीत हो जाती है। न भूमि कांपी है, न कोई अस्त्र-शस्त्र दिखाई दे रहा है, यह बड़ा असगुन है।

सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी।।
ल.का./13ख/2।।

रावण की सेना के बड़े-बड़े वीर पुत्र मारे जाते हैं। परिवार की स्त्रियाँ बहुत दुखी हैं। तब रावण उन्हें जगत की नश्वरता का उपदेश करता है और सैनिकों को कहता है कि युद्ध से जो भागे वह अभी जाय। मैंने अपनी भुजाओं के बल पर बैर बढ़ाया है। शत्रु को उत्तर दे लूंगा। वायु की गति से चलने वाले रथ को सजाकर वह युद्ध के लिये चलता है। उस समय अनेक असगुन होते हैं। हाथों से हथियार गिरते हैं, रथ से योद्धा गिरते हैं, हाथी-घोड़े चिंघाड़ते हुए भाग जाते हैं, स्यार, गीध, कौए, गधे, कुत्ते, उल्लू भयानक शब्द कर रहे हैं।

असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनइ न भुजबल गर्ब बिसाला।।
ल.का./77/9।।

अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते।।
गोमाय गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने।।
ल.का./77 छं.।।

इस प्रकार रामचरितमानस में यह सगुन-अपसगुन रूपी मोती विश्ववन्द्य तुलसीदासजी ने जन मानस के लिये प्रस्तुत किया है।

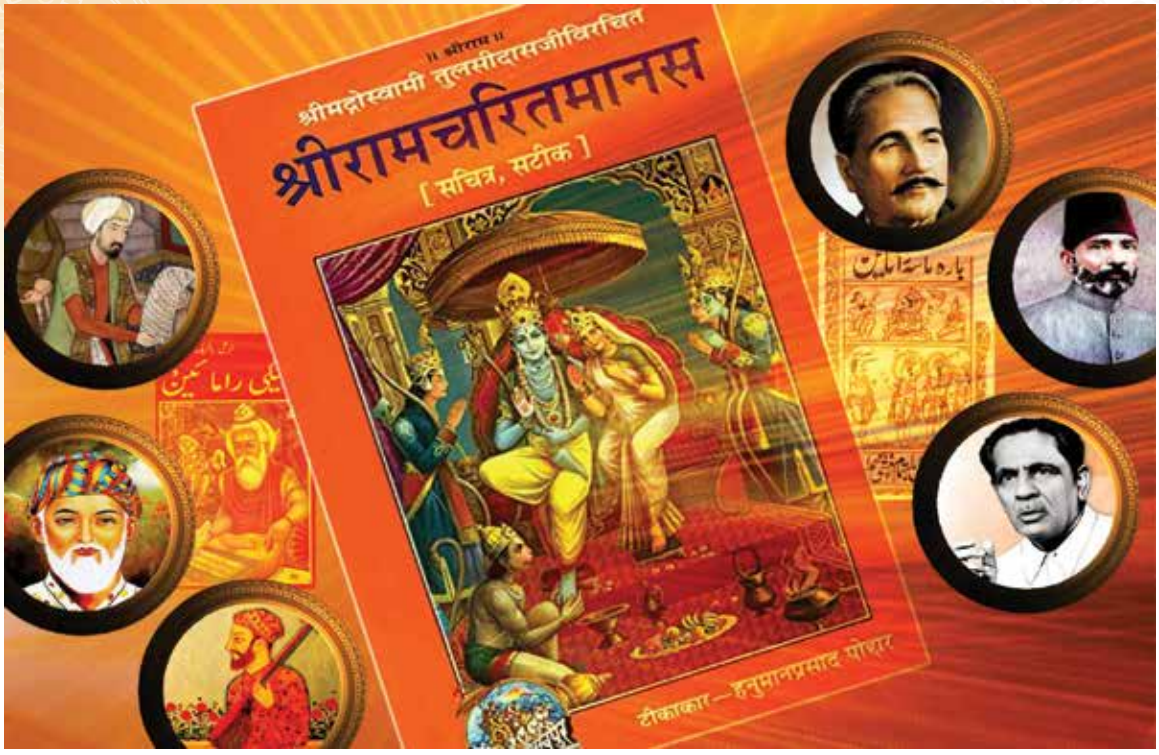

मुस्लिम तथा उर्दू-भाषी कवियों पर रामकाव्य का प्रभाव

मनोज दीक्षित
कुलपति, महाराजा गंगा सिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान

आज जब राम पर लिखने बैठा तो लगा कि क्या लिखूँगा; या क्या कुछ शेष भी है लिखने को। यह भी कि मेरी हैसियत ही क्या है कि मैं राम पर लिखूँ; मर्यादा पुरुषोत्तम पर; राजा राम पर या प्रभु श्रीराम पर। तुलसी के बाद लिखने को बचा भी क्या है? फिर बैठे-बैठे यह विचार आया कि क्यों न भारत की अन्य भाषाओं में राम वर्णन को देखा जाये। भाषा-ज्ञान एक बड़ी बाधा थी। फिर यह ध्यान में आया कि भारत का भक्ति-काल तो मुगलों के काल में था और अनेकों मुस्लिम साहित्यकारों ने राम-कृष्ण और शिव पर लिखा था। मैंने यह विचार बनाया कि यह देखूँ कि मुस्लिम और उर्दू भाषी लेखकों ने प्रभु पर क्या और कैसे लिखा। लखनऊ का होने के नाते चकबस्त के विषय में पढ़ा था ही और यही कारण बना प्रस्तुत लेख का।

रामकाव्य अपनी व्यापकता के लिए विश्व प्रसिद्ध है। **ईसाई फादर कामिल बुल्के** जहाँ राम कथा पर कलम उठाते हैं वहीं मुसलमान कवियों, साहित्यकारों ने भी राम के चरित्र से प्रभावित होकर कलम चलाई है। उन्होंने केवल काव्य ही नहीं रचे वरन स्वयं राममय हो गये। वे राम में रहीम को देखते हैं और रहीम में राम को। राम उनके लिए एक लाख चौबीस हजार नबियों में एक हैं। वे भी मानवीय कर्मों की पवित्रता को लेकर प्रकट हुए हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि इस्लाम के प्रति उनकी आस्था टूटी है, वरन् सच्चाई यह है कि नमाज और रोजों के प्रति भी उनकी आस्था दृढ़ है।

गोस्वामी तुलसीदास से 250 वर्ष पूर्व **अमीर खुसरो** (1253-1325) हुए। वे सूफी संत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। वह

भारतीय संस्कृति में गले तक डूबे थे। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'नुहसिफ़्र'** में लिखा है -

'तन, मन, धन का वह है मालिक
वासे निकसे जीको काम
वो हम सब का मालिक रामर

इस तरह मुस्लिम कवियत्री **खातून सिद्दिकी** लिखती हैं -

'रोम-रोम में रमा हुआ जो राम है
निर्गुण भी है सगुण भी है वह अभिराम है
ह्रास मानवता का देख वह प्रगटित हुआ
उस विभूति को श्रद्धा सहित प्रणाम हैर

रामकाव्य को श्रद्धा सहित नमन करने वालों की सूची लम्बी है और यह सिलसिला काफी पुराना है।

भक्ति काल में तुलसी के समकालीन **कवि रहीम** (1556-1627) हुए हैं। वे तुलसी के अभिन्न मित्र थे। राम के आदर्श को नमन करते हुए वे लिखते हैं -

रामचरित मानस विमल, संतन जीवन प्राण।
हिन्दुआन को वेद सम, यवनहि प्रकट कुरान।।

तुलसी के जीवन काल में ही राम के मर्यादास्वरूप से प्रभावित होकर 1534 में **'रामायण फैजी'** लिखी गयी, जो रामचरित मानस का पहला फारसी अनुवाद है। इसके बाद 1589 में बदायूनी रचित **'रामायण फारसी'** प्रसिद्ध हुई। इसके 34 वर्ष बाद 1623 में सादुल्लास मसीह की **'दास्ताने रामोसीता'** फारसी भाषी जनता में लोकप्रिय हुई। इसकी कई प्रतिलिपियाँ, जो हस्तलिखित हैं, आज ब्रिटिश म्यूजियम, इंडिया ऑफिस ग्रंथालय, एशिआटिक सोसायटी बंगाल और अलीगढ़ के ग्रंथालयों में सुरक्षित हैं। इसे नवल किशोर प्रेस लखनऊ ने 1899 में प्रकाशित किया था।

1860 में रामचरितमानस का उर्दू अनुवाद प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद इतना लोकप्रिय हुआ है कि 8 वर्ष में इसके सोलह संस्करण प्रकाशित हो गये। इसके बाद पुनः इस ग्रंथ का उर्दू अनुवाद **'रामायण ए फरहत नाज हर्फ ब हर्फ'** प्रकाशित हुआ। इसके भी सात संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

इस सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न धर्म निरपेक्ष गणराज्य के देश में मुगलकाल से ही राम के प्रति मुसलमानों के मन में गहरी श्रद्धा ने जन्म ले लिया था। कवि मुहम्मद **फैयाजुद्दीन अहमद** के इस उद्‌गार को कैसे भुलाया जा सकता है-

यह लुफ्ते खास है, यह फैजे आम तुलसी का
ये खासो आम का प्यारा है, राम तुलसी का
यह राम नाम से है, उनके प्यार की महिमा
कि सर पे रखती है, दुनिया कलाम तुलसी का

शायर **मौलाना जफर अली खाँ** ने अपनी शायरी में राम के सम्मान में बहुत कुछ लिखा है। वे मानते हैं कि दुनिया में यदि तहजीबे हुनर बाकी है तो वह राम, लक्ष्मण और सीता के कारण है-

नक्शे तहजीबे हुनर अब भी नुमायां है अगर
तो वह राम से है, लक्ष्मण से है, सीता से है।

मुसलमान कवियों ने रामकथा पर प्रचुर मात्रा में अपना साहित्यिक योगदान देकर उसकी मार्मिकता को प्रस्तुत किया है।

उत्तर प्रदेश में **तनवीर** प्रसिद्ध शायर हुए हैं। उन्होंने कई स्थानों पर राम के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है -

डूबती किश्ती को उसकी, हो गया साहिल नसीब
जिसने श्रद्धा से पुकारा, राम का शुभ नाम है।

> मुस्लिम साहित्यकारों ने वर्तमान परिवेश में राम की सार्थकता पर कई गजलें लिखी हैं। वे मानते हैं कि आज मासूम सिसकती जनता का मार्गदर्शन राम ही कर सकते हैं, क्योंकि जीवन पथ पर धनधोर अंधकार छाया हुआ है। ऐसे में राम चरित का आदर्श ही उस सूर्य की तरह है जो इस अंधकार को निगल सकता है।

कमाल अहमद लिखते हैं -

दानव हिंसक रूप बनाकर, घूम रहे हैं घर घर जाकर
मानवता को कँपा दिया है, रावण ने हुंकार सुनाकर
मासूम सिसकती जनता के फिर, रक्षक बनकर आ जाओ
जीवन पथ पर घोर तिमिर है, राम पुनः तुम आ जाओ।

इस निराशा के बीच भी राम के रूप में आशा की एक किरण अभी भी शेष है। जैसा कि प्रसिद्ध शायर **सागर निजामी** लिखते हैं।

हिंदियों के दिल में बाकी है, मुहब्बत राम की।
मिट नहीं सकती कयामत तक, हुकूमत राम की।।

उर्दू भाषा के प्रसिद्ध शायर **पंडित बृज नारायण 'चकबस्त'** (१८८२-१९२६) ने तो उर्दू में रामायण लिखनी शुरू की थी और प्रभु श्रीराम के वन गमन से पूर्व माँ कैकेयी के साथ उनके संवाद का जो अद्भुत चित्रण किया है, वह हृदय की गहराइयों तक छू लेता है।

चकबस्त की रामायण में वनवास जाने से पेश्तर रामचंद्रजी की माँ से बातचीत और माँ का जवाब कुछ इस प्रकार है।

रुख़सत हुआ वो बाप से लेकर खुदा का नाम।
यह गुफ़्तगू ज़रा ना हुई माँ के कारगर।।
नशतर थे राम के लिए यह हर्फ़-आरज़ू।

हर आँख को नसीब यह अश्के-वफ़ा कहाँ?
इन आँसुओं का मोल है, तो नक़्दे-जाँ होती है इन की कद्र फ़कत दिल के राज में
ऐसा गुहर न था कोई दशरथ के ताज में।

डॉ. मुहम्मद इक़बाल (1877-1938) की नज्म में राम का चरित्र कुछ यूँ उकेरा गया है-

इस देस में हुए हैं हज़ारों मलक-सरिश्त
मशहूर जिन के दम से है दुनिया में नामे-हिंद
है राम के वजूद पे हिन्दोस्ताँ को नाज़
अहले-नज़र समझते हैं इस को 'इमामे-हिंद'
एजाज़ इस चराग़े-हिदायत का है यही
रौशनतर-अज़-सहर है ज़माने में शामे-हिंद
तलवार का धनी था; शुजाअत में फ़र्द था!
पाकीज़गी में, जोशे-मोहब्बत में फ़र्द था!

वहीं, **ज़फ़र अली ख़ाँ** अपनी नज्म 'श्रीरामचन्द्र'(1873-1956) में लिखते हैं-

हो वो छोटों की इताअत, के बड़ों की शफक़्क़त;
ज़िंदा दोनों की हक़ीक़त तेरे पैग़ाम से है!
नक़्शे-तहज़ीबे-हुनूद अब भी नुमाया है अगर
तो वो सीता से है! लक्ष्मण से है! और राम से है!

साग़र निज़ामी (1905-1984) अपनी नज्म 'राम' में लिखते हैं-

सामने जिसके लरज़ उट्ठा शिकोहे-सरवरी
वो बहादुर जिसने बातिल को शिकस्ते-फ़ाश दी
हिंदियों के दिल में बाक़ी है मुहब्बत राम की
मिट नहीं सकती कयामत तक हुकूमत राम की
ज़िंदगी की रूह था; रूहानियत की शान था
वो मुजस्सम, रूप में इन्सान के, इरफ़ान था

मुंशी बनवारीलाल 'शोला' की नज्म "सीताहरण' का एक अंश देखिए-

बोले लखन सिया से, ये चरणों में धर के सर,
इक सहेल्सा शिकार था; माता नहीं ख़तर,
सबकी ख़बर जो लेते हैं, कौन उनकी ले ख़बर
दुःख उनको नाममात्र भी मिल सकता ही नहीं;
बे-हुक्म जिनके पत्ता तो हिल सकता ही नहीं।

पिछली शताब्दी के महानतम शायर **रघुपति सहाय 'फ़िराक़' गोरखपुरी** (1896-1982) की ग़ज़ल का एक अंश-

ज़िंदगी में ख़ुशी... न दूर, न पास!
वस्ल की रात और इतनी उदास!
सांस लेने में दर्द होता है,
ज़िंदगी की हवा कब आए रास !
हर लिया है किसी ने सीता को,
ज़िंदगी है के राम का बनवास!

राम पर **शम्सी मीनाई** (1919-1988) की नज्म देखिए-

मैं राम पर लिखूं, मेरी हिम्मत कहीं है कुछ!
तुलसी ने, वाल्मिकी ने, छोड़ा नहीं है कुछ! ...
वो राम जिसने ज़ुल्म की बुनियाद ढाई थी
जिसके भगत ने सोने की लंका जलाई थी
हर आदमी ये सोचे जो बा-होशो-हवास है
वो राम से क़रीब है, कि रावण के पास है!
लोगों को राम से जो मोहब्बत है आजकल
पूजा नहीं अमल (कर्म) ज़रूरत है आजकल ...

श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ। बालक में हो बुद्धि बल गुण का विकास।

लोकेश शास्त्री

युग प्रकाश

सतीश शर्मा

श्रीरामशलाका महत्त्व एवं प्रासंगिकता

शुभ-अशुभ फल-विचार में हमारा अध्यात्मिक अभिभावक है रामशलाका प्रश्नावली

डॉ. राहुल रंजन
सहायक प्राध्यापक, साँची, बौद्ध-भारतीय अध्ययन विश्वविद्यालय

भारतीय जीवन-शैली में पूर्वजों का संदेश, सनातन-पद्धति का परिवेश और हिन्दुत्व का समावेश, इन सबका बोध एक साथ बहुत ही सहजता से हो जाता है, जब हम अपने घर में श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भगवद्गीता को रखा हुआ पाते हैं।

श्रीराम मानव जाति के आदर्श हैं। मानवीय मूल्य, सामाजिक मर्यादा और नैतिक नियमों से आबद्ध इनका व्यक्तित्व हम सभी के लिए सदैव प्रेरणा का स्रोत रहा है। परमार्थिक ज्ञान होते हुए भी इन्होंने अपना जीवन और संदेश व्यवहार और यथार्थ के मध्य ही रखा है, तभी तो मानव जीवन के विभिन्न पड़ावों में हृदय का साधारणीकरण हो जाता है। श्रीराम और श्रीरामचरितमानस जन-मानस से जुड़ी वह अवधारणा है, जिसके बिना मानव-मूल्यों की परिकल्पना नहीं की जा सकती। जीवन-दर्शन की सनातन पद्धति एवं हिन्दुत्व की अगुवाई करने वाला श्रीरामचरितमानस वह ग्रन्थ है जिसमें श्रीराम आध्यात्म के पर्याय हैं, जो कि आस्था और श्रद्धा का विषय है, जहाँ तर्क की गति नहीं है। यही कारण है कि तुलसीदास की अन्य कोई याचना या उद्देश्य नहीं रहा, केवल श्रीराम ...!

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।
उ.का./130ख।।

जैसे कामी को स्त्री प्रिय लगती है और लोभी को जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथ जी! हे रामजी! आप निरंतर मुझे प्रिय लगिये।

वास्तविक भक्त का व्यक्तित्व और भक्ति का स्वरुप इसी सिद्धांत

को बताता है कि भक्त, भक्ति और आराध्य के बीच और कुछ नहीं। साथ ही श्रीराम मानस चित्त के लोकनायक हैं, राजा, रंक, फकीर सबका समावेश है, माता-पिता, गुरु-शिष्य, परिवार, समाज, मित्र, राष्ट्र, प्रकृति, जानवर, शत्रु, सेवक आदि सभी का कर्तव्य-अधिकार, आचार-व्यवहार, वचनबद्धता, मर्यादा श्रीरामचरितमानस में श्रीराम के व्यापक व्यक्तित्व के अन्तर्गत पठनीय है। इस प्रकार संभवतः ही कोई सांसारिक-विषय श्रीरामचरितमानस से बाहर रहा है। अतः श्रीरामचरितमानस मानव-जीवन-दर्शन का एक ऐसा अभिभावक-ग्रन्थ सिद्ध होता है जो जनमानस की समस्याओं को इंगित करते हुए, दर्शाते हुए उनका समाधान करता है।

पारमार्थिक सत्य हो या परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की अवधारणा, इस मर्त्यलोक में सांसारिक नियमों की अपनी प्रतिष्ठा है, प्रायः यथार्थवादी दृष्टि ही इस व्यवहार जगत को चलाती है और इसके चलने-चलाने में सहयोग, सहानुभूति, निर्देशन, अनुभव, आशीर्वाद, मार्गदर्शन, प्रेरणा, उद्देश्य आदि की आवश्यकता स्वाभाविक तो होती ही है, साथ ही साथ आवश्यक भी होती है। इस संसार में कोई भी व्यक्ति बिना कर्म किये नहीं रह सकता, मन्द बुद्धि भी कर्म करता ही है। फिर चाहे वह कर्म मन से, वचन से या शरीर से किया जा रहा हो। जब कर्म होगा तो उसके फल की चिंता भी होगी, चाहे वह अवचेतन मन या मन के किसी कोने में ही स्थान ले कर क्यूँ न बनी रहे, यही यथार्थ है। अपनी उस कर्म-फल की जिज्ञासा को शांत करने के लिए मानव यथासमय और यथासंभव प्रयास करता रहता है। शास्त्रों और धर्मग्रंथों में हम यह देखते हैं कि ईश्वर भी जब इस मर्त्यलोक में अवतरित हुए तो उनका व्यक्तित्व भी इस सिद्धांत से अलग नहीं रहा।

कर्मफल की दिशा और दशा पर विचार तो होता ही है, चाहे वह कर्म करणीय हो या अकरणीय हो। जीवन है तो कर्म होगा ही, तभी तो इसे 'कर्मप्रधान' कहा गया है। जब कर्म होगा तब तदनुरूप कमोबेश उसके फल की चिंता भी बनेगी और शुभ-अशुभ की जिज्ञासा भी। मानव जाति का कोई भी वर्ग इस मनोविज्ञान से अछूता नहीं है, चाहे वह आस्तिक हो या नास्तिक, अध्यापक हो या विद्यार्थी, व्यापारी हो या नौकरीपेशे वाला, राजनीतिक हो या प्रशासक आदि।

इस जीवन के विभिन्न पड़ावों पर अपना कार्य करते हुए कभी संशय की, तो कभी अनिच्छा की, कभी त्याग की, कभी परिवर्तन की, कभी उलझन की, तो कभी भ्रम आदि की द्वंद्वात्मक स्थितियाँ बनती रहती हैं। इस ऊहापोह में हम विचलित होते हैं और मार्ग खोजते हैं। इस क्रम में मित्र, गुरु, अभिभावक, अनुभवी-व्यक्ति, ज्योतिषी, धर्मगुरु आदि हमारे सामने होते हैं और हम अपने सामर्थ्य और धैर्य की परीक्षा देते हुए आगे बढ़ते हैं। कभी ठगे जाते हैं, कभी पथभ्रष्ट होते हैं, कभी किसी के चंगुल में फंस जाते हैं और फंसते ही चले जाते हैं, तो हमें कभी उदासीनता का अनुभव होता है, तो कभी सफलता मिलती भी है और कभी मृगतृष्णा की तरह मिलती हुई नजर आती है। ऐसे में ऐसी स्थितियों का लाभ उठाने की मंशा रखने वालों की दुकानें भी खूब चलती रहती हैं। यह सत्य है, हम सब इसका अनुभव करते ही हैं।

इस संसार में बड़े-बड़े धर्मगुरु, ज्योतिषी, कर्मकाण्डी आदि मौजूद हैं। कोई सहजता से हमें मिल जाता है, तो किसी से मिलने के लिए महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ती है, कोई कम पैसे में काम करता है, तो कोई अधिक पैसे लेता है, साधारण मनुष्य उलझता जाता है और इन सब चक्करों में अक्सर हम फंसते चले जाते हैं। हम यह अनुभव करते है कि यहाँ केवल समय व्यतीत होता है और आशा बनी रहती है। जब समय आता है तो चीजें अपने आप ठीक होती चली जाती हैं, तभी तो कहा गया है कि 'भाग्य से ज्यादा और समय से पहले किसी को कुछ नहीं मिलता।' गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा।।
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा।।
बा.का./51/7,8।।

जो कुछ राम ने रच रखा है, वही होगा। तर्क करके कौन शाखा (विस्तार) बढ़ावे। ऐसा कहकर शिवजी, भगवान श्रीहरि का नाम जपने लगे और सतीजी वहाँ गयीं जहाँ सुख के धाम प्रभु श्रीरामचंद्रजी थे।

लोकभाषा में लोग भी कहते रहते हैं **'सब समय का फेर है, सब करम का लेखा-जोखा है।'** कर्म की गति को न रोका जा सकता है, न ही टाला जा सकता है-सब कुछ ठीक होते हुए भी श्रीराम का वैवाहिक जीवन कष्टमय रहता है। सभा में बड़े-बड़े ज्योतिषियों और विद्वानों के रहते हुए भी महाभारत का युद्ध रोका न जा सका।

भारतीय दर्शन-परम्परा का कर्म-सिद्धान्त भी यही कहता है कि प्रारब्ध को भोगना ही पड़ता है। इस प्रसंग में तीन प्रकार के कर्म बताये गये हैं-

क्रियमाण कर्म/संचीयमान कर्म- वह कर्म जो इस जीवन में दैनन्दिन (वर्तमान समय में) किया जा रहा है एवं भविष्य में जिसका फल प्राप्त होगा।

संचित कर्म- दैनन्दिन या वर्तमान समय से पहले किया गया

कर्म, वह चाहे इस जन्म का हो या पूर्व जन्म का और जिसका कर्मविपाक (फलभोग) आरम्भ नहीं हुआ है।

प्रारब्ध कर्म- जिन कर्मों का या कर्माशयों का फलभोग आरम्भ हो चुका है, अथवा वर्तमान शरीर या जीवन में प्राणी जिन पूर्व कर्मों का फल भोग रहा है।

लेकिन, फिर भी यह संसार मोहात्मक है और हम सब माया से बंधे होते हैं। बहरहाल, चाहे दार्शनिक पद्धति हो या अध्यात्मिक, सब कुछ कर्म पर ही आश्रित है। भाग्य का निर्माण भी कर्म से ही होता है, कर्मश्रृंखला ही रचना की सामग्री है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कर्म किस रूप में किया जा रहा है, वह शुभ है या अशुभ, करने योग्य है या न करने योग्य, हमें इसका मार्गदर्शन चाहिए ...!

आज, प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता के इस समय में हमें अध्यात्मिक मार्गदर्शन चाहिए, चाहे हम जिस क्षेत्र में काम कर रहे हों। विशेष रूप से युवा पीढ़ी को जिन पर भविष्य की जिम्मेदारियाँ हैं। हमें ऐसा अभिभावक चाहिए जो निर्णय लेने में हमारी अध्यात्मिक सहायता करे। जनमानस एवं लोकहित में ऐसा सर्वसाधारण अध्यात्मिक अभिभावक अथवा उपाय है-**श्रीरामचरितमानस** की **'रामशलाका'**, जो पल भर में हमारी समस्याओं का समाधान कर देता है।

श्रीराम हमारी आस्था के विषय हैं, वे हमारे आराध्य हैं, इसलिए उन पर श्रद्धा और विश्वास रखते हुए नौ चौपाइयों में आबद्ध श्रीरामशलाका, किसी कार्य को करने के लिए, जीवन के किसी मोड़ पर उत्पन्न हुई असमंजस की स्थिति में समाधान के लिए, 'किंकर्तव्यविमूढ़' वाली कठिन अथवा उलझनभरी परिस्थिति से हमें बाहर निकालने के लिए, हमारा प्राथमिक और प्रमुख सलाहकार है। क्योंकि यह श्रद्धा का विषय है, इसलिए यहाँ तपस्या, तर्क और गणित अपना स्थान नहीं ले पाता।

अतः यह कोई ज्योतिषीय समाधान या उपाय नहीं देता अथवा इच्छापूर्ति का सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करता, अपितु हमारा और हमारे घर का अध्यात्मिक एवं पुस्तैनी अभिभावक है, जो हमारी आस्था और विश्वास होने के वास्ते स्वाभाविक रूप से हमारा पथ-प्रदर्शक है।

श्रीरामशलाका प्रश्नावली का स्वरुपः-

प्रस्तुत है गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित श्रीरामशलाका का यथावत् स्वरुप-

इस रामशलाका प्रश्नावली के द्वारा जिस किसी को जब कभी अपने अभीष्ट प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने की इच्छा हो तो सर्वप्रथम उस व्यक्ति को भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर श्रद्धा-विश्वासपूर्वक मन से अभीष्ट प्रश्न का चिंतन करते हुए प्रश्नावली के मनचाहे कोष्ठ में अंगुली या कोई शलाका रख देना चाहिये और उस कोष्ठक में जो अक्षर हो उसे अलग किसी कागज या स्लेट पर लिख लेना चाहिए। प्रश्नावली के कोष्ठक पर भी ऐसा निशान लगा देना चाहिए जिससे न तो प्रश्नावली गन्दी हो और न प्रश्नोत्तर प्राप्त होने तक वह कोष्ठक भूल जाए। अब जिस कोष्ठक का अक्षर लिख लिया गया है उससे आगे बढ़ना चाहिए तथा उसके नवें कोष्ठक में जो अक्षर पड़े उसे भी लिख लेना चाहिए। इस प्रकार प्रति नवें अक्षर को क्रम से लिखते जाना चाहिए और तब तक लिखते जाना चाहिए, जब तक उसी पहले कोष्ठक के अक्षर तक अँगुली अथवा शलाका न पहुँच जाए। पहले कोष्ठक का अक्षर जिस कोष्ठक के अक्षर से नवां पड़ेगा, वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते एक चौपाई पूरी हो जायेगी, जो प्रश्नकर्ता के अभीष्ट प्रश्न का उत्तर होगी। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी-किसी कोष्ठक में केवल 'आ' की मात्रा (ा) और किसी-किसी कोष्ठक में दो-दो अक्षर हैं। अतः गिनते समय न तो मात्रा वाले कोष्ठक को छोड़ना चाहिए और न ही दो अक्षरों वाले कोष्ठक को दो बार गिनना चाहिए। जहाँ मात्रा का कोष्ठक आवे, वहाँ पूर्वलिखित अक्षर के आगे मात्रा लिख लेना चाहिए और जहाँ दो अक्षरों वाला कोष्ठक आवे, वहाँ दोनों अक्षर एक साथ लिख लेना चाहिए।

उदाहरण के तौर पर इस रामशलाका प्रश्नावली से किसी प्रश्न के उत्तर में एक चौपाई निकाल दी जाती है। पाठक ध्यान से देखें। किसी ने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान और अपने प्रश्न का चिंतन करते हुए यदि प्रश्नावली के * इस चिह्न से संयुक्त 'म' वाले कोष्ठक में अँगुली या शलाका रखा और वह ऊपर बताये क्रम के अनुसार अक्षरों को गिन-गिनकर लिखता गया तो उत्तरस्वरूप यह चौपाई बन जाएगी-

होइहि सोइ जो राम* रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा।।

यह चौपाई बालकाण्ड के अन्तर्गत शिव और पार्वती संवाद में है। प्रश्नकर्ता को इस उत्तरस्वरूप चौपाई से यह आशय निकालना चाहिए कि कार्य होने में संदेह है, अतः उसे भगवान् पर छोड़ देना श्रेयस्कर है।

इस चौपाई के अतिरिक्त श्रीरामशलाका प्रश्नावली से आठ चौपाइयाँ और बनती हैं, उन सबका स्थान और फल सहित उल्लेख

सु	प्र	उ	वि	हो	मु	ग	व	सु	नु	वि	घ	थि	इ	द
र	रू	फ	सि	सि	रैं	बस	है	मं	ल	न	ल	य	न	अं
सुज	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	ई	ल	धा	बे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	की	हो	सं	रा	य
पु	सु	थ	सी	जे	इ	ग	म*	सं	क	रे	हो	स	स	नि
त	र°	त	र	स	इ	ह	व	ब	प	चि	स	य	स	तु
म	का	ा	र	र	मा	मि	मी	म्हा	ा	जा	हू	हीं	ा	जू
ता	रा	रे	री	हृ	का	फ	खा	जि	ई	र	रा	पू	द	ल
नि	को	मि	गो	न	म	ज	य	ने	मनि	क	ज	प	स	ल
हि	रा	म	स	रि	ग	द	न	ष	म	खि	जि	मनि	त	जं
सिं	मु	न	न	कौ	मि	ज	र	ग	धु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	ध	नि	म	ल	ा	न	ब	ती	न	रि	भ
ना	पु	व	अ	ढा	र	ल	का	ए	तु	र	न	नु	व	थ
सि	ह	सु	म्हा	रा	र	स	हिं	र	त	न	ष	ा	जा	ा
र	सा	ा	ला	थी	ा	री	ज	हू	हीं	षा	जू	ई	रा	रे

नीचे किया जाता है। कुल नौ चौपाइयाँ हैं-

1. सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी।।

बा.का./235/7

स्थान-यह चौपाई बालकण्ड में श्रीसीताजी के गौरी पूजन के प्रसंग में है। गौरीजी ने श्रीसीताजी को आशीर्वाद दिया है।

फल-प्रश्नकर्ता का प्रश्न उत्तम है, कार्य सिद्ध होगा।

2. प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा।

सु.का./4/1

स्थान-यह चौपाई सुन्दरकाण्ड में हनुमानजी के लंका में प्रवेश करने के समय की है।

फल-भगवान का स्मरण करके कार्य आरंभ करो, सफलता मिलेगी।

3. उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।।

बा.का./6/6

स्थान-यह चौपाई बालकाण्ड के आरंभ में सत्संग वर्णन के प्रसंग में है।

फल-इस कार्य में भलाई नहीं है। कार्य की सफलता में संदेह है।

4. बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं।।

बा.का./2/10

स्थान-यह चौपाई भी बालकाण्ड के आरंभ में ही सत्संग वर्णन के प्रसंग की है।

फल-खोटे मनुष्यों का संग छोड़ दो। कार्य पूर्ण होने में संदेह है।

5. मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू।।

बा.का./1/7

स्थान-यह चौपाई बालकाण्ड में संत समाजरूपी तीर्थ के वर्णन में है।

फल-प्रश्न उत्तम है। कार्य सिद्ध होगा।

6. गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई।।

सु.का./4/2

स्थान-यह चौपाई श्रीहनुमानजी के लंका में प्रवेश करने के समय की है।

फल-प्रश्न बहुत श्रेष्ठ है। कार्य सफल होगा।

7. बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहुँ न धीरा।।

बा.का./103/7

स्थान-यह चौपाई लंकाकाण्ड में रावण की मृत्यु के पश्चात मंदोदरी के विलाप के प्रसंग में है।

फल-कार्य पूर्ण होने में संदेह है।

8. सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। रामु लखनु सुनि भए सुखारे।।

बा.का./236/4

स्थान-यह चौपाई बालकाण्ड में पुष्पवाटिका से पुष्प लाने पर विश्वामित्रजी का आशीर्वाद है।

फल-प्रश्न बहुत उत्तम है। कार्य सिद्ध होगा।

इस प्रकार रामशलाका-प्रश्नावली से कुल नौ चौपाइयाँ बनती हैं, जिनमें सभी प्रकार के प्रश्नों के उत्तराशय सन्निहित हैं।

श्रीरामचरितमानस हमारी श्रद्धा, भक्ति और विश्वास का वह समन्वय है, जहाँ हम अपने अध्यात्मिक अभिभावक को खड़ा पाते हैं। हिन्दुत्व की यह परंपरा सनातन और स्वाभिमान है, पद्धति श्रेयस्कर है, जो मानवजाति को विरासत के रूप में प्राप्त है।

अतः श्रीराम में पूरी श्रद्धा रखते हुए हम यह अनुभव करते हैं कि श्रीरामशलाका हमारे सांसारिक जीवन और जीवन शैली में उठने वाले उन तमाम प्रश्नों का उत्तर देती है, जब उसमें उलझन, ऊहापोह, द्वंद्व, संशय, भ्रम, करना चाहिये अथवा नहीं करना चाहिये-जैसी स्थिति बनती है।

रामनाम से कुदरती इलाज और गाँधीजी

**अगर राम-नाम का मन्त्र मेरे दिल में पूरा-पूरा रम जाएगा,
तो मैं कभी बीमार होकर नहीं मरूंगा।**

प्राकृतिक उपचार में सबसे समर्थ इलाज रामनाम है। राम-नाम के सिवा जो कुछ भी किया जाता है, वह कुदरती इलाज के खिलाफ है।

डॉ. अरुण प्रकाश
वरिष्ठ पत्रकार एवं चिंतक

महात्मा गाँधीजी की पोती मनु बहन ने अपने डायरी में एक बहुत ही रोचक घटना का जिक्र किया है। 'नोआखली में आमकी नाम का एक गांव है। वहाँ महात्माजी के लिये बकरी का दूध कहीं न मिल सका। सब तरफ तलाश करते-करते जब मैं थक गयी, तब आखिर मैंने महात्माजी को यह बात बताई। महात्माजी कहने लगे तो उसमें क्या हुआ? नारियल का दूध बकरी के दूध की जगह अच्छी तरह काम दे सकता है और बकरी के घी के बजाय हम नारियल का ताजा तेल निकालकर खायेंगे। इसके बाद नारियल का दूध और तेल निकालने का तरीका महात्माजी ने मुझे बताया। मैंने निकालकर उन्हें दिया। महात्माजी बकरी का दूध हमेशा आठ औंस लेते थे, इसी तरह नारियल का दूध भी आठ औंस लिया। लेकिन हजम करने में बहुत भारी पड़ा और इससे उन्हें दस्त होने लगे, जिससे शाम तक महात्माजी को इतनी कमजोरी आ गई कि बाहर से झोपड़ी में आते-आते उन्हें चक्कर आ गये।'

वे आगे लिखती हैं कि 'जब-जब महात्माजी को चक्कर आने वाले होते, तब-तब उनके चिह्न पहले ही दिखाई देने लगते थे। उन्हें

बहुत ज्यादा जम्भाइयाँ आतीं, पसीना आता, और कभी-कभी वे आँखें भी फेर लेते थे। इस तरह उनके जम्भाइयाँ लेने से चक्कर आने की सूचना तो मुझे पहले ही मिल चुकी थी। मगर मैं सोच रही थी कि अब बिछौना चार ही फुट तो रहा, वहाँ तक तो महात्माजी पहुँच ही जायेंगे। लेकिन मेरा अन्दाज गलत निकला और मेरे सहारे चलते-चलते ही महात्माजी लड़खड़ाने लगे। मैंने सावधानी से उनका सिर संभाले रखा और निर्मल बाबू को जोर से पुकारा। वे आये और हम दोनों ने मिलकर उन्हें बिछौने पर सुला दिया। फिर मैंने सोचा- कहीं महात्माजी ज्यादा बीमार हो गये तो लोग मुझे मूर्ख कहेंगे। पास के देहात में ही सुशीला बहन हैं। उन्हे न बुलवा लूँ?'

मैंने चिट्ठी लिखी और भिजवाने के लिए निर्मल बाबू के हाथ में दी ही थी कि इतने में महात्माजी को होश आया और मुझे पुकारा 'मनुडी! (महात्माजी जब लाड़ से बुलाते थे, तो मनुडी कहते थे।)' मैं पास गई तो कहने लगे- 'तुमने निर्मल बाबू को आवाज लगाकर बुलाया, यह मुझे बिलकुल नहीं रुचा। तुम अभी बच्ची हो, इसलिए मैं तुम्हें माफ तो कर सकता हूँ।

परन्तु तुमसे मेरी उम्मीद तो यही है कि तुम और कुछ न करके सिर्फ सच्चे दिल से राम-नाम लेती रहो। मैं अपने मन में तो रामनाम ले ही रहा था। पर तुम भी निर्मल बाबू को बुलाने के बजाय रामनाम शुरू कर देती, तो मुझे बहुत अच्छा लगता। अब देखो यह बात सुशीला से न कहना और न उसे चिट्ठी लिखकर बुलाना। क्योंकि मेरा सच्चा डॉक्टर तो राम ही है। जहाँ तक उसे मुझसे काम लेना होगा, वहाँ तक मुझे जिलायेगा और नहीं तो उठा लेगा।'

मनु लिखती हैं कि सुशीला को न बुलाना, यह सुनते ही मैं काँप उठी और तुरंत निर्मल बाबू के हाथ से चिट्ठी छीन ली। चिट्ठी फट गई। महात्माजी ने पूछा 'क्यों, तुमने चिट्ठी लिख भी डाली थी न?' मैंने लाचारी से मंजूर किया। तब कहने लगे- 'आज तुम्हें और मुझे ईश्वर ने बचा लिया। यह चिट्ठी पढ़कर सुशीला अपना काम छोड़कर मेरे पास दौड़ी आती, वह मुझे बिलकुल पसन्द न आता। मुझे तुमसे और अपने आपसे चिढ़ होती।

आज मेरी कसौटी है, अगर राम-नाम का मन्त्र मेरे दिल में पूरा-पूरा रम जाएगा, तो मैं कभी बीमार होकर नहीं मरूँगा।

यह नियम सिर्फ मेरे लिए ही नहीं, सबके लिये है।

हर एक आदमी को अपनी भूल का नतीजा भोगना ही पड़ता है। मुझे जो दुःख भोगना पड़ा, वह मेरी किसी भूल का ही परिणाम होगा। फिर भी आखिरी दम तक राम-नाम का ही स्मरण होना चाहिये। वह भी तोते की तरह नहीं, बल्कि सच्चे दिल से लिया जाना चाहिये।

रामायण में एक कथा है कि हनुमानजी को जब सीताजी ने मोती की माला दी, तो उन्होंने उसे तोड़ डाला, क्योंकि उन्हें देखना था कि उसमें राम का नाम है या नहीं। यह बात सच है या नहीं, उसकी फिकर हम क्यों करें? हमें तो इतना ही सीखना है कि हनुमानजी जैसा पहाड़ी शरीर हम अपना न भी बना सके, फिर भी उनके जैसी आत्मा तो जरूर बना सकते हैं। इस उदाहरण को यदि आदमी चाहे तो सिद्ध कर सकता है। हो सकता है कि वह न भी सिद्ध कर पाये। लेकिन यदि सिद्ध करने की कोशिश ही करे, तो भी काफी है। गीता माता ने कहा ही है कि मनुष्य को कोशिश करनी चाहिये और फल ईश्वर के हाथ में छोड़ देना चाहिये। इसलिए तुम्हें, मुझे और सबको कोशिश तो करनी ही चाहिये। अब तुम समझी न कि मेरी, तुम्हारी या किसी की बीमारी के विषय में मेरी क्या धारणा है?'

मनु उसी दिन की एक और घटना का उल्लेख करती हैं कि उसी दिन एक बीमार बहन को पत्र लिखते हुए भी महात्माजी ने यही बात लिखी-

''संसार में अगर कोई अचूक दवाई है तो वह रामनाम है। इस नाम के रटने वालों को इसका अधिकार प्राप्त करने के लिए जिन-जिन नियमों का पालन करना चाहिये, उस सबका वे पालन करें। मगर यह रामबाण इलाज करने की हम सबमें योग्यता कहाँ है?' (मनु की डायरी से)

ऊपर की घटना से समझा जा सकता है कि गाँधीजी राम-नाम की शक्ति को कैसे देखते थे। उन्होंने हर व्याधि के समाधान के रूप में इस नाम की सत्ता को स्वीकारा था, चाहे वह शारीरिक व्याधि हो या आत्मिक या फिर सामाजिक।

गाँधीजी का मानना था कि आध्यात्मिक रोगों को मिटाने के लिए रामनाम के जप का इलाज बहुत पुराने जमाने से होता आया है।

लेकिन चूँकि बड़ी चीज (आध्यात्मिकता) में छोटी चीज (देह) भी समा जाती है, इसलिए मेरा यह दावा है कि हमारे शरीर की बीमारियों को दूर करने के लिए भी राम नाम का जप सब इलाजों का इलाज है। हालाँकि यह पोथी का बैगन नहीं, वह तो अनुभव की प्रसादी है। एक प्रसंग का जिक्र कर वे बताते हैं कि एक मशहूर वैद्य ने एक दिन उनसे कहा था 'मैंने अपनी सारी जिन्दगी मेरे पास आने वाले बीमारों को तरह-तरह की दवा की पुड़िया देने में बिताई है। लेकिन जब आपने (गाँधीजी ने) शरीर के रोगों को मिटाने के लिए रामनाम की दवा बताई, तब वैद्यजी को याद पड़ा कि **चरक** और **वाग्भट** जैसे पुराने धन्वन्तरियों के वचनों से भी उनके (गाँधीजी की) बात को पुष्टि मिलती है। **(हरिजनसेवक 7 अप्रैल 1946)**

गाँधी ने यह स्वीकार लिया था कि यदि आत्मा शुद्ध है, आध्यात्मिक शक्ति जागृत है तो दैहिक समस्यायें नहीं होंगी। अगर दैहिक समस्याएँ होंगी तो वह ध्येय को प्रभावित नहीं कर सकेंगी, क्योंकि देह के प्रति आसक्ति कम हो जाएगी। उन्होंने कहा कि 'हमें शरीर के बदले आत्मा के चिकित्सकों की जरूरत है। अस्पतालों और डॉक्टरों की वृद्धि कोई सच्ची सभ्यता की निशानी नहीं है। हम अपने शरीर से जितनी ही कम मोहब्बत करे, उतना ही हमारे और सारी दुनिया के लिए अच्छा है।' **(हिन्दी नवजीवन 6 अक्टूबर 1927)**

हालांकि, जान लेना जरुरी है कि बीमारियों से निजात देना वाला राम कौन है। गाँधीजी जोर देकर कहते हैं, 'उनके राम का नाम बीमारियों का रामबाण दवा है, और यह सभी तरह के विकारों का मोचक (बीमारियों की दवा) है। राम न तो ऐतिहासिक राम है और न ही उन लोगों का राम है, जो उसका इस्तेमाल जादू-टोने के लिए करते हैं। बल्कि वह ईश्वर ही है, जिसके नाम का जप करके भक्तों ने शुद्धि पाई है।' वह कहते हैं,

> "मेरा यह दावा है कि रामनाम सभी बीमारियों की, फिर तन की हो, मन की हो या रूहानी हो, एक ही अचूक दवा है। इसमें शक नहीं कि डॉक्टरों या वैद्यों से शरीर की बीमारियों का इलाज कराया जा सकता है। लेकिन राम-नाम तो आदमी को खुद ही अपना वैद्य या डॉक्टर बना देता है और उसे अपने को अन्दर से निरोग बनाने की संजीवनी हासिल करा देता है। जब कोई बीमारी इस हद तक पहुँच जाती है कि उसे मिटाना मुमकिन नहीं रहता, उस वक्त भी राम-नाम आदमी को शान्त और स्वस्थ भाव से सह लेने की ताकत देता है।' (हरिजनसेवक 2 जून 1946)

गाँधीजी राम को डाक्टर कहते थे और उनका नाम लेकर उन्हें मदद के लिए पुकारने को निरोगी होने का तरीका कहते थे। इस तरह से मिलने वाले इलाज को ही उन्होंने कुदरती इलाज कहा है, जिसका केंद्र राम नाम है और हद पंचमहाभूतों का उपयोग है। हालांकि राम का नाम लेने की कुछ शर्तें जरुर हैं। वे कहते हैं कि कुदरती इलाज में मध्यबिन्दु तो रामनाम ही है न? राम-नाम से आदमी सब रोगों से सुरक्षित बनता है। शर्त यह है कि नाम भीतर से निकलना चाहिये और रामनाम के भीतर से निकलने के लिये नियम-पालन जरूरी हो जाता है। उस हालत में मनुष्य रोग-रहित होता है। जिसमें न कष्ट की बात है, न खर्च की। **(हरिजनसेवक 2 जून 1946)**

कुदरती इलाज का गाँधीजी ने मतलब कुदरत के नियमों को मानकर आरोग्य प्राप्त करने से लगाया था, हरिजनसेवक की एक रिपोर्ट के अनुसार महात्मा गाँधीजी कुदरती इलाज के हिमायती अपने जवानी के दिनों से ही थे, जब उन्होंने लुइस कुने की **'न्यू सायन्स ऑफ हीलिंग'** और **एडॉल्फ जुस्ट की 'रिटर्न टु नेचर'** नाम की किताबे पढ़ी थीं, हालांकि वह यह मानते थे कि **'रिटर्न टु नेचर'** का पूरा-पूरा मतलब वे नहीं समझ सके थे, और इसके लिए अपनी इच्छा की कमी को नहीं, बल्कि ज्ञान की कमी को जिम्मेदार मानते थे। जीवन के अंतिम वर्षों में वे कुदरती इलाज का ऐसा तरीका खोजने की कोशिश कर रहे थे, जो हिन्दुस्तान के करोड़ों गरीबों को फायदा पहुँचा सके। वे ऐसे इलाज के प्रचार की कोशिश करते रहे, जो मिट्टी, पानी, धूप, हवा और आकाश के तत्त्व को इस्तेमाल करके किया जा सके। उन्हें यह समझ आया कि इस इलाज से मनुष्य को कुदरतन यह बात समझ में आ जाती है कि दिल से भगवान का नाम लेना ही सारी बीमारियों का सबसे बड़ा इलाज है।

> **जिस भगवान को हिन्दुस्तान के कुछ करोड़ मनुष्य राम के नाम से जानते हैं और दूसरे कुछ करोड़ अल्लाह के नाम से पहचानते हैं। दिल से भगवान का नाम लेने वाले मनुष्य का यह फर्ज हो जाता है कि वह कुदरत के उन नियमों को समझे और उनका पालन करे, जो भगवान ने मनुष्य के लिये बना दिये हैं।**

यह दलील उन्हें इस नतीजे पर ले आई कि बीमारी का इलाज करने से उसे रोकना बेहतर है। इसलिए वे लाजिमी तौर पर लोगों को सफाई के नियम समझाने लगे यानी लोगों को मन, शरीर और

उसके आस-पास के वातावरण की सफाई का उपदेश देने लगे। शरीर जिन तत्वों से मिलकर बना है, उसका इलाज भी उन्हीं तत्वों से हो सकता है। शरीर में ऐसी क्षमताएँ भी होती हैं, जो जीवन-प्रवाह में बाधा बनने वाले तत्वों से लड़ सकें, बावजूद इसके कई बार शरीर की प्रतिरक्षा रोगों से हार जाती है।

यदि शरीर के प्रतिरक्षा तत्व चैतन्य रहें तो रोग उनके आगे परास्त होगा और तत्वों में चेतना राम-नाम स्पर्श से आएगी। यह भी शास्वत सत्य है कि शरीर को अमर नहीं किया जा सकता, लेकिन अमर आत्मा के निवास स्थान शरीर को शुद्ध रखा जाना चाहिए। गाँधीजी डाक्टरों व वैद्यों के पीछे घूमने के बजाय कुदरती इलाज के पक्षधर थे, सच्चा कुदरती इलाज रामनाम को मानते थे।

उनका कहना था कि मनुष्य के लिए कुदरत ने उसी को योग्य माना है। कोई भी व्याधि हो, अगर मनुष्य हृदय से रामनाम ले, तो उसकी व्याधि नष्ट होनी चाहिये। रामनाम यानी ईश्वर, खुदा, अल्लाह, गॉड। ईश्वर के अनेक नाम हैं, उनमें से जो जिसे ठीक लगे, उसे वह चुन ले, लेकिन उसमें हार्दिक श्रद्धा हो और श्रद्धा के साथ प्रयत्न हो। वह कैसे? जिस चीज का मनुष्य पुतला बना है, उसी से वह इलाज ढूंढ़े। पुतला पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु का बना है। इन पाँच तत्त्वों से जो मिल सके, सो ले। उसके साथ रामनाम तो अनिवार्य रूप से चलता ही रहे। नतीजा यह आता है कि इतना होते हुए भी शरीर का नाश हो, तो होने दे और हर्षपूर्वक शरीर छोड़ दे। दुनिया में ऐसा कोई इलाज नहीं निकला है, जिससे शरीर अमर बन सके। अमर तो आत्मा ही है। उसे कोई मार नहीं सकता। उसके लिये शुद्ध शरीर पैदा करने का प्रयत्न तो सब करे। उसी प्रयत्न में कुदरती इलाज अपने आप मर्यादित हो जाता है और इससे आदमी बड़े-बड़े अस्पतालों और योग्य डॉक्टरों वगैरा की व्यवस्था करने से बच जाता है। दुनिया के असंख्य लोग दूसरा कुछ कर भी नहीं सकते। **(हरिजनसेवक 3 मार्च 1947)**

कुदरती इलाज की पैरवी गाँधीजी ने इसलिए शुरू की क्योंकि वे जानते थे कि आधुनिक विज्ञान का इलाज सर्वसुलभ व प्रभावी नहीं है, वहीं वह जिस आर्थिक आधार से पोषित होता है, उसमें सम्पूर्ण भारत की पहुँच संभव नहीं है। वे कुदरती इलाज की सर्व सुलभता से काफी प्रभावित थे और यही वजह है कि वह बार-बार इसका समर्थन करते थे, क्योंकि राम-नाम तो कोई भी ले सकता है और उसके लाभ सभी के लिए बिना किसी भेदभाव के उपलब्ध हैं। गाँधीजी कुदरती इलाज में राम-नाम को आवश्यक तत्त्व मानते थे। उन्होंने यह स्पष्ट करने का कई बार प्रयास किया कि राम-नाम इलाज का तत्व कैसे है? क्योंकि अधिकतर लोगों को तो यह सुझाव जादू-टोना जैसे लगता था।

वे कहते थे कि प्राकृतिक उपचार में सबसे समर्थ इलाज रामनाम है। इसमें अचम्भे की कोई बात नहीं। वे कुदरती इलाज को राम आधारित ही मानते थे और कहते थे कि राम-नाम के सिवा जो कुछ भी किया जाता है, वह कुदरती इलाज के खिलाफ है।

महात्माजी सिर्फ प्राकृतिक उपचार की सुलभता से ही प्रभावित नहीं थे बल्कि आश्वस्त थे कि इसका ध्येय लोक मंगल है और इसका बाजारीकरण नहीं हो सकता, जैसा चिकित्सा क्षेत्र में हुआ है। इसलिए वह कहते थे कि 'प्राकृतिक उपचारक अपने बीमार से यह नहीं कहेगा कि 'तुम मुझे बुलाओ तो मैं तुम्हारी सारी बीमारी दूर कर दूँ।' वह तो बीमार को सिर्फ यह बतायेगा कि प्राणीमात्र में रहने वाला और सब बीमारियों को मिटाने वाला तत्त्व कौन-सा है। किस तरह उस तत्त्व को जाग्रत किया जा सकता है और कैसे उसको अपने जीवन की प्रेरक शक्ति बनाकर उसकी मदद से अपनी बीमारियों को दूर किया जा सकता है। अगर हिन्दुस्तान इस तत्त्व की ताकत को समझ जाय, तो हम आजाद तो हो ही जायें, लेकिन उसके अलावा आज हमारा जो देश बीमारियों और कमजोर तबीयत वालों का घर बन बैठा है, वह तन्दुरुस्त और ताकतवर शरीर वाले लोगों का देश बन जाय। रामनाम की शक्ति की अपनी कुछ मर्यादा है और उसके कारगर होने के लिये कुछ शर्तों का पूरा होना जरूरी है। राम-नाम कोई जंतर-मंतर या जादू-टोना नहीं। जो लोग खा-खा कर खूब मोटे हो गये हैं, और जो अपने मुटापे की और उसके साथ बढ़ने वाली आफत से बच जाने के बाद फिर तरह-तरह के पकवानों का मजा चखने के लिये इलाज की तलाश में रहते हैं, राम-नाम उनके लिए किसी काम का नहीं। रामनाम का उपयोग तो अच्छे काम के लिए होता है। बुरे काम के लिए हो सकता होता, तो चोर और डाकू सबसे बड़े भक्त बन जाते। राम-नाम उनके लिए है, जो दिल के साफ हैं और जो दिल की सफाई करके हमेशा साफ-पाक रहना चाहते हैं। भोग-विलास की शक्ति या सुविधा पाने के लिये रामनाम कभी साधन नहीं बन सकता। देह का इलाज प्रार्थना नहीं, उपवास है। उपवास का काम पूरा होने पर ही प्रार्थना का काम शुरू होता है, जो कि यह सच है कि प्रार्थना से उपवास का काम आसान और हलका बन जाता है। इसी तरह एक तरफ से आप अपने शरीर में दवा की बोतलें उड़ेला करें और दूसरी तरफ मुँह से रामनाम लिया करें, तो वह बेमतलब मजाक

ही होगा। जो डॉक्टर बीमार की बुराइयों को बनाये रखने में या उन्हें सहेजने में अपनी होशियारी का उपयोग करता है, वह खुद गिरता है और अपने बीमार को भी नीचे गिराता है। अपने शरीर को अपने सृजनहार की पूजा के लिये मिला हुआ एक साधन समझने के बदले उसी की पूजा करने और उसको किसी भी तरह बनाये रखने के लिए पानी की तरह पैसा बहाने से बढ़कर बुरी गत और क्या हो सकती है? जिसके खिलाफ राम-नाम रोग को मिटाने के साथ ही साथ आदमी को भी शुद्ध बनाता है और जिस तरह उसको ऊँचा उठाता है। यही राम-नाम का उपयोग है और यही उसकी मर्यादा।' **(हरिजनसेवक 7 अप्रैल 1946)**

इस सम्बन्ध में आगे उन्होंने कहा कि

मेरा कुदरती इलाज तो सिर्फ गांव वालों के लिए और गांवों के लिए ही है। इसलिए उसमें खुर्दबीन, एक्सरे वगैरा की कोई जगह नहीं और न कुदरती इलाज में कुनैन, अमिटिन, पेनिसिलिन जैसी दवाइयों की ही गुंजाइश है।

उसमें अपनी सफाई, घर की सफाई, गांव की सफाई और तन्दुरुस्ती की हिफाजत का पहला स्थान है और इतना करना काफी है। इसकी तह में खयाल यह है कि अगर हर आदमी इस कला में निष्णात हो सके, तो कोई बीमारी ही न हो और बीमारी आ जाय तो उसे मिटाने के लिए कुदरत के सभी कानूनों पर अमल करने के साथ साथ रामनाम ही असल इलाज है। यह इलाज सार्वजनिक या आम नहीं हो सकता। जब तक खुद इलाज करने वाले रामनाम की सिद्धि न आ जाय, तब तक रामनाम-रूपी इलाज को एकदम आम नहीं बनाया जा सकता। लेकिन पंचमहाभूतों में से यानी पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और हवा में से जितनी शक्ति ली जा सके, उतनी लेकर रोग मिटाने की यह एक कोशिश है, और मेरे खयाल में कुदरती इलाज यहीं खत्म हो जाता है। जरूरत मालूम होने पर जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल किया जा सकता है और पथ्य-परहेज तो कुदरती इलाज का जरूरी हिस्सा है ही। **(हरिजनसेवक 11 अगस्त 1946)**

कुदरती इलाज का भगवान से क्या सम्बन्ध हो सकता है? इस पर जोर देने के पीछे गाँधी का मकसद यह था कि जब लोग ईश्वर को मानेंगे तो उसके बनाये नियमों को भी मानेंगे।

यहीं से लोगों की सही मार्ग मिल सकेगा। क्योंकि कुदरत का पहला नियम तो आंतरिक व बाहरी स्वच्छता ही है, जिससे तमाम व्याधियाँ अपने-आप गायब हो जाती हैं। इस संबंध में गाँधीजी कहते हैं, 'राम-नाम कुदरत का सुनहला कानून है। जो इस पर अमल करता है, वह बीमारी से बचा रहता है। जो अमल नहीं करता, वह बीमारियों से घिरा रहता है। तन्दुरुस्त रहने का जो कानून है, वही बीमार होने के बाद बीमारी से छुटकारा पाने का भी कानून है। सवाल यह होता है कि जो रामनाम जपता है और नेक चलनी से रहता है, उसको बीमारी हो ही क्यों? सवाल ठीक ही है। आदमी स्वभाव से ही अपूर्ण है। समझदार आदमी पूर्ण बनने की कोशिश करता है। लेकिन पूर्ण वह कभी बन नहीं पाता, इसलिए अनजाने में गलतियाँ करता है। सदाचार में ईश्वर के बनाये सभी कानून समा जाते हैं, लेकिन उसके सब कानूनों को जानने वाला सम्पूर्ण पुरुष हमारे पास नहीं है।

मसलन, एक कानून यह है कि हद से ज्यादा काम न किया जाय। लेकिन कौन बतावे कि यह हद कहाँ खत्म होती है। यह चीज तो बीमार पड़ने पर ही मालूम होती है। मिताहार और युक्ताहार यानी कम और जरूरत के मुताबिक खाना कुदरत का दूसरा कानून है।

कौन बतावे कि इसकी हद कब लांघी जाती है। मैं ये कैसे जानूँ कि मेरे लिये युक्ताहार क्या है? ऐसी बातें तो सोची जा सकती हैं। इस सबका निचोड़ यही है कि हर आदमी को अपना डॉक्टर खुद बनकर अपने ऊपर लागू होने वाले कानून का पता लगा लेना चाहिये।

जो इसका पता लगा सकता है और उस पर अमल कर सकता है, वह 125 बरस जीयेगा ही।

डॉक्टर दोस्तों का यह दावा है कि वे पूरी तरह कुदरती इलाज करने वाले हैं, क्योंकि दवाएँ जितनी भी हैं, सब कुदरत ने ही बनाई है। डॉक्टर तो उनकी नई मिलावटें भर करते हैं। मैं तो यही कहूँगा कि राम-नाम के सिवा जो कुछ भी किया जाता है, वह कुदरती इलाज के खिलाफ है। इस मध्यबिन्दु से हम जितने दूर हटते हैं, उतने ही असल चीज से दूर जा पड़ते हैं। जिस तरह सोचते हो मैं यह कहूँगा कि पाँच महाभूतों का असल उपयोग कुदरती इलाज की हद है। इससे आगे बढ़ने वाला वैद्य अपने इर्द-गिर्द जो दवाएँ उगती हों या उगाई जा सकें, उसका इस्तेमाल सिर्फ लोगों के भले के लिए करे, पैसे कमाने के लिए नहीं, तो वह भी कुदरती इलाज

करने वाला कहला सकता है।' **(हरिजनसेवक 19 मई 1946)**

कुदरती इलाज के नुस्खे का अभ्यास करने वालों के कई प्रश्न भी थे। कईयों को इस अभ्यास से असफलता हाथ लगी थी, वहीं इन नियमों की प्रमाणिकता व वैज्ञानिकता पर भी सवाल उठे तो कुदरती नियमों को लेकर उठने वाले सवालों का जवाब देते हुए गाँधी कहते हैं कि 'कुदरत के नियम को गलत कहने के बजाय यह कहना ज्यादा युक्तिसंगत मालूम होता है कि उन्होंने भी कहीं-न-कहीं भूल की होगी। नियम कोई मेरा बनाया हुआ नहीं है, वह तो कुदरत का नियम है कि अनुभवी लोगों ने इसे कहा है और इसी बात को मानकर मैं चलने की कोशिश करता हूँ। आखिरकार मनुष्य अपूर्ण प्राणी है और कोई अपूर्ण मनुष्य इसे कैसे जान सकता है? डॉक्टर इसे नहीं मानते। मानते भी हैं तो उसका दूसरा अर्थ करते हैं। इसका मुझ पर कोई असर नहीं होता। नियम की ऐसी ताईद करने पर भी मेरे कहने का यह मतलब नहीं होता, न निकाला जाना चाहिये कि इससे ऊपर के किसी व्यक्ति का महत्त्व कम होता है।' **(हरिजनसेवक 4 अगस्त 1946)**

उरुलीकंचन (वह गांव जहां गाँधीजी ने प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र शुरू किया) में पहले ही दिन गांव के बाहर सामूहिक प्रार्थना की गयी और दूसरी जगहों की तरह यहाँ भी सबके साथ रामधुन गाने का रिवाज शुरू किया गया। प्रार्थना में जो भजन गाया गया था, उसका आधार लेकर गाँधीजी ने वहाँ आये हुए गांव के लोगों के सामने शरीर की बीमारियों को मिटाने वाली बढ़िया से बढ़िया कुदरती दवा के रूप में रामनाम पेश किया। 'अभी हमने जो भजन गाया, उसमें भक्त कहता है कि **'हरि! तुम हरो जन की पीर।'** यानी हे भगवान तू अपने भक्तों का दुःख दूर कर। जिसमें इस दुख की बात कही गई है, वह सब तरह के दुखों से सम्बन्ध रखती है। मन या तन की किसी खास बीमारी की चर्चा इसमें नहीं है।' गाँधीजी ने लोगों से कहा कि 'रामनाम के प्रभाव का आधार इस बात पर है कि आपकी उसमें सजीव श्रद्धा है या नहीं। इस दुनिया में बिरला ही कोई ऐसा होगा, जो शरीर और मन की सभी बीमारियों से बिल्कुल बरी हो। तन और मन की कुछ बीमारियाँ तो ऐसी हैं, जिनका इस दुनिया में कोई इलाज ही नहीं। जैसे, अगर शरीर का कोई अंग खंडित हो गया हो, तो उसको फिर से पैदा कर देने का चमत्कार रामनाम में कहाँ से आये लेकिन उसमें इससे भी बड़ा चमत्कार कर दिखाने की ताकत है। वह अंग-भंग या बीमारियों के बावजूद सारी जिन्दगी अटूट शान्ति के साथ बिताने की शक्ति देता है और उम्र पूरी होने पर जिस जगह सब को जाना पड़ता है, वहाँ जाने की बारी आने पर मौत के दुख को और चिंता की विजय के डर को मिटा देता है, यह क्या कोई छोटा-मोटा चमत्कार है? जब आगे-पीछे मौत आने ही वाली है, तो वह कब आयेगी, जिस फिकर में हम पहले से ही क्यों मरे?' **(हरिजनसेवक 7 अप्रैल 1946)**

महात्माजी के तीन विचार 'कोई भी व्याधि हो, अगर मनुष्य हृदय से रामनाम ले, तो व्याधि नष्ट होनी चाहिये। जिस चीज का मनुष्य पुतला बना है, उसी से हम इलाज ढूढें। पुतला पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु का बना है। इन पाँच तत्वों से जो मिल सके, सो ले। मेरा दावा है कि शारीरिक रोगों को दूर करने के लिये भी रामनाम सबसे बढ़िया इलाज है।'

सामान्य बुद्धि कई शंकाएँ पैदा करते थे। गाँधी योरोपीय परिवेश में शिक्षित व्यक्ति थे और यह तीनों विचार उनकी शिक्षा को आधार बनाकर गढ़े गए व्यक्तित्व के विपरीत थे और इस तरह तमाम प्रश्न उनके पास लिखित व मौखिक रूप में आते थे। एक अध्यापक ने उन्हें लम्बा चौड़ा पत्र लिखा और इन विचारों से असहमति जाहिर की व इन्हें अव्यवहारिक बताया।

गाँधीजी ने अपने जवाब में लिखा, 'रामनाम में फेथ-हीलिंग (श्रद्धा से इलाज करने) और क्रिश्चियन साइंस गुण होते हुए भी वह उनसे बिलकुल अलग है। रामनाम लेना तो उस सच्चाई का एक नमूना मात्र है, जिसके लिये वह लिया जाता है। जिस वक्त कोई आदमी बुद्धिपूर्वक अपने अन्दर ईश्वर का दर्शन करता है, उसी वक्त वह अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक सब व्याधियों से छूट जाता है। यह कहकर कि हमें प्रत्यक्ष जीवन में ऐसा कोई आदमी नहीं मिलता, हम इस बयान की सच्चाई को झूठ नहीं ठहरा सकते। हाँ, जिन लोगों को ईश्वर पर विश्वास नहीं है, उनके लिए बेशक मेरी दलील बेकार है।

क्रिश्चियन साइन्टिस्ट, फेथ-हीलर और साइको-थेरेपिस्ट अगर चाहें, तो राम-नाम में छिपी सच्चाई की थोड़ी गवाही दे सकते हैं। मैं दलील देकर पाठकों को ज्यादा नहीं बता सकता। जिसने कभी चीनी खायी नहीं, उसे कैसे समझायें कि चीनी मीठी होती है। उसे तो चीनी चखने के लिये ही कह सकते हैं।' (हरिजनसेवक 28 अप्रैल 1946)

एक बार चर्चा के दौरान एक ब्रिटिश विद्वान ने क्रिश्चियन सायंस अर्थात् ईसाई विज्ञान का जिक्र किया और उस पर गाँधीजी की राय मांगी। गाँधीजी ने कहा-

''मनुष्य का ईश्वर से अटूट सम्बन्ध है। इसलिए मनुष्य जितने ही अर्थों में अपने इस सम्बन्ध को पहचानेगा, उतने ही अर्थों में वह पाप और रोग से मुक्त हो जायगा। श्रद्धा से मनुष्य जो अच्छा हो जाता है, उसका रहस्य यही है, क्योंकि ईश्वर सत्य, स्वास्थ्य और प्रेम है।'

गाँधीजीने आगे कहा- 'और वह तो वैद्य भी है। मेरा ईसाई-विज्ञान के साथ कोई झगड़ा नहीं है। मैंने तो बरसों पहले जोहानिसबर्ग में कहा था कि मैं उस सिद्धान्त को पूरी तरह मान सकता हूँ पर बहुत से ईसाई-वैज्ञानिकों में मेरी कोई श्रद्धा नहीं है। बौद्धिक विश्वास होना एक बात है, पर किसी चीज को हृदय से श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर लेना दूसरी बात है। मैं इस विधान को मंजूर करता हूँ कि रोगमात्र पाप का परिणाम है। आदमी को अगर खांसी भी आती है, तो वह पाप का ही फल है। मेरी अपनी इस खून के दबाव वाली बीमारी का कारण भी अत्यधिक काम और चिन्ता का बोझ ही तो है। पर सवाल यह है कि मैंने क्यों इतना काम और चिन्ता की? अत्यधिक काम और जल्दबाजी भी तो पाप ही है। मैं यह भी खूब जानता हूँ कि डॉक्टरों से बचना भी मेरे लिए पूरी तरह सम्भव था। पर ईसाई-विज्ञान ने शारीरिक स्वास्थ्य और रोग वाले प्रश्न को जो इतना अधिक महत्त्व दे रखा है कि वह मेरी समझ में नहीं आता।'

ब्रिटिश विद्वान ने कहा- 'आदमी अगर इतना मान ले कि रोगमात्र पाप का ही फल है, तो काफी है। गीता में भी तो कहा है न कि पंचेंद्रियों के विषयों का मनुष्य को त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि वे माया हैं। ईश्वर जीवन, प्रेम और स्वास्थ्य है।'

गाँधीजी ने कहा, 'मैंने इसे कुछ दूसरे शब्दों में रखा है। ईश्वर सत्य है। क्योंकि हमारे धर्मग्रंथों में लिखा है कि सिवा सत्य के कुछ है ही नहीं। इसका अर्थ हुआ कि ईश्वर जीवन है और इसलिए मैं कहता हूँ कि सत्य और प्रेम एक ही सिक्के की दो बाजुयें हैं और प्रेम वह जरिया है, जिसके द्वारा हम सत्य को प्राप्त कर सकते हैं, जो कि हमारा ध्येय है।' **(हरिजनसेवक, 29 जनवरी 1938)**

यह सही है कि गाँधीजी ने कुदरती इलाज की अवधारणा को पश्चिमी लेखकों की किताबों से ही समझा था और कुने की 'न्यू सायन्स ऑफ हीलिंग' और जुस्ट की 'रिटर्न टु नेचर' पढ़कर के उनका इस विधा में विश्वास जगा था। लेकिन जानते थे कि यह आरम्भ के लिए ठीक है, अंतिम सत्य नहीं है। उन किताबों को पढ़ने के करीब चालीस साल बाद जब वे भारत की चेतना व इसके अभ्यासित ज्ञान से परिचित हो चुके थे, तो उन्होंने निष्कर्ष प्राप्त किया कि नजर पश्चिम की ओर नहीं अंदर की रखी जानी चाहिए और ऐसा करने में तथा इस ज्ञान को गांव तक पहुँचाने में पश्चिम के गवाही की कोई आवश्यकता नहीं है।

उनका कहना था 'हमें अपना यह वहम दूर करना होगा कि जो कुछ करना है, उसके लिए पश्चिम की तरफ नजर दौड़ाने पर ही आगे बढ़ा जा सकता है। अगर कुदरती इलाज सीखने के लिये पश्चिम जाना पड़े, तो मैं नहीं मानता कि वह इलाज हिन्दुस्तान के काम का होगा। यह इलाज, तो सबके घर में मौजूद है। हमेशा कुदरती इलाज करने वाले की राय लेने की जरूरत भी न रहनी चाहिये। वह इतनी आसान चीज है कि हर एक आदमी को उसे सीख लेना चाहिये।

अगर रामनाम लेना सीखने के लिए विलायत जाना जरूरी हो, तब तो हम कहीं के भी न रहे।

राम-नाम को मैंने अपनी कल्पना के कुदरती इलाज की बुनियाद माना है। इसी तरह यह सहज ही समझ में आने लायक है कि पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु के इलाज के लिए समुद्र पार जाने की जरूरत हो ही नहीं सकती। दूसरा जो कुछ सीखना है वह यहीं है, गांवों में मौजूद है। देहाती दवाएँ, जड़ी-बूटियाँ, दूसरे देशों में नहीं मिलेगी। वे तो आयुर्वेद में ही है। अगर आयुर्वेद वाले धूर्त हों, तो पश्चिम जाकर आने से वे कुछ भले नहीं बन जायेंगे शरीर-शास्त्र पश्चिम से आया है। सब कोई कबूल करेंगे कि उसमें से बहुत कुछ सीखने लायक है। लेकिन उसे सीखने के बहुत से जरिये इस मुल्क में मिल सकते हैं। मतलब यह कि पश्चिम में जो कुछ अच्छा है, वह ऐसा है और होना चाहिये कि सब जगह मिल सके। साथ ही, यहाँ यह भी कह देना जरूरी है कि कुदरती इलाज सीखने के लिये यह बिलकुल जरूरी नहीं कि शरीर-शास्त्र सीखा ही जाय। कुने, जुस्ट, फादर क्नीप वगैरा लोगों ने जो लिखा है, सो सबके लिये हैं और सब जगहों के लिए है। वह सीधा है। उसे जानना हमारा धर्म है। कुदरती इलाज जानने वालों के पास उसकी थोड़ी-बहुत जानकारी होती है और होनी चाहिये। कुदरती इलाज अभी गांवों में तो दाखिल हुआ ही नहीं है। उस शास्त्र में हम गहरे पैठे ही नहीं है। करोड़ों को ध्यान में रखकर उस पर सोचा नहीं गया है। अभी वह शुरू ही हुआ है। आखिर वह कहाँ जाकर रुकेगा, सो कोई कह नहीं सकता।

सभी शुभ साहसों की तरह उसके पीछे भी तप की ताकत जरूरी है। नजर पश्चिम की ओर न जाय, बल्कि अपने अन्दर जाय।' **(हरिजनसेवक 2 जून 1946)**

विश्वास की चिकित्सा (फेथ हीलिंग) की वर्तमान अवधारणा पश्चिम से आयातित है, जिसमें कुछ अभ्यासों व प्रार्थनाओं से जिस्मानी रोगों के इलाज का दावा किया जाता है और इसका ईसाई धर्म के साथ ही काफी प्रचार हुआ है। यह तर्कों से परे है और इसमें रोगों को अभ्यासों का अन्धानुकरण करना होता है। वहीं विश्वास चिकित्सा (फेथ हीलिंग) की भारतीय अवधारणा यह है कि ईश्वर पर विश्वास रखकर उसके नाम का सहारा लेकर आत्मशोधन किया जा सकता है, और यदि मन शुद्ध है तो शारीरिक पतन संभव ही नहीं है। यानी हमारे यहाँ इसका संबंध जिस्मानी नहीं रूहानी है, माने शारीरिक नहीं आत्मिक है। लेकिन सम्मान पश्चिमी अवधारणा का ही है, जो कि भ्रम का कारण बनता है।

इसी भ्रम के तहत गाँधीजी के एक मित्र ने उन्हें उलाहना दी, 'क्या आपका कुदरती इलाज और विश्वास-चिकित्सा कुछ मिलती-जुलती चीजें हैं? बेशक मरीज को इलाज में श्रद्धा तो होनी चाहिये, लेकिन कई ऐसे इलाज हैं जो सिर्फ विश्वास से ही रोगी को अच्छा कर देते हैं, जैसे, माता (चेचक), पेट का दर्द वगैरा बीमारियों के। शायद आप जानते हो कि माता का खासकर मद्रास में कोई इलाज नहीं किया जाता। इसे सिर्फ ईश्वर की माया मान लिया जाता है। हम मरिअम्मा देवी की पूजा करते हैं और बहुत से रोगी अच्छे हो जाते हैं। यह चीज एक करामात-सी लगती है। जहाँ तक पेट-दर्द की बात है तो बहुत से लोग तिरुपति में देवी की मन्नतें मानते हैं। अच्छे होने पर उसकी मूर्ति के हाथ-पाँव धोते हैं, और दूसरी मानी हुई मन्नतें पूरी करते हैं। मेरी ही माँ की मिसाल लीजिये। उनको पेट में दर्द रहता था। पर तिरुपति हो आने के बाद उनकी वह तकलीफ दूर हो गयी। यह कह दीजिये कि कुदरती इलाज पर भी लोग जैसा ही विश्वास क्यों न रखें? जिससे डॉक्टरों का बार-बार का खर्च बच जायगा, क्योंकि चॉसर के कहने के मुताबिक डॉक्टर का तो काम ही है कि वह दवाई बेचने वालों से मिलकर बीमार को हमेशा बीमार बनाये रखे।'

इसके जवाब में गाँधीजी ने कहा, 'जो मिसालें ऊपर दी गई हैं, वे न तो कुदरती इलाज की ही है और न रामनाम की ही, जिसको मैंने इसमें शामिल किया है। उनसे यह पता जरूर चलता है कि कुदरत बहुत से रोगियों को बिना किसी इलाज के भी अच्छा कर देती है। ये मिसालें यह भी दिखाती हैं कि हिन्दुस्तान में वहम हमारी जिन्दगी का कितना बड़ा हिस्सा बन गया है। कुदरती इलाज का मध्यबिन्दु यानी रामनाम तो वहम का दुश्मन है। जो बुराई करने से झिझकते नहीं, वे रामनाम का नाजायज फायदा उठाएंगे। पर वे तो हर चीज या हर असल के साथ ऐसा ही करेंगे। खाली जबान से राम-नाम रटने से इलाज का कोई सम्बन्ध नहीं। अगर मैंने ठीक समझा है, तो जैसा कि लेखक ने बताया है, विश्वास-चिकित्सा में यह माना जाता है कि रोगी अन्ध-विश्वास से अच्छा हो जाता है। यह मानना तो ईश्वर के नाम की हँसी उड़ाना है। राम नाम सिर्फ कल्पना की चीज नहीं, उसे तो दिल से निकलना है।

परमात्मा में ज्ञान के साथ विश्वास हो और उसके साथ-साथ कुदरत के नियमों का पालन किया जाय, तभी किसी दूसरी मदद के बिना रोगी बिल्कुल अच्छा हो सकता है। उसूल यह है कि शरीर की सेहत तभी बिल्कुल अच्छी हो सकती है, जब मन की सेहत पूरी-पूरी ठीक हो और मन पूरा-पूरा ठीक तभी होता है, जब दिल पूरा-पूरा ठीक हो। यह वह दिल नहीं, जिसे डॉक्टर छाती जाँचने के यंत्र (स्टेथोस्कोप) से देखते हैं, बल्कि वह दिल है जो ईश्वर का घर है। कहा जाता है कि अगर कोई अपने अन्दर परमात्मा को पहचान ले, तो एक भी गन्दा या फजूल खयाल मन में नहीं आ सकता।

वह इसे विस्तार देते हुए कहते हैं, 'जहाँ विचार शुद्ध हो, वहाँ बीमारी आ ही नहीं सकती। ऐसी हालत को पहुँचना शायद कठिन हो, पर इस बात को समझ लेना सेहत की पहली सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी है, समझने के साथ-साथ कोशिश भी करना। जब किसी के जीवन में यह बुनियादी परिवर्तन आता है, तो उसके लिये स्वाभाविक हो जाता है कि वह उसके साथ-साथ कुदरत के उन तमाम कानूनों का पालन भी करे, जो आज तक मनुष्य ने ढूंढ़ निकाले हैं। जब तक उनकी उपेक्षा की जाय, तब तक कोई यह नहीं कह सकता कि उसका हृदय पवित्र है। यह कहना गलत न होगा कि अगर किसी का हृदय पवित्र है, तो उसकी सेहत राम-नाम न लेते हुझे भी उतनी ही अच्छी रह सकती है।

बात सिर्फ यह है कि सिवा राम-नाम के पवित्रता पाने का और कोई तरीका मुझे मालूम नहीं। दुनिया में हर जगह पुराने ऋषि भी इसी रास्ते पर चले हैं।

और वे तो भगवान के बन्दे थे, कोई वहमी या ढोंगी आदमी नहीं। अगर इसी का नाम 'क्रिश्चियन सायन्स' है, तो मुझे कुछ कहना नहीं है। मैं यह थोड़े ही कहता हूँ कि राम-नाम मेरी ही शोध है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, राम-नाम तो ईसाई धर्म से भी पुराना है।'

''एक भाई पूछते हैं कि क्या राम-नाम में ऑपरेशन की इजाजत नहीं?

क्यों नहीं? एक टांग अगर दुर्घटना में कट गई है, तो राम-नाम उसे थोड़े ही वापस ला सकता है। लेकिन बहुत सी हालतों में ऑपरेशन जरूरी नहीं होता। मगर जहाँ जरूरी हो वहाँ करवा लेना चाहिये। सिर्फ इतनी बात है कि अगर भगवान के किसी बन्दे का हाथ-पाँव जाता रहे, तो वह इसकी चिन्ता नहीं करेगा। राम-नाम कोई अटकलपच्चू ताबीज नहीं है और न कोई कामचलाऊ चीज ही।' **(हरिजनसेवक 9 जून 1946)**

एक अन्य मित्र ने गाँधीजी से सवाल पूछा, 'आपने रामनाम से मलेरिया का इलाज सुझाया। मेरी मुश्किल यह है कि जिस्मानी बीमारियों के लिये रूहानी ताकत पर भरोसा करना मेरी समझ से बाहर है। मैं पक्की तरह से यह भी नहीं जानता कि मुझे अच्छा होने का हक भी है या नहीं। क्या उस वक्त में जब मेरे देश वाले इतने दुःख में पड़े हैं, मेरा अपनी मुक्ति के लिये प्रार्थना करना ठीक होगा? जिस दिन मैं रामनाम समझ जाऊंगा, उस दिन मैं उनकी मुक्ति के लिये प्रार्थना करूँगा। नहीं तो मैं अपने आपको आज से ज्यादा खुदगर्ज महसूस करूँगा।'

इसके जवाब में गाँधीजी ने कहा कि 'दूसरी ताकतों की तरह रूहानी ताकत भी मनुष्य की सेवा के लिये है। सदियों से थोड़ी-बहुत सफलता के साथ शारीरिक रोगों को ठीक करने के लिए उसका उपयोग होता रहा है। इस बात को छोड़ भी दें, तो भी अगर जिस्मानी बीमारियों के इलाज के लिये कामयाबी के साथ उसका इस्तेमाल हो सकता हो, तो उसका उपयोग न करना बहुत बड़ी गलती है। अगर आप मलेरिया से बचने के लिये कुनैन लेते हैं और इस बात का खयाल भी नहीं करते कि करोड़ों को कुनैन नहीं मिलती, तो आप उस इलाज के इस्तेमाल से क्यों इनकार करते हैं जो आपके अन्दर है? क्या सिर्फ इसलिए कि करोड़ों अपने अज्ञान के कारण उसका इस्तेमाल नहीं करते? अगर करोड़ों अनजाने या हो सकता है जान-बूझकर भी गन्दे रहे, तो क्या आप अपनी सफाई और सेहत का ध्यान छोड़ देंगे? सखावत की गलत कल्पना के कारण अगर आप साफ नहीं रहेंगे, तो गन्दे और बीमार रहकर आप उन्ही करोड़ों की सेवा का फर्ज भी अपने ऊपर नहीं ले सकेंगे। और यह बात तो पक्की है कि आत्मा का रोगी या गन्दा होना (उसे अच्छी और साफ रखने से इनकार करना) बीमार और गन्दा शरीर रखने से भी बुरा है।' **(हरिजन सेवक 1 सितम्बर 1946)**

गाँधीजी की विश्वास चिकित्सा इसी सन्दर्भ में पश्चिम से अलग थी, वह रोग निदान के लिए ईश्वर का नाम नहीं लेते थे बल्कि उनका जप मूल कारक के निदान के लिए था, जिससे कि रोग उपजते हैं। इसीलिए उन्होंने कहा, 'जिस आदमी को रामनाम में श्रद्धा है, वह जैसे-तैसे अपनी जिन्दगी के दिन बढ़ाने के लिए नामी-गिरामी डॉक्टरों और वैद्यों के दर की खाक नहीं छानेगा और यहाँ से वहाँ मारा-मारा नहीं फिरेगा। राम-नाम डॉक्टरों और वैद्यों के हाथ टेक देने के बाद लेने की चीज भी नहीं। वह तो आदमी को डॉक्टरों और वैद्यों के बिना भी अपना काम चला सकने वाला बनाने की चीज है। राम-नाम में श्रद्धा रखने वाले के लिये वही उसकी पहली और आखिरी दवा है।' **(हरिजनसेवक 2 जून 1946)**

गाँधीजी ने एक बार यह भी कहा कि 'मेरा यह विश्वास है कि राम-नाम ही सारी बीमारियों का सबसे बड़ा इलाज है। इसलिए वह सारे इलाजों से ऊपर है। चारों तरफ से मुझे घेरने वाली आग की लपटों के बीच तो भगवान में जीती-जागती श्रद्धा की मुझे सबसे बड़ी जरूरत है। वही लोगों को इस आग को बुझाने की शक्ति दे सकता है। अगर भगवान को मुझसे काम लेना होगा, तो वह मुझे जिन्दा रखेगा, वरना मुझे अपने पास बुला लेगा। राम-नाम ही मनुष्य का एक आसरा है। इसलिए आज के संकट में मैं अपने-आप को पूरी तरह भगवान के भरोसे छोड़ देना चाहता हूँ और शरीर की बीमारी के लिए किसी तरह की डॉक्टरी मदद नहीं लेना चाहता।' *(नई दिल्ली 18 अक्तूबर, 1947)*

गाँधीजी ने निरोगी होने के लिए राम-आह्वान करने का सुझाव दिया। साथ यह भी कहा कि 'राम नाम पुकारने से समाधान के रूप में राम-बाण का संधान निश्चित है। वह संधान (राम की मदद के रूप में) विकारों व व्याधियों का नाश कर देगा, क्योंकि राम-बाण विकारों का पक्का निदान है, इसे शर्तिया इलाज कह सकते हैं। जैसे रावण विकार का प्रतीक है और उसकी नाभि में

छल से डाला गया अमृत उसके विकार बढ़ते रहने का स्रोत है। यह भी कहा जा सकता है कि छल से डाला गया वह अमृत विष बन जाता है, जिसे राम-बाण हर लेता है।' महात्माजी ने राम-बाण का अर्थ इसी रूप में लिया है। आसान भाषा में राम से मिली मदद राम-बाण है और यही राम-नाम जप की सिद्धि है। महात्माजी के लिए मुक्ति का मतलब आत्म-शुद्धि से था और यह शुद्धि विकारों के निदान के बिना संभव नहीं। उन्होंने यह निदान राम-नाम में पाया था। इसीलिए वे राम-नाम जप को ही राम-बाण इलाज बताते थे। उनकी कसौटी थी कि अगर रामनाम का मन्त्र दिल में पूरा-पूरा रम जाएगा, तो वह कभी बीमार होकर नहीं मरेंगे। हर एक आदमी को अपनी भूल का नतीजा भोगना ही पड़ता है। इसलिए आखिरी दम तक रामनाम का ही स्मरण होना चाहिये। वह भी तोते की तरह नहीं, बल्कि सच्चे दिल से लिया जाना चाहिये।

गाँधी जी का कहना था, 'कुदरती इलाजों में मैंने राम-नाम को रोग मिटाने वाला माना है और इस सम्बन्ध में कुछ लिखा भी है, **वैद्यराज गणेश शास्त्री जोशी** मुझसे कहते हैं कि इसके सम्बन्ध का और इससे मिलता-जुलता साहित्य आयुर्वेद में काफी पाया जाता है। रोग को मिटाने में कुदरती इलाज का अपना बड़ा स्थान है और उसमें भी राम-नाम विशेष है। यह मानना चाहिये कि जिन दिनों चरक, वाग्भट वगैरा ने लिखा था, उन दिनों ईश्वर को रामनाम के रूप में पहचानने की रूढ़ि पड़ी नहीं थी। उस समय विष्णु के नाम की महिमा थी।

मैंने तो बचपन से रामनाम के जरिये ही ईश्वर को भजा है। लेकिन मैं जानता हूँ कि ईश्वर को ॐ नाम से भजो या संस्कृत, प्राकृत से लेकर जिस देश की या दूसरे देश की किसी भी भाषा के नाम से उसको जपो, परिणाम एक ही होता है

ईश्वर को नाम की जरूरत नहीं। वह और उसका कायदा दोनों एक ही है। इसलिए ईश्वरी नियमों का पालन ही ईश्वर का जप है। अतएव केवल तात्त्विक दृष्टि से देखें, तो जो ईश्वर की नीति के साथ तदाकार हो गया है, उसे जप की जरूरत नहीं। अथवा जिसके लिए जप या नाम का उच्चारण सांस-सांस की तरह स्वाभाविक हो गया है, वह भी ईश्वरमय बन चुका है। यानी ईश्वर की नीति को वह सहज ही पहचान लेता है और सहज भाव से उसका पालन करता है। जो जिस तरह बरतता है, उसके लिये दूसरी दवा की जरूरत क्या? ऐसा होने पर भी जो दवाओं की दवा है, यानी राजा दवा है, उसी को हम कम-से-कम पहचानते हैं। जो पहचानते हैं, वे उसे भजते नहीं और जो भजते हैं, वे सिर्फ जबान से भजते हैं, दिल से नहीं। इस कारण वे तोते के स्वभाव की नकल भर करते हैं, अपने स्वभाव का अनुसरण नहीं। इसलिए वे सब ईश्वर को 'सर्वरोगहारी' के रूप में नहीं पहचानते। पहचाने भी कैसे? यह दवा न तो वैद्य उन्हें देते हैं, न हकीम और न डॉक्टर। खुद वैद्यों, हकीमों और डॉक्टरों को भी इस पर आस्था नहीं। यदि वे बीमारों को घर बैठे गंगा-सी यह दवा दें, तो उनका धन्धा कैसे चले? इसलिए उनकी दृष्टि में तो उनकी पुड़िया और शीशी ही रामबाण दवा है। इस दवा से उनका पेट भरता है और रोगी को हाथों-हाथ फल भी देखने को मिलता है। 'फला-फला ने मुझ को चूरन दिया और मैं अच्छा हो गया।' कुछ लोग ऐसा कहने वाले निकल आते हैं और वैद्य का व्यापार चल पड़ता है। वैद्यों और डॉक्टरों के रामनाम रटने की सलाह देने से रोगी का दुःख दूर नहीं होता। जब वैद्य खुद उसके चमत्कार को जानता है, तभी रोगी को भी उसके चमत्कार का पता चल सकता है। रामनाम पोथी का बैगन नहीं, वह तो अनुभव की प्रसादी है। जिसने उसका अनुभव प्राप्त किया है, वही यह दवा दे सकता है, दूसरा नहीं। वैद्यराज ने मुझे चार मन्त्र लिखकर दिये हैं। उनमें चरक संहिता का मंत्र **(विष्णु सहस्त्रमूर्धान चराचरपति विभुम्। स्तुवन्नामसहस्त्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति। (चरक चिकित्सा, अ० ३ - श्लोक ३११)** सीधा और सरल है। इसका अर्थ यों है कि चराचर के स्वामी विष्णु के हजार नामों में से एक का भी जप करने से सब रोग शान्त होते हैं।' **(हरिजनसेवक, 24 मार्च 1946)**

महात्माजी ने दूसरों को यह सलाह दी कि कुदरती इलाज राम-नाम केन्द्रित है और पंचमहाभूतों का प्रयोग उसकी हद है। लेकिन स्वयं भी वह इसका आचरण करते रहे, उन्होंने कठिन से कठिन समय में भी इसका आचरण नहीं त्यागा। वे राम-नाम को समस्याओं के मोचन के साधन के तौर पर देखते थे, लेकिन यह भी मानते थे कि यह एक साधना है और उस स्थिति तक पहुँचने के लिए एक विशेष प्रकार की योग्यता होनी जरुरी है। क्योंकि यह कोई मौखिक कसरत या बुद्धिवाद नहीं है, बल्कि इसके हृदय व सांसों की आवृत्ति रामधुन की आदी हो जाये, उसके साथ सहज हो जाये और फिर उससे लयबद्ध हो जाये। एक बार ऐसा हो गया तो फिर डाक्टरों, वैद्यों व गुरुओं की जरूरत खत्म हो जाएगी, आदमी अपनी चुनौतियों का समाधान खुद से खोजने में सक्षम हो जायेगा।

(लेखक की पुस्तक 'गाँधी के राम' से साभार)

UFLEX
'A part of your daily life'

India's largest multinational flexible packaging and solutions company

Manufacturing facilities: India (Noida, Jammu, Sanand, Dharwad and Panipat) | UAE | Mexico | Egypt | Poland | USA | Russia | Hungary | Nigeria
www.uflexltd.com | enquiry@uflexltd.com

StockHolding®

www.stockholding.com /StockHoldingIN
Now just a Whatsapp away! Connect with StockHolding SHAW on 9967422422

Download StockHolding Mobile App

राम दरबार

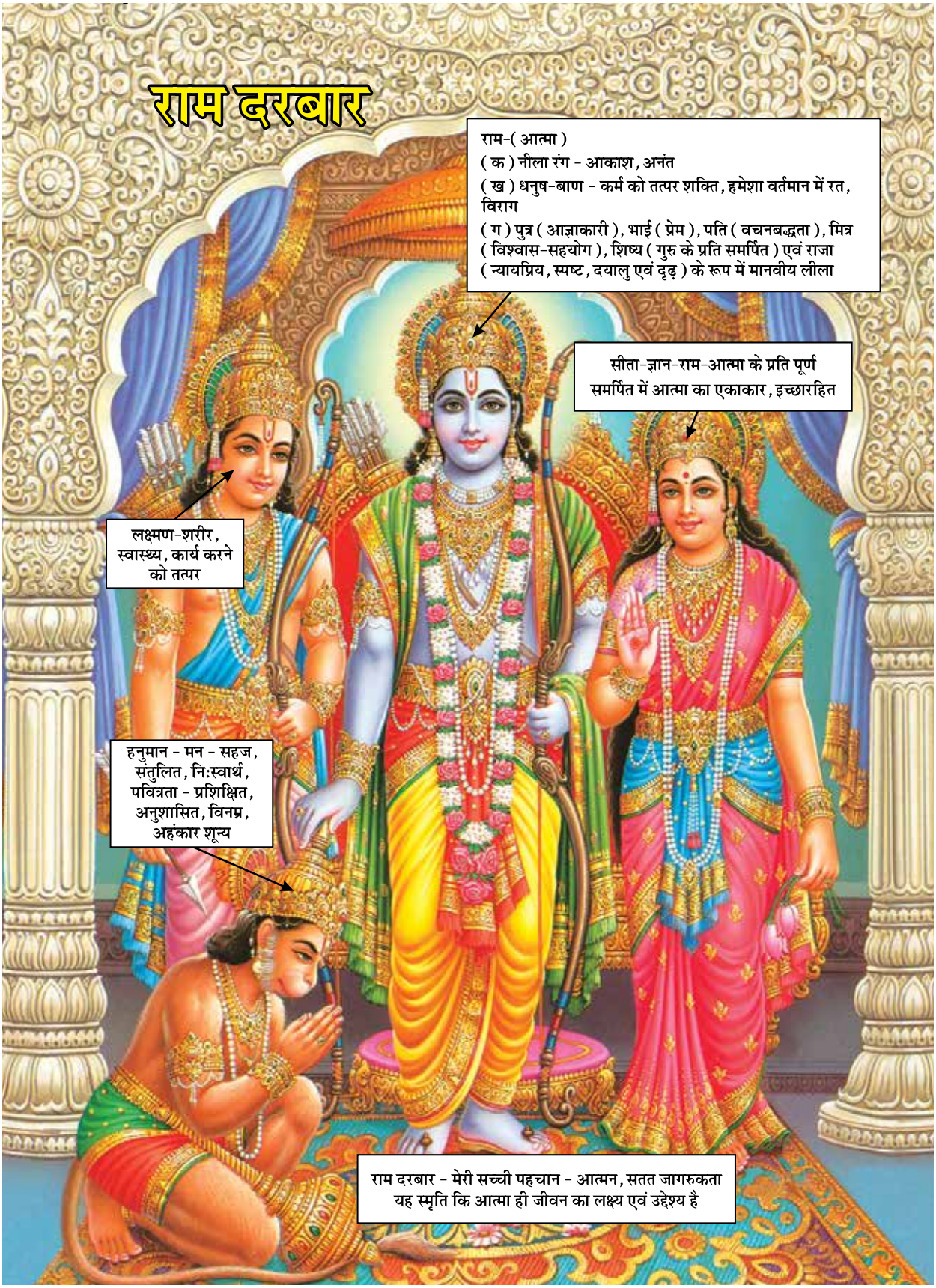

राम-(आत्मा)
(क) नीला रंग - आकाश, अनंत
(ख) धनुष-बाण - कर्म को तत्पर शक्ति, हमेशा वर्तमान में रत, विराग
(ग) पुत्र (आज्ञाकारी), भाई (प्रेम), पति (वचनबद्धता), मित्र (विश्वास-सहयोग), शिष्य (गुरु के प्रति समर्पित) एवं राजा (न्यायप्रिय, स्पष्ट, दयालु एवं दृढ़) के रूप में मानवीय लीला

सीता-ज्ञान-राम-आत्मा के प्रति पूर्ण समर्पित में आत्मा का एकाकार, इच्छारहित

लक्ष्मण-शरीर, स्वास्थ्य, कार्य करने को तत्पर

हनुमान - मन - सहज, संतुलित, निःस्वार्थ, पवित्रता - प्रशिक्षित, अनुशासित, विनम्र, अहंकार शून्य

राम दरबार - मेरी सच्ची पहचान - आत्मन, सतत जागरुकता यह स्मृति कि आत्मा ही जीवन का लक्ष्य एवं उद्देश्य है

संस्कृति संज्ञान के कार्यक्रमों की झलक

ई & एम ग्लोबल, जगनार रोड, तांतपुर आगरा में संस्कृति संज्ञान का कार्यक्रम 2 सितंबर 2022 को संपन्न हुआ। 100 से ज्यादा पुजारियों ने हिस्सा लिया।

संस्कृति संज्ञान संस्थान द्वारा "पुजारियों की दशा एवं दिशा" पर कार्यक्रम 5 नवंबर 2022 को प्राचीन हनुमान मंदिर शंकर विहार में आयोजित किया किया गया। 200 से ज्यादा पुजारियों ने हिस्सा लिया।

संस्कृति संज्ञान द्वारा आयोजित कार्यक्रम "पुजारियों की दशा एवं दिशा", श्री सिद्ध हनुमान मंदिर, 108 फुट श्री संकट मोचन धाम, झंडेवालान, करोल बाग, नई दिल्ली में 15 फरवरी 2023 को आयोजित हुआ। 150 से ज्यादा पुजारियों ने हिस्सा लिया।

ब्रज कला केंद्र मथुरा में संस्कृति संज्ञान संस्था द्वारा कार्यक्रम भारतीय समाज में "पुजारियों की दशा एवं दिशा' दिनांक 10 मई 2023 को आयोजित किया गया। 70 से ज्यादा पुजारियों ने हिस्सा लिया।

1 सितंबर 2023 को प्राचीन हनुमान शनि मंदिर महरौली में संस्कृति संज्ञान संस्था का कार्यक्रम "पुजारियों की दशा एवं दिशा' संपन्न हुआ। 150 से ज्यादा पुजारियों ने हिस्सा लिया।

श्री दादा देव मंदिर पालम एक्सटेंशन नई दिल्ली में संस्कृति संज्ञान संस्था द्वारा कार्यक्रम "भारतीय समाज में पुजारियों की दशा एवं दिशा' दिनांक 20 मई 2023 को आयोजित किया गया। 200 से ज्यादा पुजारियों ने हिस्सा लिया।

संस्कृति संज्ञान संस्था ने सेक्टर 134 नोएडा के मंदिर में 100 से ज्यादा परिवारों को श्री रामचरितमानस का परिवार के साथ नित्य सुबह पाठ करने के लिए प्रोत्साहित किया।

संस्कृति संज्ञान संस्था ने 20 दिसंबर 2021 को कैलाश मानसरोवर धाम इंदिरापुरम गाजियाबाद में 'पुजारियों की दशा एवं दिशा' विषय पर एक कार्यक्रम का आयोजन किया। 200 से ज्यादा पुजारियों की उपस्थिति रही।

संस्कृति संज्ञान संस्था के उद्देश्य

www.sanskritisangyan.com

- भारतीय समाज में सनातन संस्कृति और धर्म के प्रति आस्था को पुनर्स्थापित एवं पुष्ट करना।
- संस्था का संकल्प:- 31 दिसंबर 2030 तक भारतवर्ष का हर परिवार नित्य सुबह श्रीरामचरितमानस का पाठ कुछ समय के लिए अवश्य करे।
- स्कूलों, विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सेमिनार/व्याख्यान के माध्यम से विद्यार्थियों को संदेश देकर स्वस्थ जीवन शैली, व्यक्तित्व एवं चरित्र निर्माण में मानस की भूमिका के प्रति विश्वास दृढ़ करना।
- समस्त सनातनधर्मी पुजारियों को सरकार मासिक भत्ता दे।
- भारतवर्ष के छोटे मंदिरों के पुजारियों को कर्मकांड प्रशिक्षण कोर्स कराना। इसके द्वारा कर्मकांड विधियों को आकर्षक, सरल और स्पष्ट रूप में सिखाना। इस कोर्स को सफलतापूर्वक करने के पश्चात पुजारियों की आर्थिक आय में आवश्यक सुधार अवश्य होगा।
- समाज के हर वर्ग को संस्था प्रोत्साहित कर रही है कि वे मंदिरों और पुजारियों के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए अपना सहयोग करें।
- संस्था सभी दानकर्ताओं से अनुरोध करेगी कि वे अपने दान का एक बड़ा हिस्सा छोटे मंदिरों और पुजारियों के लिए संरक्षित करें।
- मंदिरों से होने वाली आय का उपयोग केवल सनातन धर्म की संस्थाओं के लिए ही हो।
- संस्था के उद्देश्यों को जनमानस तक प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक एवं सोशल मीडिया, सेमिनार, गोष्ठी एवं सार्वजनिक व्याख्यानों के द्वारा पहुंचा कर प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया जाएगा।

संस्कृति संज्ञान संस्था का प्राथमिक उद्देश्य

भारत के नागरिकों के बीच जागरूकता पैदा करना और संस्कृति, संस्कार, सभ्यता, राष्ट्रवाद, राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रहित को आत्मसात करना है।

विस्तृत जानकारी और दान देने के लिए संस्था की वेबसाइट पर जाएं।
www.sanskritisangyan.com

संस्कृति संज्ञान संस्था के सोशल मीडिया पर रामचरितमानस के श्लोकों पर आधारित वीडियो एवं पोस्ट परिवार और समाज के लिए बहुत ही उपयोगी हैं।

सोशल मीडिया लिंक

यूट्यूब चैनल : https://youtube.com/@sanskritisangyan
फेसबुक : https://www.facebook.com/sanskritisangyan1?mibextid=ZbWKwL
इंस्टाग्राम : https://www.instagram.com/reel/CmRPG9NPWtG/?igshid=ZmRlMzRkMDU=
एक्स (ट्विटर) : https://twitter.com/SangyanSans?t=v_eSxkQPdCHamvRv9dR6rg&s=09

कार्यालय का पता

ए ब्लॉक, 25/19, प्रथम तल, सुजान सिंह बिल्डिंग, मिडिल सर्किल, कनॉट प्लेस नई, दिल्ली-110001
01140050393, 9811300176, 7982810869 | sanskritisangyan@gmail.com
www.sanskritisangyan.com